प्रकाशक
श्री जयचन्द लाल दफ्तरी
व्यवस्थापक
आदर्श साहित्य संघ
सरदार शहर (राजस्थान)

मुद्रक
उग्रसेन दिगम्बर
इण्डिया प्रिंटर्स
एस्प्लेनेड रोड, दिल्ली-६

प्रथम संस्करण
अक्तूबर १९५७
आश्विन २०१४ वि०

पुस्तक मिलने का पता
(१) आदर्श साहित्य संघ, सरदार शहर, (राजस्थान)
(२) सत्यदेव विद्यालंकार ४० ए, हनुमान रोड, नई दिल्ली

हम निराश क्यों हों ?

पूजनीय मुनिवर आचार्य-श्री तुलसी भारतीय साधु-सन्त-ऋषि-परम्परा के पुनीत प्रतीक है। उनका उज्वल चरित्र, उनका तपश्चरण, उनका सन्त स्वाध्याय, सेवा-निरत जीवन, उनका निरलसकर्मयोग सहस्रावधि व्यक्तियो को सत्प्रेरणा प्रदान करता है। बाल्यकाल से ही वे तप, स्वाध्याय और व्रत मे अपना पवित्र जीवन बिता रहे है। मेरी दृष्टि मे वे महान् सन्त है। सस्कृत, प्राकृत और पाली के वे उद्भट विद्वान है। उच्च कोटि के दर्शन शास्त्री है। उनकी वाणी एक द्रष्टा की वाणी है। उनके शब्द तप पूत है। उनका शरीर, मन और हृदय निष्ठामय साधना के अनल से सुस्नात है।

उनके द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत-आन्दोलन भारतीय समाज को शान्ति-मय क्रान्ति का कल्याणकारी सन्देश दे रहा है। अनेक नगरों, गाँवो और जनपदो मे आचार्य-श्री के द्वारा उत्प्राणित मुनिजन भारतीय मानव को ऊँचा उठाने का प्रयत्न कर रहे हैं। हमारे देश को आज परमपूजार्ह ऋषिवर सन्त विनोवाभावे और श्रद्धास्पद मुनि श्री तुलसी गणी के द्वारा एक अभिनव सन्देश मिल रहा है। यह हमारा परम सौभाग्य है कि हमारे वीच आज भी ऐसी विभूतियाँ विद्यमान है।

हम निराश क्यो हो ? हमारा भविष्य उज्वल है; क्योकि हमारे वीच ऐसे सन्तगण है और वे हमे उद्वुद्ध होने का सन्देश दे रहे है। आचार्य श्री की तृतीय दिल्ली यात्रा का यह विवरण जनता के लिये प्रेरणा-प्रद सिद्ध होगा,—ऐसा मेरा विश्वास है। मैं श्रद्धा युक्त हृदय से आचार्य-श्री के सन्तत चरणशील, तपस्तप्त, दृढ श्रीचरणो मे अपने विनम्र प्रणाम अर्पित करता हूँ।

५, विडसर प्लेस, नई दिल्ली
१० अक्तूबर १९५७

—बालकृष्ण शर्मा

प्राक्कथन

ईसा से २०० वर्ष पहले, की लगभग २२०० वर्ष पुरानी एक ऐतिहासिक घटना है। रोमन सम्राट् जूलियस सीजर मिस्र विजय करने गये। वहाँ से लौट कर सीनेट मे उनको अपनी विजय यात्रा की रिपोर्ट प्रस्तुत करनी थी। उन दिनों मे सेनापति और सम्राट सीनेट में स्वयं उपस्थित होकर अपनी विजययात्राओ का विवरण उपस्थित किया करते थे। सम्राट् खड़े हो गये और केवल छोटे छोटे तीन वाक्य बोल कर बैठ गये। उन का भावार्थ यह था कि "मै गया, मैंने देखा और मैने जीत लिया।" संक्षिप्त विवरण पर सभी सदस्य स्तम्भित रह गये; क्योकि किसी को भी यह आशा नही थी कि विना किसी युद्ध, संघर्ष अथवा प्रतिरोध के मिस्र पर इतनी सरलता से विजय प्राप्त कर ली जायगी।

इतिहास अपने को दोहराता है और ऐतिहासिक घटनाओ की पुनरावृत्ति होती रहती है। वे घटनायें सर्वांश में एक दूसरे से चाहे न मिलती हों, फिर भी उन मे पर्याप्त समता रहती है। उनका क्षेत्र भी बदलता रहता है; परन्तु परिणाम उनका एक सा ही होता है। २२०० वर्ष पुरानी उस घटना के प्रकाश में अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी की राजधानी की यात्राओ पर यदि कुछ विचार किया जाय तो उनका विवरण सहज में जूलियस सीजर के शब्दो में दिया जा सकता है। भेद केवल इतना करना होगा कि जूलियस सीजर के उत्तम पुरुष के वाक्यो का प्रयोग प्रथम पुरुष में करना होगा।

आचार्य श्री साम्राज्यवादी राजनीतिक नेता नहीं हैं। जूलियस सीजर की आकांक्षायें उनके हृदय मे विद्यमान नहीं हैं। वे किसी साम्राज्य

के प्रतिनिधि अथवा प्रतीक नहीं है। वे एक धार्मिक, आध्यात्मिक अथवा सांस्कृतिक महापुरुष अथवा धर्मगुरु हैं। सांस्कृतिक चेतना को जागृत कर मानव के नवनिर्माण का बीड़ा उन्होने उठाया है। उनके पास न कोई सेना है, न सैन्य सामग्री है और न युद्ध के किसी प्रकार के आयुध। उनके पीछे कानून या शासन की भी किसी प्रकार की कोई शक्ति नहीं है। तन ढकने मात्र के वस्त्र, काष्ठ के कुछ पात्र और स्वयं अपने कन्धों पर सम्हाल सकने योग्य स्वाध्याय सामग्री के अतिरिक्त उनके पास कोई और सांसारिक संग्रह रह नहीं सकता। अपने भोजन की आवश्यकता गोचरी द्वारा इस ढंग से पूरी की जाती है कि उसका अतिरिक्त भार किसी भी गृहस्थ पर नहीं पड़ना चाहिये। अपनी मर्यादा के अनुसार किसी भी गृहस्थ के यहाँ उसकी प्रस्तुत भोजन सामग्री मे से कुछ थोड़ा सा लेकर अपनी क्षुधा निवृत्ति कर ली जाती है। सायंकाल सूर्यास्त के बाद खाने या पीने का कोई भी सामान अपने पास रक्खा नही जाता। यात्रा भी बिना किसी वाहन व साधन के सर्वथा पैदल की जाती है। सासारिक दृष्टि से ऐसे बाह्य साधन सामग्री रहित व्यक्ति "सैनिक आक्रमण" की कल्पना तो क्या करेगा, वह किसी से कोई जोर जबर-दस्ती अथवा आग्रह भी नही कर सकता। उपदेश करना उसकी अन्तिम सीमा है। उसको पार कर कोई आदेश देना भी उसका काम नहीं है। ऐसे महान् व्यक्ति की जूलियस सीज़र के साथ तुलना नहीं की जा सकती। फिर भी उनकी धर्म यात्रा किसी भी सेनापति अथवा सम्राट् को दिग्विजय करने वाली विजययात्राओं से कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसीलिए जूलियस सीज़र के शब्दों को कुछ बदल कर हम आचार्य श्री की धर्मयात्राओं का विवरण इन शब्दो में देने का साहस कर रहे हैं—

"वे आये, उन्होंने देखा और उन्होंने जीतलिया"

आचार्य श्री की सात वर्ष पहले की गयी दिल्ली यात्रा की तुलना यदि तीसरी बार १९५६ के दिसम्बर मास में की गयी यात्रा के साथ

की जा सके तो सहज में पता चल सकता है कि तब और अब में कितना अन्तर है । तब अणुव्रत आन्दोलन को उपेक्षा, उपहास, निन्दा और प्रचंड विरोध का सामना करना पड़ा था । उस के प्रति तरह तरह के सन्देह एवं आशंकायें प्रकट की गयीं । उस पर साम्प्रदायिक संकीर्णता, धार्मिक गुटबन्दी और पूंजीपतियो का राजनीतिक स्टन्ट होने के आरोप लगाये गये । परन्तु अब १९५६ मे उसका कैसा आशातीत स्वागत और कल्पनातीत समर्थन किया गया । तब भी कुछ समय बाद उसकी सफलता पर लोगों की आँखें चौंधिया गयी थीं । बड़े विस्मय के साथ लोगों ने देखा था कि अत्यन्त प्रबल रूप मे फैले हुए भ्रष्टाचार, अनाचार तथा अनैतिकता के विरोध में उठायी गयी आवाज में कैसी शक्ति है और उसके पीछे कितनी बड़ी साधना है । आचार्य श्री की तपःपूत वाणी ने तब भी राजधानी को झकझोर दिया था और भूकम्प आने पर जैसे पृथ्वी दूर-दूर तक डोल जाती है वैसे ही दिल्ली को झकझोरने से पैदा हुई हलचल की लहरें न केवल हमारे देश के छोटे बड़े नगरो तक सीमित रहीं; किन्तु विदेशों तक मे उनका प्रभाव दीख पड़ा । लेकिन अब १९५६ की यात्रा के ४० दिनों में व्यापक नैतिक क्रान्ति की जो प्रचड लहरें पैदा हुईं, उनसे यह सिद्ध हो गया कि अणुव्रतो मे संसार को हिला देने वाली वह दिव्य अणुशक्ति विद्यमान है, जो अणु आयुधों के अभिशाप को वरदान में परिणत कर सकती है । अणुव्रतो के इस दिव्य रूप की जो छाप राजधानी के माध्यम से देश विदेश के विचारको के मस्तिष्क पर पड़ी, वह आचार्य श्री की इस यात्रा की सबसे बड़ी सफलता है । इसको सभी ने एक मत से स्वीकार किया है । यह अवसर भी कुछ ऐसा था कि यूनेस्को, बौद्ध गोष्ठी तथा जैन गोष्ठी आदि के सांस्कृतिक समारोहो के कारण देशविदेश के कुछ विशिष्ट विचारक राजधानी में पहले से ही उपस्थित थे और आचार्य श्री के सन्देश को उन तक पहुँचाने के लिए अनायास ही अनुकूलता उपस्थित हो गयी ।

आचार्य श्री का यह तीसरी बार का दिल्ली-आगमन यो ही नहीं हो

गया था। उसके पीछे यदि कोई आन्तरिक प्रेरणा थी तो बाहरी प्रेरणा भी कुछ कम न थी। अणुव्रत आन्दोलन के व्यापक नैतिक महत्व को राजनीतिक क्षेत्रों में भी स्वीकार किया जाने लग गया था। भले ही पहली पंचवर्षीय योजना के निर्माण काल मे नैतिक निर्माण के महत्व को ठीक ठीक न आँका जा सका हो; परन्तु दूसरी योजना के निर्माण काल मे उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकी। समाजव्यवस्था के लिए समाजवादी आदर्श को स्वीकार करने के बाद राजनीतिक नेताओ का भी ध्यान देश की अस्तव्यस्त सामाजिक स्थिति की ओर आकर्षित होना सहज और स्वाभाविक था। उन्हें यह अनुभव होने में विलम्ब नही लगा कि समस्त सामाजिक बुराइयो का मूलभूत कारण वह अनैतिकता है, जो हमारे सामाजिक जीवन को भीतर ही भीतर घुन की तरह खाती जा रही है। उन्होने यह भी जान लिया कि व्यक्तिगत जीवन के निर्माण के बिना राष्ट्र निर्माण के महान् स्वप्न और महान् योजनायें पूरी नहीं की जा सकतीं। उनके लिए स्वयं राजनीतिक हलचलो से इस महान् कार्य के लिए समय निकाल सकना सम्भव न था। इसी कारण उनका ध्यान उन विशिष्ट व्यक्तियो की ओर आकृष्ट हुआ, जो नैतिक उत्थान अथवा नैतिक निर्माण के कार्य मे संलग्न थे। आचार्य-श्री ने पिछले सात आठ वर्षो में दिल्ली, पंजाब, राजस्थान, खानदेश, गुजरात, बम्बई, पूना तथा मध्यभारत आदि की लगभग बारह पन्द्रहहजार मील लम्बी शंकर दिग्विजय की सी जो धर्मयात्राएं की थी उसमे अणुव्रत का अमर सन्देश उन्होने घर-घर पहुँचा दिया। उसकी गूंज निरन्तर राजधानी में भी सुनी जाती रही और यह ऊँचे राजनीतिक क्षेत्रो मे भी स्वीकार किया गया कि अणुव्रत आन्दोलन राष्ट्र निर्माण की सुदृढ़ नीव तैयार करने के लिए एक अमोघ साधन है। सम्भवतः इसी कारण हमारे महान् नेता प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने भी आचार्य-श्री को दिल्ली आ कर उन से मिलने का सन्देश मुनि श्री नगराज जी से एक मुलाकात मे निवेदन किया था। आचार्य-श्री के दिल्ली मे हुए प्रथम पदार्पण के बाद से ही राज-

धानी मे उनके सुयोग्य शिष्य मुनि श्री बुद्धमलजी और उनके बाद उनके विद्वान् शिष्य एवं प्रखर प्रवक्ता मुनि नगराज जी तथा मुनि महेन्द्र जी आदि अणुव्रत के सतत् प्रसार में लगे हुए थे। उनके ही कारण राजधानी मे आन्दोलन के लिए निरन्तर अनुकूलता पैदा होती जा रही थी। उन्होंने अणुव्रतो के सन्देश को राष्ट्रपति भवन और मन्त्रियों की कोठियों से सामान्य जनों तक पहुँचाने का निरन्तर प्रयत्न किया था। अणुव्रत आन्दोलन के अन्य समर्थकों और कार्यकर्ताओं की भी यह प्रबल इच्छा थी कि आचार्य-श्री को इस महत्वपूर्ण अवसर पर राजधानी पधारना ही चाहिये; क्योकि वे यहाँ आयोजित सांस्कृतिक आयोजनों का लाभ अपने इस महान् आन्दोलन के लिए प्राप्त करने की प्रबल इच्छा रखते थे। उनकी इच्छा यह थी कि आचार्य-श्री को उर्जन से सीधे दिल्ली आकर १९५६ का चातुर्मास राजधानी मे ही करना चाहिये। राजधानी के विशिष्ट नेता और कार्यकर्ता भी इसी मत के थे। कांग्रेस महासमिति के महा मन्त्री श्री श्री मन्नारायण, श्री गोपीनाथ 'अमन', श्री मती सुचेता कृपलानी, डा० सुशीला नैयर, श्री-मती सावित्री देवी निगम डा० युद्धवीर सिंह तथा ऐसे ही अन्य महानुभाव भी समय समय पर अपना आग्रह तथा अनुरोध प्रकट करते रहते थे। आचार्य-श्री ने दिल्ली न आ कर सरदारशहर में चातुर्मास करने का निश्चय कर लिया। अनेक सज्जनों ने, जिनमें श्री श्री मन्नारायण प्रमुख थे, सरदराशहर पहुँच कर सार्वजनिक रूप से भी दिल्ली पधारने के लिए अनुरोध किया था। चातुर्मास पूरा होने से पहले आचार्य-श्री दिल्ली के लिए प्रस्थान नहीं कर सकते थे। फिर भी दिल्ली प्रस्थान के सम्बन्ध मे आचार्य श्री ने अन्य सन्तों से विचार विनिमय करना प्रारम्भ कर दिया और अन्त में यह निश्चय प्रकट कर दिया कि चातुर्मास पूरा करके दिल्ली को प्रस्थान किया जायगा।

आचार्य-श्री ने एक प्रवचन मे अपनी दिल्ली यात्रा के सम्बन्ध मे ठीक ही कहा था कि मेरी दिल्ली यात्रा को लेकर कई लोग भिन्न भिन्न

अनुमान लगाते है, कई लोगों ने अपनी कल्पना मे इसे अत्यधिक महत्व दिया है और वे शायद आपस में बातें करते होंगे कि राष्ट्रपति, पंडित नेहरू आदि बड़े बडे नेताओं ने मुझे वहाँ आने का निमन्त्रण दिया है। पर मै यह स्पष्ट कर देता हूँ कि मेरे पास उनका कोई निमन्त्रण नहीं है। हाँ, उनकी इस सम्बन्ध मे रुचि अवश्य है। मेरा वहाँ जाने का उद्देश्य देश-विदेश से आये लोगों से सम्पर्क कायम करना और देहली-वासियो की प्रार्थना को पूरा करना है। देहली आजकल अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओ का केन्द्र बना हुआ है। वहाँ हम अपने शासन की बात को प्रभावशाली ढंग से रख सकते है, सुना सकते हैं। वहाँ के नेताओ का भी खयाल है कि मेरा वहाँ जाना उपकारक हो सकता है। लोगों का स्वभाव होता है कि पहले वे बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ कर लेते है। यह आवश्यक नहीं है कि सारी कल्पनाएँ सही निकलें। फिर अगर कोई बात उनकी कल्पना के अनुकूल नही निकलती तो वे बड़े हताश हो जाते है और उतनी ही अधिक हीन आलोचना कर डालते हैं। ये दोनो बातें अच्छी नहीं है। लोगो को न तो पहले अधिक कल्पना ही करनी चाहिए और न फिर अधिक हताश ही होना चाहिये। मेरी देहली यात्रा के सम्बन्ध में भी, मैं समझता हूँ सबका दृष्टिकोण संतुलित रहना चाहिये।

कार्तिक पूर्णिमा (१८ नवम्बर) को चातुर्मास पूरा होने पर दूसरे दिन १९ नवम्बर को आचार्य श्री ने २३ साधु और सात साध्वियो के साथ दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया और पहले ही दिन १६ मील का विहार किया गया। २०० मील का मार्ग तय कर के ३० नवम्बर को दिल्ली पहुँचना था क्योकि उस दिन यहाँ जैन सेमिनार मे प्रवचन की व्यवस्था की जा चुकी थी। प्रतिदिन इतना लम्बा विहार किये बिना लम्बा मार्ग नियत अवधि मे पूरा नहीं किया जा सकता था। सुजानगढ़ से मुनि श्री सुमेरमल जी तथा छापर से मुनि श्री दुलहराज जी को भी ३० नवम्बर को दिल्ली पहुँचने का आदेश दे दिया गया था। वे भी नियत दिन पर यहाँ आ पहुँचे।

विहार की आपबीती कहानी के लिए मुनि श्री सुखलाल जी के शब्दो से अधिक उपयुक्त शब्द नहीं मिल सकते। उन्होने उसका वर्णन इस प्रकार किया है कि "हमारा सारा समय प्रायः चलने मे ही बीतता। कभी दो विहार होते, कभी तीन विहार होते। आराम पूरा कर पाते या नहीं कि शब्द हो जाता "संतो तैयार हो जाओ" फिर भी जादू यह कि किसी को इसकी शिकायत नहीं थी। रात्रि को बैठकर अपने पैर अपने आप ही दबा लेते और सो जाते। सुबह तक थकान मिट जाती। फिर सुबह विहार के लिये तैयार हो जाते। कई दिनो तक यह क्रम चला। आखिर औदारिक शरीर पर इसका असर तो आया ही। बहुतों के पैर दुखने लगे। कोई बोलता तो गरम पानी लाकर पैर धो लेता और कोई नहीं बोलता तो चुपचाप अपनी बहादुरी को छिपाये रहता। पर तो भी मानसिक उत्साह मे कोई कमी नहीं आई। रास्ते मे आचार्य श्री के पैरो मे भी दर्द हो गया। दो तीन दिन तो बोले नही। पर आखिर वह कोई सुई नही थी, जो छुपाई जा सके। गति की मन्थरता ने यह प्रकट कर दिया कि "आचार्य श्री के पैरो मे भी दर्द है" और उनके जिम्मे और भी बहुत कार्य थे। आये लोगो से मिलना, व्याख्यान देना, चर्चा-वार्ता करना आदि। हम चाहते थे कि आचार्य श्री विश्राम करें, पर उन्हें रात को भी देर तक विश्राम मिलना मुश्किल था। हम लोग तो कभी-कभी दूसरे कमरे मे जाकर आराम भी कर लेते थे, पर आचार्य श्री के पास सोने वाले सतो को तो पूरी तपस्या ही करनी पडती थी।

तारानगर, राजगढ से भिवानी तक बालू का कच्चा रास्ता था। सोचा करते—यहाँ चलने मे दिक्कत होती है। आगे (भिवानी से दिल्ली तक) पक्की सड़क आ जायेगी। चलने मे सुगमता रहेगी। कच्चे रास्ते में जगह-जगह काँटे आते हैं, रेत बहुत है। जगह-जगह रास्ता पूछना पड़ता है, फिर भी कभी-कभी तो चक्कर खा ही लेते थे। ये सब दुविधाएँ भिवानी से आगे टल जायेंगी। पर बात और ही निकली।

सर्दी की मौसम थी। सुबह ही सुबह जब पैरो का खून जम जाता और सड़क पर चलते तो पैर कट जाते। आसपास की पगडडियाँ कंकरीली और कटीली होने के कारण काम मे नही आतीं। अत: दिल्ली पहुँचते पहुँचते पैर लहूलुहान हो गये। उपचार भी करते, कपडा भी बाँधते पर २०-२० मील चलने तक उनका क्या पता चलता था, प्राय: फट जाता। साथ-साथ सडको पर मोटरों की भरमार रहती। मोटर की आवाज सुनकर सडक छोड़कर नीचे चलते। मोटर निकल जाने के बाद फिर सड़क पर आते। एक मोटर जाती कि दूसरी मोटर की आवाज सुनाई देती। यही क्रम रहता।

रास्ते मे ग्रामीण लोग खेतो मे काम करते हुये पूछते—कहाँ जाते हो ?

हम कहते—दिल्ली।

"वहाँ क्या कोई मेला है ?"

"हाँ, वहाँ सत्सग होगा। दूसरे देशो के बडे-बड़े विचारक अभी दिल्ली आये हुए हैं, उनका मेला है, अत: हम भी उनसे मिलने दिल्ली जा रहे हैं।"

बहुत से लोग कहते—तुम मोटर मे क्यो नहीं बैठ जाते ? तुम अपना बोझ खुद क्यो ढोते हो ? तुम्हारे साथ इतनी मोटरें चलती हैं, सर्विस भी चलती है, फिर भी तुम इतना दु:ख क्यो पाते हो ? कई कहते—देखो ये बेचारे इतनी कडकडाती सर्दी मे नगे पैर, नगे सिर, अपने कंधो पर बोझा लिये क्यो घूमते है ? वे हमारे पास आते और कहते—अभी सर्दी बहुत है। चलो गाँव मे हम तुम्हें रोटी देंगे। धूप निकलने पर आगे जाना।

बड़े मनोरंजक प्रश्न होते। हम उनको सस्मित उत्तर देते हुए आगे बढ़ जाते। कई गाँव तो बीच मे ऐसे आये, जहाँ शायद जैन साधुओ ने कभी पैर भी नहीं रखे थे। हमारा वेष और इतना बड़ा काफिला देखकर आश्चर्य करते, सकुचाते और कही-कहीं अपमान भी करते।

पर हमें इनकी क्या परवाह थी, अपने रास्ते पर चलते रहते।

मार्ग में न जाने कितने दृश्य आते थे। निरा एकान्त स्थान, शुद्ध हवा, दोनो तरफ लहलहाते खेत, भोले-भाले ग्रामीणों के झुंड। जहाँ जाते वहाँ मेला सा लग जाता। ग्रामीण बच्चे तो आहार भी मुश्किल से करने देते। रात को सोने के लिये मकान भी कच्चे मिलते। कही स्कूलो में ठहरते तो ऊपर के रोशनदान प्रायः फूटे मिलते। नींद कम आती थी। कपड़े कम थे और नीचे से फर्श टूटा-फूटा होता। दरवाजों के किवाड़ भी टूटे रखे रहते। पर इतना होने पर भी कभी मन मे विषाद नहीं आया। सबका लक्ष्य था दिल्ली पहुँचना और परवशता तो थी नहीं। स्वेच्छा से सब लोगों ने इसे झेला था। अतः विषाद की बात ही क्या थी।"

कुछ भाई बहिन भी इस पैदल यात्रा मे साथ थे। कुछ श्रावक मोटरों पर भी सारी यात्रा मे साथ रहे, परन्तु जो एक बार पैदल चल लेता था, वह फिर मोटर पर सवार होना पसन्द नहीं करता था। इस प्रकार एक बडी अच्छी टोली बन गई थी। आचार्य श्री का विनोदपूर्ण हास्य सभी को निरन्तर स्फूर्ति एवं प्रेरणा प्रदान करता रहता था। किसी भी व्यक्ति से जब आचार्य श्री यह पूछते कि कहो भाई, थकान का क्या हाल है तो सहसा ही सारी थकान दूर हो जाती और नयी स्फूर्ति से अगले विहार के लिए तैयार हो जाते। मार्ग मे अनेक गाँवो मे श्रद्धालु लोगों ने आचार्य श्री से अपने यहाँ कुछ समय रुकने का आग्रह किया; किन्तु निश्चित दिन निश्चित ध्येय पर पहुँचने का संकल्प निरन्तर आगे बढने के लिये प्रेरित करता रहा और ऐसा कोई आग्रह स्वीकार नहीं किया जा सका। अनुरोध करने वाले दिल्ली पहुँचने का महत्व जानकर स्वयं भी उसके लिए विशेष आग्रह नही करते थे। दिल्ली में अणुव्रत आन्दोलन तथा आचार्य श्री की अन्य सांस्कृतिक प्रवृत्तियों में दिलचस्पी रखनेवाले अनेक श्रावक श्राविकायें राजधानी के कार्यक्रमों में सम्मिलित होने के लिए दूर-दूर से दिल्ली आ पहुँचे थे।

आचार्य श्री के दिल्ली के अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रमो, आयोजनो, प्रवचनो तथा मुलाकातो का विस्तृत विवरण इस ग्रन्थ मे दिया गया है। पाठक स्वयं उनके सम्बन्ध मे सम्मति कायम करेगे तो अच्छा होगा। फिर भी सक्षेप मे यह बताना आवश्यक है कि आचार्य श्री ने अपने इस प्रवास मे एक भी समय ऐसा नहीं जाने दिया जब कि कोई न कोई कार्यक्रम नहीं होता था और जिज्ञासू अथवा मुमुक्षु लोग आचार्य श्री को घेरे न रहते थे। पैदल परिभ्रमण करते हुए भी सारी राजधानी का मन्थन अथवा विलोडन कर लिया गया। राष्ट्रपति भवन, मन्त्रियो के निवास स्थान, संसद सदस्यो के निवासगृह, सार्वजनिक सभास्थल, राजघाट, बन्दीगृह, हरिजन बस्ती, दिल्ली सचिवालय, न्यायालय, विद्यालय तथा ऐसे ही अन्य सब स्थान आचार्य श्री के शुभ पदार्पण से पवित्र हो गये और चारो ही ओर कोने-कोने में आचार्य श्री का जन-जीवन के नव-निर्माण का सन्देश गूंज उठा। उसकी प्रतिध्वनि से कितने ही देश-विदेश के विद्वान्, मुमुक्षु यात्री, विचारक, लेखक, पत्रकार, अनेक नैतिक व सास्कृतिक आन्दोलनो मे लगे हुये प्रचारक, बौद्ध भिक्षु, यूनेस्को के प्रतिनिधि, राजनीतिज्ञ आचार्य श्री के दर्शन प्राप्त करने और उनसे विचार-विनिमय करने के लिये आते रहे। अंग्रेज, अमेरिकन, फ्रांसीसी, जर्मन, जापानी, तथा श्रीलकावासी विदेशी अच्छी सख्या मे आचार्य श्री के सान्निध्य मे उपस्थित होते और चर्चावार्ता के बाद अत्यन्त सन्तुष्ट होकर लौटते। इन मुलाकातो मे विचारो का मन्थन बड़ा ही समाधानकारक रहा। पैदल यात्रा के कारण आचार्य श्री एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपने सघ के साथ जब विहार करते थे तब जनता श्रद्धा-भरी आँखो से स्वागत करती हुई सम्मान के साथ नतमस्तक हो जाती थी। चारो ओर राजधानी मे आचार्य श्री के नाम की धूम मच गई थी। दिल्ली को झकझोर कर आचार्य श्री ने उसमे नैतिक नवनिर्माण की जो नवचेतना पैदा की, उसका प्रभाव दूर-दूर तक फैल गया।

राजधानी के इन दिनो के कार्यक्रमो मे अणुव्रत सेमिनार, अणुव्रत

सप्ताह, चुनाव शुद्धि के लिए प्रेरणा और मैत्री-दिवस का आयोजन प्रमुख थे। अणुव्रत आन्दोलन आचार्य-श्री की प्रमुख देन है, जिसका लक्ष्य जन-जीवन का नैतिक नवनिर्माण करना है। आचार्य-श्री के नव-निर्माण के अनुसार राष्ट्रनिर्माण का भव्यभवन व्यक्तिगत जीवननिर्माण की ठोस एवं सुदृढ नीव के बिना खडा नही किया जा सकता। यह आन्दोलन उसी नीव का निर्माण कर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से यह आन्दोलन मानव को सर्वथा निर्भय बना कर वह अभयदान देना चाहता है, जिससे अणुआयुधो के निर्माण की होड़ निरर्थक सिद्ध होकर हिंसा-प्रतिहिंसा तथा घात-प्रतिघात की समस्त दुर्भावनाओ का स्वतः अन्त हो जायगा और अत्यन्त दु साध्य प्रतीत होने वाली निःशस्त्रीकरण तथा विश्वमैत्री आदि की समस्त समस्यायें सहज मे हल हो जायेगी। इसी हेतु आचार्य-श्री के दिल्ली प्रवास का शुभ श्री गणेश अणुव्रत सेमिनार से किया गया और दूसरा मुख्य आयोजन राष्ट्रीय-चरित्र निर्याण मूलक अणुव्रत चरित्र-निर्माण सप्ताह का रक्खा गया, जिसका उद्घाटन सप्रू भवन मे प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने किया था।

चुनाव सम्बन्धी भ्रष्टाचार और नैतिक पतन हमारे राष्ट्र की प्रमुख समस्या बन गये है। उनमे जातिवाद तथा सम्प्रदायवाद का बोलबाला है, उससे राष्ट्र के बड़े-बडे नेता भी चिन्ता मे पड़ गये हैं। उनके कारण पैदा हुई गुटबाजी ने काँग्रेस सरीखी शक्तिशाली संस्था की भी जड़ें हिला दी है। आचार्य-श्री ने इन सब अनर्थो के निवारण के लिए चुनाव शुद्धि के आन्दोलन को रामबाण औषध के रूप मे उपस्थित किया। उसकी उपयोगिता को चुनाव आयुक्त श्री सुकुमार सेन तथा सभी दलो के राजनीतिक नेताओं ने भी स्वीकार किया। उसके सम्बन्ध मे तैयार की गयी प्रतिज्ञायें यदि कुछ समय पहले उपस्थित की गयी होतीं, तो उनका निश्चित प्रभाव प्रकट हुए बिना न रहता। फिर भी जो विचारात्मक क्रान्तिकारी प्रेरणा उससे प्राप्त हुई, वह व्यर्थ नहीं गयी और भविष्य में उसके और भी अधिक शुभ परिणाम प्रकट होने

निश्चित है।

"मैत्री दिवस" का आयोजन राष्ट्रीय की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व अधिक रखता है। महात्मागाँधी की एक पथभ्रष्ट युवक द्वारा की गई निर्मम हत्या मानव समाज के प्रति किया गया एक बहुत बडा अपराध है। इसी कारण पारस्परिक भूलो एवं अपराधो की आन्तरिक प्रेरणा से क्षमा याचना करने के उद्देश्य से आयोजित इस दिवस के कार्यक्रम के लिए राजघाट से अधिक उपयुक्त दूसरा स्थान नही हो सकता था, और राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी से अधिक सात्विक दूसरा कोई राजनीतिज्ञ उसके उद्घाटन के लिये मिलना कठिन था। इस दिवस का शुभ आरम्भ इस भावना से किया गया कि प्रतिवर्ष किसी नियत दिवस पर यदि शुद्ध अन्तःकरण से सब लोग एक दूसरे के प्रति किये गये ज्ञात-अज्ञात अपराधो एव भूलों के लिये क्षमायाचना करेंगे तो विश्व का वातावरण इस पवित्र भावना से प्रभावित हुए विना न रहेगा और प्रत्येकव्यक्ति-व्यक्ति के रूप मे विश्वमैत्रीके लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार यह सबसे बड़ी और सबसे अधिक पवित्र भावनामय भेंट दे सकता है। इसी कारण राष्ट्रपति ने इस आयोजन का स्वागत करते हुए उसको स्थायी बनाने पर जोर दिया।

आचार्य-श्री के प्रवचनों मे इस बार एक अद्भुत और अलौकिक प्रेरणा निहित थी। उनके उद्गारो मे विस्मयजनक आकर्षण पाया गया। उनकी तपःपूत साधना मे दिव्य शक्ति विद्युत् शक्ति के समान विद्यमान थी। इसी कारण उनके प्रति बिना किसी प्रयास के अनायास ही छोटे-बड़े सभी क्षेत्रों में स्वाभाविक आत्मीयता पैदा हो गयी। हर किसी ने उनको अपना पथ प्रदर्शक मान लिया। आचार्य श्री का व्यक्तित्व धर्मगुरु के साथ-साथ जन-नेता के रूप में भी निखर उठा और अणुव्रत आन्दोलन यथार्थ मे जीवन, जागृति, ज्योति, प्रेरणा स्फूर्ति एवं क्रियाशीलता का स्रोत बन गया। समाचारपत्रो और रेडियो विभाग के सहयोग से उसको जो समर्थन मिला, उससे उस के महत्व

एवं उपयोगिता मे चार चाँद और लग गये।

चालीस दिन के अत्यन्त व्यस्त एवं व्यग्र कार्यक्रम से भी आचार्य श्री—दिल्ली की जनता की नैतिक भूख को पूरा नही कर सके। लोगो की प्रवल इच्छा थी कि आचार्य-श्री को अभी दिल्ली मे ही कुछ दिन और रहना चाहिये और अपने प्रवचनोके लाभ से उसको वंचित नही करना चाहिये। पिलानी के उदार-नेता सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला ने भी आचार्य-श्री से दिल्ली मे कुछ स्थायी रूप से रहने का अनुरोध किया था। उस अनुरोध मे दिल्ली की जनता की आकाँक्षा एवं आग्रह प्रतिध्वनित होता था, परन्तु सरदार शहर मे माघ महोत्सव के आयोजन के कारण आचार्य-श्री का राजधानी मे अधिक दिन रहना संभव न हो सका और दिल्लीवासियो को अतृप्त छोडकर आचार्य श्री ७ जनवरी को सरदारशहर के लिए विदा हो गये। लौटते हुए आने की अपेक्षा विहार मे कठोरता कहीं अधिक उग्र हो गयी। वर्षा और कुहरे की प्राकृतिक अड़चनो से अधिक वडी अडचन स्थान-स्थान पर रुकने के लिए किया गया लोगो का आग्रह था। आग्रह टाला जा सकता था; किन्तु वर्षा और कुहरे को कौन टालता? इस कारण होनेवाली देरी को विहार की गति वढाकर ही पूरा किया जा सकता था। रास्ते मे सर्दी का प्रकोप भी कुछ कम न था। आचार्य-श्री ने अपने जीवनकाल में पहली वार नांगलोई मे सर्दी के प्रकोप की शिकायत की। प्रातः-काल उन्होने कहा—"आज तो इतनी सर्दी लगी है कि इसके कारण रातभर जागरण करना पड़ा। यह पहला ही अवसर है कि इतने लम्बे समय तक सर्दी के कारण जागना पड़ा हो। पर यह खेद की बात नहीं है। खूब एकान्त का समय मिला। मनन, चिन्तन और स्वाध्याय मे खूब जी लगा। ऐसा एकान्त समय मुझे कभी ही मिला करता है, क्योकि सारे साधु तो गहरी नींद में सोये हुये थे।"

चिन्तन, मनन और साधना की यह कैसी ऊँची भावना है?

लौटते हुए पिलानी मे जो चार दिन का प्रवास हुआ उसका विवरण

भी इस ग्रन्थ मे दिया गया है। पिलानी शिक्षा का एक प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र होने के कारण ही नहीं; किन्तु वहाँ जो कार्यक्रम हुए, उनके कारण भी पिलानी के प्रवास का विशेष महत्व है। आचार्य-श्री ने वहाँ अपने पहले ही प्रवचन मेयह महत्वपूर्ण घोषणा की थी कि हमारा देश केवल कृषि प्रधान नही, किन्तु ऋषि प्रधान है और उस के ऋषियो की अमर वाणी ने सदा ही मानव को सुख शान्ति का आत्मिक सन्देश प्रदान किया है।

माघ कृष्णा ११ (२६ जनवरी, १९५७) को आचार्य-श्री संघ सहित सानन्द सकुशल सरदारशहर वापिस पधार गये। अपनी इस धर्मयात्रा के सम्बन्ध मे आचार्य-श्री ने सरदारशहर मे एक प्रवचन मे स्वय यह कहा—मेरी यह यात्रा अत्यन्त आनन्दायिनी रही। इसका एक मात्र कारण था—सकल्प की दृढता, और इसी दृढता के कारण अनेक बाधाओ के आने पर मै भी समझता हूँ कि मेरा प्रत्येक कार्य बिल्कुल नियत समय पर हो पाया। मैने यहाँ से चलते वक्त संकल्प किया था कि मुझे देहली ३० तारीख को पहुँचना है और ठीक उसी दिन वहाँ पहुँच गया। आने का भी मेरा निश्चय इसी प्रकार बिल्कुल पूरा हुआ। आप समझिये कि इतनी लम्बी यात्रा में घटो की भी देरी नही हुई है और यदि ऐसा होता तो सम्भव है मेरे कार्यक्रम मे बाधा आ सकती। पर मुझे इसकी खुशी है कि मेरी यात्रा बड़ी आनन्ददायी रही।

इस सफल और आनन्ददायी यात्रा का यह विवरण भी पाठको के लिए वैसा ही प्रेरणादायक एवं स्फूर्तिदायक होना चाहिए जैसी कि आचार्य-श्री की वह यात्रा प्रत्यक्ष मे थी। आचार्य-श्री के इस दिल्ली प्रवास से असंदिग्ध रूप मे यह प्रमाणित हो गया कि अणुव्रत आन्दोलन समय की एक प्रबल माँग है और आचार्य-श्री ने उसको पूरा करने का बीडा उठाकर एक महान् कार्य का सम्पादन किया है। "नहि कल्याण कृत्कश्चिद्दुर्गति तात गच्छति" की गीता की वाणी अणुव्रत

आन्दोलन पर सवा सोलह आने चरितार्थ हुई है । उपेक्षा, उपहास, निन्दा एवं विरोध की घनी घटा को भेद कर अणुव्रत आन्दोलन एक निश्चित तथ्य के रूप मे सूर्य के समान प्रकट हो गया है । अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से अणुव्रत आन्दोलन में अणुआयुधों के प्रतिकार की शक्ति एवं सामर्थ्य अनुभव की जाने लगी है ।

इस ग्रन्थ के सम्पादन कार्य मे अपने सहयोगी श्री प्रेमचन्द भारद्वाज (संयुक्त सम्पादक—"योजना"), श्री बाबू लाल जी शास्त्री, श्री सिद्ध-गोपाल जी काव्यतीर्थ और श्री प्रभात कुमार जी जोशी का जो अमूल्य सहयोग मुझे प्राप्त हुआ उसके लिए मै उनका हृदय से आभारी हूँ ।

४० ए हनुमान रोड
नई दिल्ली
१० अक्तूबर ५७

सत्यदेव विद्यालंकार

आभार प्रदर्शन

"नवनिर्माण की पुकार" अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी की दिल्ली-यात्रा का सक्षिप्त विवरण है, जो आचार्य श्री के प्रेरणादायी सदेशो, दार्शनिक प्रवचनो, देश-विदेश के लब्ध प्रतिष्ठ जननेताओ और विचारको के साथ जीवन-निर्माणात्मक तात्विक विषयो पर हुए वार्तालापो द्वारा मानव मात्र को चरित्र-निर्माण और अध्यात्म-जागृति का सृजनात्मक मार्ग देता है।

यह विवरण बहुत पहले ही प्रकाशित हो जाना चाहिए था। लगभग चालीस दिन के नई दिल्ली के प्रवास मे आचार्य श्री के पुण्य प्रभाव से राजधानी का कोना कोना प्रभावित हो उठा। इस प्रेरणादायक और महत्वपूर्ण विवरण के सम्पादन और प्रकाशन मे सुप्रसिद्ध हिंदी पत्रकार और यशश्वी लेखक भाई श्री सत्यदेव जी विद्यालंकार ने अपना अमूल्य सहयोग देकर आचार्य श्री के प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति और अणुव्रत आन्दोलन के प्रति अपनी अनुरक्ति का एक और सहज व स्वाभाविक परिचय दिया है। उनका सहयोग आन्दोलन के साथ उसके प्रारम्भ से ही रहा है। हिन्दी के दार्शनिक कवि आदरणीय श्री बालकृष्ण शर्मा ने उपोद्घात लिखने की कृपा की है। मैं दोनो विद्वानो के प्रति सविनय आभार प्रदर्शित करता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक के सुशृंखलित प्रकाशन मे चुरू के सहृदय साहित्य प्रेमी श्री हिम्मतमल जी, हंसराजजी, अभयसिंहजी सुराणा ने स्वर्गीय पूज्य श्री तिलोकचन्दजी सुराणा की पुण्य स्मृति मे नैतिक सहयोग के साथ आर्थिक सहयोग देकर अपनी सास्कृतिक एव साहित्यिक सुरुचि का परिचय दिया है, यह सबके लिए अनुकरणीय है। मैं आदर्श साहित्य सघ की ओर से सादर आभार प्रकट करता हूँ।

—जयचन्दलाल दफ्तरी

व्यवस्थापक, आदर्श साहित्य सघ

कहाँ — क्या

हम नराश क्यो हो ? (उपोद्घात)— दार्शनिक कवि श्री बालकृष्ण जी शर्मा "नवीन" ३

प्राक्कथन श्री सत्यदेव विद्यालंकार ५-१६

आभार प्रदर्शन श्री जयचन्दलाल दपतरी २०

कहाँ-क्या २१-२२

पहला प्रकरण

आयोजन २३-१२८

बौद्धगोष्ठी २५, प्रेस सम्मेलन ३१, अणुव्रत गोष्ठी ३३, राष्ट्रपति भवन में ३६, अणुव्रत गोष्ठी ४२, अणुव्रत गोष्ठी ५२, राष्ट्रीय चरित्र निर्माण मूलक अणुव्रत सप्ताह का उद्घाटन ५७, विद्यार्थी जीवन का निर्माण ६५, शान्ति का मार्ग ७०, हरिजन बनाम महाजन ७५, पाप का सुधार ७६, महिलाओं का दायित्व ८४, पैसे की भूख ८६, आत्मतत्त्व का बोध ६२, आज के व्यापारी ६८, चुनावो मे चरित्र शुद्धि १०१, संस्कृति का रूप १०७, कार्यकर्ताओं का दायित्व १०८, मैत्री दिवस का आयोजन १११, संस्कृत गोष्ठी १२०, साहित्य गोष्ठी १२३, विदाई समारोह १२४, पिलानी में संस्कृत साहित्य गोष्ठी १२५

दूसरा प्रकरण

प्रवचन १२६-१८२

श्रमण संस्कृति का स्वरूप १३०, धर्म व नीति १३४, विद्याध्ययन का लक्ष्य १३६, श्रद्धा व आत्मनिष्ठा १४१, मानवधर्म १४३, सच्ची प्रार्थना व उपासना १४७, जीवन की साधना १५०, वीरता की कसौटी

१५३, धर्म का रूप १५५, मेधावी कौन ? १५६, आत्मगवेषणा का महत्व १५८, आत्मविस्मृति का दुष्परिणाम १५९, ऋषि प्रधान देश १६१, विद्यार्थी जीवन का महत्व १६३, विद्यार्थी-जीवन का महत्व १६२, नैतिकता और जीवन का व्यवहार १७७, अध्यापको का दायित्व १७८ जैन दर्शन तथा अनेकांतवाद १७९ नैतिक निर्माण और जीवन शुद्धि १८१

तीसरा प्रकरण

मन्थन १८३-२५८

लंका निवासी बौद्ध भिक्षु १८५, दो जापानी विद्वान १८७, राष्ट्र-कवि १८८, श्रीमती सावित्री निगम १९०, श्री एलविरा १९२, दलाई लामा १९३, बौद्ध भिक्षु १९४, मारल रिआर्मामेन्ट के प्रतिनिधि १९८, 'इंडियन एक्स प्रेस' के समाचार सम्पादक २०१, श्रीमोरार जी देसाई २०२, विदेशी मुमुक्षु २०५, प्रधान मंत्री श्री नेहरू २०६, श्री अशोक मेहता २११, श्री गुलजारीलाल नन्दा (पहली बार) २१४, श्री महेन्द्र मोहन चौधरी २१५, यू० पी० आई के डाइरेक्टर २१६, टाईम्स आफ इंडिया के डिपुटी चीफ रिपोर्टर २१८, श्री गुलजारीलाल नन्दा (दूसरी बार) २२१, दो जर्मन सज्जन २२३, अमरीकी महिला जिज्ञासु २२५, उपराष्ट्रपति २३०, 'स्टेटस्मैन' के दिल्ली संस्करण के सम्पादक २३३, लोक सभा के अध्यक्ष २३४, राष्ट्रपति के निजी सचिव २३७, हिन्दू महा सभा के अध्यक्ष तथा मंत्री २३८, परराष्ट्र मंत्री २४१, 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सम्पादक श्री दुर्गादास (पहली बार) २४२, राष्ट्रकवि २४५, नैतिकता के एक प्रचारक २७८, केन्द्रीय श्रम उपमत्री २४९, हिन्दुस्तान टाईम्स के सम्पादक श्री दुर्गादास (दूसरी बार) २५०, राष्ट्रपति २५३, फ्रांस के राजदूत २५६ ।

विविध प्रसंग २५९-२७०

यात्रा विवरण २७३-२७६

पहला प्रकरण

आयोजन

आयोजन (१) बौद्धगोष्ठ।

श्रमण संस्कृति का मूल—अहिंसा

अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक जैन श्वेताम्बर तेरापन्थ के आचार्य श्री तुलसीगणी अपने ३१ शिष्यो तथा अनेक श्रावक श्राविकाओ के साथ २६ नवम्बर सन् १६५६ को नई दिल्ली के यंग मेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन हाल मे पधारे जहाँ कि बौद्धगोष्ठी का विशेष आयोजन किया गया था। आचार्य श्री के सरदार शहर से दो सौ मील का पैदल प्रवास करने के बाद नई दिल्ली पधारने पर यह पहला आयोजन था, जिसमे वे यात्रा से सीधे सम्मिलित हुए। स्वागत समारोह एवं अभिनन्दन का आयोजन नहीं किया गया था, क्योकि आचार्य श्री कामकाज के सम्मुख उसको कुछ भी महत्व नहीं देते। लम्बी यात्रा के बाद विश्राम करने का प्रश्न भी काम मे जुटने में बाधक नहीं हो सकता था। फिर भी उपस्थित श्रावक श्राविकाओ ने अभिनन्दनपरक नारों से आचार्य श्री का स्वागत किया और वे नारे शीघ्र ही अत्यन्त शान्त एवं गम्भीर वातावरण मे विलीन हो गये। आयोजन के उपयुक्त वातावरण पहिले से ही बना हुआ था। आचार्य श्री का पदार्पण जमुना मे गंगा के संगम की तरह हुआ, जिसमे इतनी बड़ी संख्या में जैन साधु और बौद्ध भिक्षु सम्भवतः पहिली ही बार सम्मिलित हुए। काषाय (पीताम्बर) वस्त्रधारी बौद्ध भिक्षुओ के साथ शुभ्रवस्त्रधारी जैन मुनियो का समागम अत्यन्त भव्य, दिव्य, सात्विक एवं मनोमुग्धकारी दृश्य उपस्थित कर रहा था।

आचार्य श्री के द्वार पर पहुँचते ही जर्मन विद्वान प्रो० हर्मन जैकोबी के दो शिष्य प्रो० ह्यासनोथ और प्रो० हॉफमैन स्वागत के लिये आगे आये। वे बहुत देर से बड़ी उत्सुकता से उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

भवन मे सामने काषाय वस्त्रधारी ससार के विभिन्न भागो से समागत अनेक बौद्ध भिक्षु बैठे थे। पीछे राजधानी के सम्माननीय लोगो, विदेशी राजदूतो, यूनेस्को काफ्रेन्स मे समागत प्रतिनिधियो, पत्रकारो तथा श्रावक श्राविकाओ से हॉल खचाखच भर गया। नम्मोक्कार मत्र का उच्चारण होते ही समस्त लोग खड़े हो गये।

सुमधुर ध्वनि मे अति श्रद्धालीन उपस्थिति मे नमस्कार मंत्र का उच्चारण हुआ। अति शात वातावरण मे प्रो० एम० कृष्ण मूर्ति द्वारा आयोजन का उद्देश्य बताये जाने के बाद आचार्य श्री ने अपना प्रवचन प्रारम्भ करते हुए कहा :—

बौद्ध सेमिनार के सदस्यो ! भाइयो और बहिनो ! आज मै अभी अभी जो राजस्थान से दो सौ मील पैदल चलकर आया हूँ, इसका उद्देश्य यही है कि राजधानी मे दूर दूर के देशो से आये हुये विद्वानो से विचार विनिमय कर सकूँ। आज यहाँ जो बौद्ध गोष्ठी का आयोजन किया गया है, इसका लक्ष्य भी आपस मे विचारो का आदान प्रदान करना ही है अत. उचित है कि मै आपको अपने जैन मुनियो और जैन धर्म का परिचय दूं।

जैन मुनियो का यह नियम होता है कि वे जीवन भर पैदल यात्रा करते हैं। किसी भी अवस्था मे अपना बोझ आप ही उठाते हैं। वे मधुकरी वृत्ति से घर घर भिक्षा माँगते हैं। वे उद्दिष्ट यानी अपने लिये बनाया हुआ भोजन नहीं लेते। जैन साधुओ के लिये मास खाना सर्वथा वर्ज्य है। भगवान महावीर ने इसका दृढतापूर्वक विरोध किया है, क्योकि इससे वृत्तियाँ बिगड़ती हैं। जैन साधु पाँच महाव्रतो का पालन करते हुये जीवन यापन करते हैं, जैसा कि भगवान महावीर ने कहा है :—

अहिंस सच्चं च अतेणमं च,
ततो य बम्भ य परि गाइ च।
पडिवज्जिया पच महत्व याइं
चरेज्ज धम्म जिणदेसियं विउ॥

यह पद्य उत्तराध्ययन सूत्र का है, जिसका उपदेश भगवान महावीर ने अपने निर्वाण के अन्तिम समय दिया था।

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भारत मे एक संस्कृति का विकास हुआ था, जिसका नाम था 'श्रमण सस्कृति'। जैन और बौद्ध उसी एक संस्कृति की दो धारायें है। यद्यपि आजीवक आदि और भी धाराएँ श्रमण संस्कृति की थी, पर आज जैन और बौद्ध ये दो ही धाराएँ बच पाई है। श्रमण संस्कृति का मतलब है अपने अहिंसक श्रम द्वारा जीवन यापन करना। इस दृष्टि से मुझे दोनो धाराओ मे बड़ा साम्य मालूम होता है। जिस प्रकार अहिंसा का नाम लेते ही उसके साथ जैन और बौद्ध दोनो का नाम याद हो आता है उसी प्रकार भगवान महावीर और बुद्ध का नाम अपने आप आ जाता है। धम्मपद मे भगवान बुद्ध ने कहा है :—

"अहिंसा सत्व पाणानां अरि योति पबुच्चति।"

इसी तरह भगवान महावीर ने कहा है—

"अहिंसा सत्व भूएसु संजमो।"

यह ठीक है कि भगवान महावीर ने अहिंसा का सूक्ष्म विवेचन करते हुए कहा है—"स्थूल दृष्टि से अहिंसा का मतलब प्राणी रक्षा से लिया जाता है पर सूक्ष्म दृष्टि से अपनी आत्मा को बुराइयो से बचाना ही अहिंसा है। जो लोग जीवन रक्षा के लिये हिंसा करते हैं, वे तथ्य को नहीं जानते। जैसे अन्न बचाने की दृष्टि से किया जाने वाला उपवास यथार्थ दृष्टि से उच्च नहीं है, उसी प्रकार प्राणी रक्षा के लिये की जाने वाली अहिंसा भी उच्च नहीं है। उपवास करने पर अन्न तो अपने आप बच ही जाता है उसी प्रकार जीवन रक्षा तो अहिंसा का प्रासंगिक फल है। अतएव भगवान महावीर ने संयम और अहिंसा को एक ही कहा है।

जातिवाद के विषय मे दोनो ही धाराओ मे बडा साम्य है। जैसे महात्मा बुद्ध ने कहा है :—

न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
कम्मुना वसलो होइ, कम्मुना होति ब्राह्मणो ।।

उसी प्रकार भगवान महावीर ने कहा है—

"कम्मुणा बह्मणो होइ, कम्मुणा होई खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होई, सुद्दो हवई कम्मुणा ।।"

इसी प्रकार पुनर्जन्म, कर्मवाद आदि मे भी दोनो मे बड़ी समानता है। इसके सिवाय इन दोनो मे भेद भी है। जैन धर्म जहाँ कठिन चर्या को स्थान देता है, वहाँ बौद्ध धर्म मध्यम प्रतिपदा को मानता है। भगवान महावीर ने केवल कठिन चर्या पर ही जोर नहीं दिया है, ध्यान को भी बड़ा महत्व दिया है। उन्होने कहा है—दो दिनो मे होने वाली शारीरिक तपस्या से जितने कर्म कटते हैं, उतने चार मिनट के ध्यान से कट जाते हैं। अत. उन्होने ध्यान पर बड़ा जोर दिया है। मेरी दृष्टि मे जैन धर्म आचार और विचार दोनो ही दृष्टियो से मध्यम प्रतिपदा है।

विचार की दृष्टि से जैन धर्म अनेकात मे विश्वास करता है और आचार की दृष्टि से अणुव्रत का मार्ग भी बताता है, क्योकि महाव्रतो को सब पाल नही सकते। यद्यपि विवेचन तो अन्तर दृष्टि से होना चाहिये पर आज हमे समन्वय की बात अधिक देखनी चाहिये। इस प्रकार यदि हम समन्वय की तरफ ध्यान रखेंगे तो हमारे पास अहिंसा एक ऐसा तत्त्व है जिससे हम संसार का बहुत भला कर सकते है।"

प्रो० एम० कृष्णमूर्ति साथ साथ आचार्य श्री के भाषण का अंग्रेजी मे अनुवाद करते जाते थे।

प्रवचन के बाद प्रो० ग्लासनीय ने अपने विचार प्रकट किये। उन्होने बताया कि किस प्रकार उनकी जैन दर्शन मे रुचि पैदा हुई। अपने द्वारा जैन दर्शन पर लिखी गई पुस्तक की भी उन्होने चर्चा की। आज आचार्य श्री के गुरु कालुगणी और अपने गुरु डा० हर्मन जैकोबी के मिलन को याद कर वे अत्यन्त आनन्दविभोर हो रहे थे कि उन दोनो गुरुओं के दोनो शिष्य आज फिर मिल रहे हैं।

जैन धर्म और बौद्ध धर्म

इसके बाद जापान के बौद्ध भिक्षु फ्यूजी ने जापानी भाषा मे अपनी प्रसन्नता प्रगट की, जिसका हिन्दी अनुवाद उनके ही साथी एक भिक्षु कर रहे थे। अपने भाषण के अन्त मे उन्होने एक प्रश्न आचार्य श्री के सामने रखा "जब बौद्ध और जैन धर्म बहुत कुछ समान है तो फिर बौद्ध धर्म की तरह जैन धर्म भी व्यापक पैमाने पर तथा भारत से बाहर क्यो नही फैला ?

आचार्य श्री ने उत्तर देते हुए कहा—पहले बौद्ध धर्म और जैन धर्म भारत मे बहुत फैले थे, यह बात इतिहास सिद्ध है। पर समय के प्रभाव से बौद्ध धर्म विदेशो मे बहुत फैल गया। इसका कारण है कि बौद्ध भिक्षु स्वय विदेशो मे गये और अपने धर्म का प्रचार किया। जैन मुनि एसा नहीं कर सके। जिस धर्म के साधु स्वयं उसका प्रचार नही करते वह धर्म फैल नही सकता। यही कारण है कि जैन धर्म अपने प्रभाव क्षेत्र भारत वर्ष मे ही रहा। अत्यधिक विरोधो के बावजूद भी वह भारत मे टिका रहा—यह उसकी विशेषता है।

जैन धर्म विदेशो मे नहीं फैल सका, इसका दूसरा कारण है—बौद्ध धर्म ने मध्यम मार्ग अगीकार किया अत. वह जन साधारण के अनुकूल था और लोगो ने उसे स्वीकार कर लिया।

जैन धर्म मे भी मध्यम मार्ग का प्रतिपादन है, फिर भी तात्कालिक साधुओ द्वारा स्थापित मर्यादाओ के कारण वह इतना कठोर बन गया कि हर एक आदमी के लिये उसका पालन करना कठिन हो गया और बहुत कम लोग जैन धर्म को अपना सके। फिर भी मुझे खुशी है कि श्रमण सस्कृति के ही एक अंग बौद्ध धर्म का विदेशो मे प्रचार हुआ। दोनो ने जातिवाद और ईश्वर कर्तृत्व के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई। दोनो ही कर्मवाद और पुरुषार्थवाद को प्रश्रय देते हैं। यह उनमे बडी समानता है और यही मेरी खुशी का कारण है।

इस अवसर पर मै एक प्रश्न बौद्ध भिक्षुओ से भी कर लेता हूँ कि भारत मे प्रवर्तित होकर भी बौद्ध धर्म भारत मे अपना अस्तित्व क्यो नही रख सका ?

इसका उत्तर भारत के एक बौद्ध भिक्षु महेन्द्र ने दिया। उन्होने कहा—"मुझसे यह प्रश्न बहुधा पूछा जाता है और इसका उत्तर मै यह दिया करता हूँ कि बौद्ध धर्म का अनुयायी हम उसे मानते हैं, जिसके हृदय मे भगवान बुद्ध के प्रति श्रद्धा हो और यह भी सही है कि कोई भी भारतीय ऐसा न होगा, जिसके हृदय मे भगवान बुद्ध के प्रति श्रद्धा न हो। अतः हमारी दृष्टि से प्रत्येक भारतीय बौद्ध है। आचरण की बात तो यह है कि लोग जितना सदाचरण करते है, वह बौद्ध धर्म की शिक्षा के विपरीत तो है नही अतः हम उसी को बौद्ध धर्म का आचरण व अस्तित्व मान लेते है।

आचार्य श्री ने कहा—हाँ, मुझे भी लोग बहुधा पूछते है कि जैन धर्म के अनुयायी इतने थोड़े क्यो हैं ? मै उन्हें यह उत्तर दिया करता हूँ कि जो व्यक्ति सदाचारी और अहिंसा मे विश्वास रखने वाले हैं वे सारे जैन हैं तो आप जैनो की सख्या थोडी क्यो मान लेते है, वे बहुत है।"

मुनि श्री नगराज जी ने आचार्य श्री के दिल्ली आगमन पर हर्ष प्रकट करते हुए कहा—"भगीरथ ने इतनी बडी तपस्या की तो वह गगा को धरती पर लाने मे समर्थ हुआ किन्तु हमारे लिये कितनी सौभाग्य की बात है कि बिना परिश्रम किये ही तपस्या की यह गंगा स्वय चलकर हमारे घर आ गई। आज मै आचार्य श्री का जितना भी आभार मानूँ, उतना थोडा है। हम आचार्य श्री का स्वागत क्यो करें ? उनकी स्वयं की दृष्टि यह रहती है कि वे स्वागत नही, काम चाहते है। इसलिये हमने आज स्वागत समारोह नहीं रखा। हमे आचार्य श्री ने यहाँ की रखवाली के लिये भेजा था। आज आचार्य श्री स्वयं ही पधार गये हैं, वे देख लें कि हमने अपना कर्त्तव्य कैसे कितना निभाया है।

अणुअस्त्र बनाम अणुव्रत

१ दिसंबर १९५६ को प्रेस सम्मेलन का आयोजन किया गया था। मुनि श्री नगराज जी ने अणुव्रत आदोलन तथा उसके प्रवर्तक आचार्य श्री का परिचय दिया। फिर आचार्य प्रवर ने अणुव्रत आंदोलन की नैतिक क्रांतिमूलक भावना का विश्लेषण करते हुए उसकी आज तक की गतिविधि एवं बहुमुखी कार्यक्रमों से प्रेस प्रतिनिधियो को अवगत कराते हुए कहा—

आज का जन-जीवन समस्याओ से आक्रात है। अमीरी और गरीबी की समस्या है। शोषक और शोषितो की समस्या है, तिस पर भी विश्व क्षितिज पर आज अणु-अस्त्रो की विभीषिका मंडरा रही है। विभिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक तनाव बढते जा रहे हैं। यह महा समस्या है। अणु अस्त्रों के निर्माण और उनके प्रयोगो ने समग्र विश्व को एकाएक मौत के मुँह पर खडा कर दिया है। यह सब क्यो ? यह इसलिये कि आज का विश्व भौतिक विकास के शिखर पर चढा है। आज उसके जीवन का भौतिक पक्ष परम पुष्ट है। परन्तु आध्यात्मिक और नैतिक विकास के अभाव में उसकी स्थिति पक्षाघात के बीमार सी होती जा रही है। मानवता मरती जा रही है और दानवता पुष्ट होती जा रही है। जीवन के वरदान भी अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं। भारतीय चिन्तकों ने अध्यात्म और नैतिक सामर्थ्य को बढावा दिया है, परिणाम स्वरूप विश्व को दैवी सम्पदा मिली। पाश्चात्यो, विशेषतः वैज्ञानिको ने भूतवाद को बढ़ावा दिया। उसके परिणाम हैं—अणुबम और उद्जनबम। आज की सारी समस्याओ और विभीषिकाओ का समाधान मानव के नैतिक उदय मे अंतर्निहित है। अणुव्रत आंदोलन नैतिक जागृति का एक क्रांतिकारी कदम है। वह विश्व मे सुषुप्त नैतिकता को पुनर्जीवित करना

चाहता है। यदि ऐसा हुआ तो उद्योगपति मजदूरो का शोषण नही करेंगे, भूमिपति किसानो पर बेरहम नहीं होगे, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर बम बरसाने की बात नही सोचेगा और उस नैतिक उदय के नवप्रभात मे "आत्मवत्सर्वभूतेषु—प्राणीमात्र को अपने जैसा समझो" "वित्तेण ताण न लभे पमत्ते—धन सग्रह से मनुष्य को त्राण नही मिल सकता"—ये भावनाएँ घट घट मे घर कर जायेंगी।

अणुव्रत आदोलन को प्रारंभ हुये लगभग ७ वर्ष हो गये। प्रारंभ मे वह लोगो को स्फुलिग मात्र लगता था किन्तु अब उसके ज्योतिपुंज होने मे विश्वास जमने लगा है। आदोलन का प्रथम वार्षिक अधिवेशन सात वर्ष पूर्व देहली मे हुआ था। ६२१ व्यक्तियो ने चोर बाजारी न करना, रिश्वत न लेना, मिलावट न करना, झूठा तौल माप न करना आदि समग्र प्रतिज्ञायें ली थी। पत्रकार जगत् ने 'कलियुग मे सतयुग का अवतरण' कहकर उस सवाद को अपने मुख पृष्ठ पर स्थान दिया था पर साथ साथ यह भी व्यक्त किया गया था कि किसी सतयुग का मूल्याकन तभी होगा, जब वह अपना स्थायित्व बना लेगा। आज मुझे आप पत्रकारो के बीच यह बताते हुये प्रसन्नता होती है कि अणुव्रत आंदोलन तब से आज तक विकासोन्मुख है। आज समग्र भारतवर्ष मे मेरे सहित लगभग ६५० शिष्य साधुजन, सैकड़ो कार्यकर्त्ता व अनेको संस्थायें नैतिक जागरण की पुनीत भावनाओ को आगे बढाने में दत्तचित्त हैं। आये दिन नये नये उन्मेष इस दिशा मे होते जा रहे है। समग्र नियम लेने वाले अणु व्रतियो की संख्या लगभग ४००० है और प्रारभिक नियम लेने वाले सदस्यो की संख्या १ लाख से भी अधिक है विगत दो वर्ष मे मैने विद्यार्थी वर्ग के चरित्र निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया। लगभग २ लाख विद्यार्थियो ने साक्षात् संपर्क मे आकर नैतिक प्रेरणा प्राप्त की है। सहस्रो छात्रो ने निर्धारित प्रतिज्ञायें भी ली हैं। इसी प्रकार हमारा यह वर्गीय कार्यक्रम मजदूरो, व्यापारियो, कर्मचारियो, कैदियो, पुलिस आदि विभिन्न वर्गों मे सफलता से चल रहा

है। आंदोलन के तथा प्रचार के और भी विभिन्न कार्यक्रम है।

अभी मैं कुछ विशेष लक्ष्य से ही देहली आया हूँ। भारतवर्ष सदा से नैतिक व आध्यात्मिक ज्योति का प्रसारक रहा है। भगवान महावीर और बुद्ध का शिक्षा आलोक दूर दूर तक समुद्रो पार पहुँचा। अभी देहली मे नया अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन हुआ है। यह बहुत सुन्दर होगा कि बाहर से आने वाले लोग भारतवर्ष के नैतिक सदेशो को विदेशो मे ले जायें। यह निर्यात सब के लिये हितकर होगा। लगता है भारतवर्ष में नैतिक उपदेशो की बहुलता होने के कारण उनका भाव सदा सा होता जा रहा है। अन्य पदार्थो के निर्यात से जैसे भावो की तेजी आ जाती है, मैं सोचता हूँ इस नैतिक निर्यात से देश मे भी उसका मूल्य बढेगा। इसी हेतु ता० २-३-४ दिसबर को यहा अणुव्रत सेमीनार आयोजित किया गया है। आशा है भारतवर्ष का यह देश व्यापी आदोलन विदेश मे भी गति पायेगा, जो कि समस्त मानव जाति के लिये हितकर है।

प्रवचन के पश्चात् प्रश्नोत्तर हुए। अन्त में श्री छगनलाल शास्त्री ने आभार प्रदर्शन किया।

आयोजन (३) अणुव्रत गोष्ठी का प्रारम्भ

नवनिर्माण का महान अनुष्ठान

२ दिसम्बर १९५६ के प्रात.काल यंग मेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन हाल मे अणुव्रत गोष्ठी का आयोजन किया गया था। आचार्य श्री पंचमी समिति से निवृत्त होकर सीधे वहाँ पधारे।

एक तरफ स्टेज पर गृहस्थ कार्यकर्ता बैठे थे। दूसरी ओर काष्ठ पट्टों पर आचार्य श्री तथा उनसे नीचे साधु साध्वीगण बैठे थे। सामने

देश विदेश के विद्वान्, विचारक, यूनेस्को कान्फ्रेन्स मे आये प्रतिनिधि, पत्रकार, आदोलन में निष्ठा रखनेवाले नागरिको का विशाल जन-समूह उपस्थित था। वातावरण बडा गभीर और आकर्षक था।

सर्वप्रथम ऑल इडिया रेडियो दिल्ली की म्यूजिक डायरैक्टर श्रीमती मुटाटकर ने मगलगान किया।

आज की समस्याये

स्वागताध्यक्ष प्रो० एम० कृष्णमूर्ति के ओजस्वी स्वागत भाषण के बाद अतरराष्ट्रीय ख्यात नामा विद्वान् यूनेस्को के डाइरैक्टर जनरल डा० लूथर इवेन्स ने गोष्ठी का उद्घाटन किया।

उन्होने अपने भाषण मे कहा—

ससार आज समस्याओ मे उलझा है। अनेक प्रकार की समस्यायें उसके सामने है। पर आश्चर्य है कि उन्हें जानते हुए भी हम उन्हें सुलझा नहीं पा रहे है। सरकारें भी चाहती हैं कि उनके पारस्परिक सबध कटु न हो, कोई भी आक्रमण न करे, पर वे उन्हें सफल करने का कोई हल प्रस्तुत नहीं कर सकी है। मनुष्य एक प्रयत्नशील प्राणी है। वह हमेशा से प्रयत्न करता रहा है। हम लोग यूनेस्को के द्वारा शांति के अनुकूल वातावरण बनाने की चेष्टा कर रहे है। इधर अणुव्रत आंदोलन भी प्रशसनीय काम कर रहा है, यह बड़ी खुशी की बात है। मै इसकी सफलता चाहता हूँ कि आपका यह सत्कार्य संसार मे फैले और शाति का मार्ग दर्शन करे।

सुख और शान्ति का मूल

आचार्य श्री ने अपने आत्मग्राही प्रवचन मे कहा—

"मनुष्य का जीवन सरस भी है, नीरस भी है, सुख भी है, दुःख भी है, सब कुछ भी है, कुछ भी नहीं है।

जीवन कला है।

नीरस को सरस, दुःख को सुख, कुछ भी नही को सब कुछ बनाने वाला कलाकार है।

मनुष्य कलाकार है।

कला गूढ की अभिव्यक्ति है।

गूढ़ को अभिव्यक्त करने वाला कलाकार है, वह गूढ़ से भी गूढ़ है।

अतिगूढ़ को समझने के लिये पूर्व तैयारी अधिक चाहिये। अति स्पष्ट से अभिलषित विकास नहीं होता। इन दोनो से परे का मार्ग, 'व्रत' है। वह जीवन की कला है। असंयम के घोर अधकार मे संयम की अर्धरेखायें भी पथ निश्चित बता देती है।

घोर हिंसा और सूक्ष्म अहिंसा के बीच का जो मार्ग है, वही बहुतों के लिये शक्य है।

अपरिमित संग्रह और अपरिग्रह के बीच का जो मार्ग है, वही बहुतो के लिये है।

युद्ध और संघर्षमय दुनिया मे जीने वाले अहिंसा और अपरिग्रह की लौ न जला सकें—ऐसी बात नहीं है। अहिंसक होना अन्तिम दर्जे की वीरता है। हिंसक बने रहना पहले दर्जे की कमजोरी है। भय से भय बढता है, घृणा से घृणा। क्रूरता का प्रतिफल क्रूरता और विरोध का प्रतिफल विरोध है। हिंसा के प्रति हिंसा का सिद्धात फलित हो रहा है।

भयाकुल मनुष्य उन्मुक्त आकाश मे सो नहीं सकता। किवाड़ो से बन्द मकानो मे और बडे बड़े शस्त्र धारियो के पहरे मे सोता हुआ भी सुख से नींद नहीं ले सकता। शाति का प्रकाश अभय के सान्निध्य मे फैलता है।

मन और आत्मा को बेचकर शरीर की परिचर्या करने वाले लोग सुख के सामने शांति को आँखो से ओझल किये देते हैं। सुख शारीरिक स्रोतो से उत्पन्न होने वाली अनुभूति है। शांति का प्रतिष्ठान मन और आत्मा है। साधारण लोग शाति के लिये सुख को नहीं ठुकरा सकते, किन्तु अशाति पैदा करने वाले सुख से बच तो सकते हैं।

अशाति दुःख का कारण है फिर भी सुख के लिये अशाति को मोल लेने मे मनुष्य नही सकुचाता। अंत मे परिणाम दु ख ही होता है।

शाति के बिना सुख के साधन भी सुख पैदा नहीं करते। शाति का मूल्य सुख से बहुत अधिक है। यही सही समझ है। इसमे बाहरी विकास की उपेक्षा भी नही है। आंतरिक विकास के अभाव मे पनपने वाली बाहरी विकास की भयकरता या निरकुशता भी नहीं है। सुख के साधन पदार्थ, उनका सग्रह और उनका भोग हैं। शाति का साधन संयम या त्याग है।

सग्रह और अशाति का उद्‌गम-बिन्दु एक है। सामान्य स्थिति मे वह अभिव्यक्त नहीं होता। संग्रह के बिन्दु इधर रेखा बनाते चलते हैं तो उधर अशाति भी समानातर रेखा के रूप मे बढती जाती है। संग्रह की भूख सब को है, अशाति को कोई नही चाहता।

मन को दावानल मे डाले और वह जले भी नहीं, यह कैसे होगा ?

कार्यकारण का सही विवेक किये बिना भटकना नहीं मिटेगा। दो सौ वर्ष पहले की बात है—आचार्य भिक्षु ने कहा—परिग्रह से धर्म नहीं होता। तब यह बहुत अटपटा लगा।

युद्ध परिग्रह के लिये होते हैं, अणुबम भी उसी के लिये बनते हैं।

अधिकारो के उप जैन मे क्रूरता बरतनी पड़ती है। उनकी सुरक्षा के लिये और भी अधिक। अधिकार-दान या धन-दान क्रूरता का आवरण है।

शोषण का पोषण करने वाले दानियो की अपेक्षा अदानी बहुत श्रेष्ठ हैं। शोषण न करने वाला स्वयं धन्य है, चाहे वह एक कौड़ी भी न दे।

शोषण का द्वार खुला रखकर दान करने वाला, हजारो को लूट कुछेक को देने वाला कभी धन्य नही हो सकता।

अशाति की जड़ परिग्रह-विस्तार या अधिकार-विस्तार की भावना है। दुःख की जड़ अशांति हैं। इसीलिये तो सुख-सवर्धन के हजारो वैज्ञानिक उपकरणो के सुलभ होने पर भी सुख दुर्लभ होता जा रहा है। अभय और शांति किनारा कसती जा रही है। मैं अधिक गहराई में

नहीं जाऊँगा। थोड़ी गहराई मे गये बिना गति भी नही है। पेट को पकड़े बिना बाहरी उपचार से कुछ बनने का नहीं है।

सुख के बाहरी उपादानो को बढाने की दिशा मे अणु-युग का प्रवर्तन हुआ है। इसमे भयंकरता के दर्शन होने लगे है। अणु बुरा नहीं है, वह भयंकर भी नहीं है। भयंकरता मनुष्य मे है। भय से भय आता है, अभय से अभय। अपने मन से भय को निकाल दीजिये, अणु की भयंकरता नष्ट हो जायगी। मन मे भय बढता रहा तो अणु और अधिक भयंकर बन चलेगा। अणु अस्त्र वाले अणु अस्त्र वाले से नहीं घबड़ाते। जिनके पास अणु अस्त्र नहीं हैं—वे अणु अस्त्र वालों से डरते हैं। यह अणु और स्थूल की टक्कर है। सफलता के जमाने मे विषमता नहीं हो सकती। इसीलिये भय बढ रहा है। अणु की टक्कर अणु से होने दीजिये, भय रहेगा ही नही।

स्थूल अस्त्रो से अणु-अस्त्रो का प्रतीकार नहीं हो सकता। अणु-अस्त्र अणु-अस्त्रों के प्रतिकार मे लगेंगे तो दोनो मिट जायँगे। प्रतीकार के दोनो मार्ग गलत हैं।

अणुव्रत संग्रह की प्रवृत्ति को मर्यादा मे बाँधता है। अधिकार और इच्छायें सिमट कर अपने क्षेत्र मे आजाती हैं, अभय का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। अणुबमों को हतवीर्य करने का यही सरल मार्ग है।

"अणुव्रतो के द्वारा अणुबमो की भयकरता का विनाश हो, अभय के द्वारा भय का विनाश हो और त्याग के द्वारा संग्रह का ह्रास हो", ये घोष उच्चतम सभ्यता, संस्कृति और कला के प्रतीक बनें और इस कार्य मे सबका सहयोग जुडे तो जीवन की दिशा बदल सकती है।

अपनी शान्ति के लिये अणुव्रत अपनाइये, अपनी शान्ति के लिये अभय बनिये, अपनी शान्ति के लिये संग्रह को कम करिये। आपके अणुव्रतो की आभा दूसरो को भी आलोक देगी। आपका अभय भाव शत्रु को भी मित्र बनायेगा।

आप द्वारा किया गया संग्रह का अल्पीकरण अणु-आयुधो के लिये

अपनी मौत आप मरने की स्थिति पैदा करेगा। विश्व के विशिष्ट चिन्तकों, लेखकों, कलाकारो से जो अपने अपने राष्ट्र की सजीव भावनाओ के प्रतीक बन कर यहाँ आये हैं, मैं हृदय की गहरी संवेदना के साथ कहना चाहूँगा कि वे जीवन मे 'व्रतो के प्रयोग" की दिशा को व्यापक बनाने मे लगें। हमारे संयम से हमारा हित होगा, दूसरो को प्रेरणा मिलेगी, थोड़ा-बहुत दृष्टिकोण बदला तो व्यापक हित होगा। अहिंसा, शान्ति और मैत्री के लिये यत्नशील व्यक्ति और संगठनों के सारे निखद्य प्रयत्न शृंखलित हो—यह मै चाहता हूँ। राजनीतिक दलबन्दी से दूर रहकर विशुद्ध मानवता व भाईचारे की दृष्टि से कुछ अन्तर्राष्ट्रीय दिवस मनाये जायें। जैसे—

(१) अहिंसा दिवस—नि.शस्त्रीकरण का प्रयोग किया जाय।

(२) मैत्री दिवस—अपनी भूलो के लिये क्षमा माँगी जाय और दूसरो को उनकी भूलो के लिये क्षमा दी जाय।

ये समारोह प्रेरणा के स्रोत बन सकते हैं और बिखरे प्रयत्नो को सामूहिक रूप दे सकते हैं। मैं अपनी भावना के प्रति सहयोगियो की सद्भावना के लिये कृतज्ञ हूँ। अहिंसा के प्रयत्नो की सफलता चाहता हूँ।

रचनात्मक उपक्रम

मुनि श्री नगराज जी ने अणुव्रत आन्दोलन के बारे मे अपने विचार प्रस्तुत करते हुये बताया—

अणुव्रत आन्दोलन ने राष्ट्र मे नैतिक विचार-जागृति का वातावरण लाने मे उपयुक्त भूमिका तैयार की है। व्यक्ति व्यक्ति के जीवन-शोधन और नैतिक विकास के माध्यम से इसने जन-जीवन को सही विकास की ओर आगे बढ़ने की एक दिशा दी है। यह जीवन-शुद्धि की सार्वजनीन रूपरेखा को लेकर चलने वाला एक रचनात्मक उपक्रम है, जो मानवता के नव निर्माण के संदेश के रूप में आगे बढ रहा है। वह निर्माण चरित्र-उत्थान पर आधारित है।

आत्मबल का स्रोत-अणुव्रत

इंडियन नैशनल चर्च बबई के सर्वोच्च अधिकारी फादर डा० जे० एस० विलियम्स ने, जो स्वयं अणुव्रती हैं, जोशीली भाषा मे अपने उद्‌गार प्रगट करते हुये कहा कि अणुव्रत आन्दोलन ने उनमे कितना आत्मबल और साहस फूंका है। यूरोप जैसे पश्चिम के ठण्डे मुल्कों की अपनी यात्रा मे भी उन्होंने मादक पदार्थों को नहीं छुआ। इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्वीडन, रूस आदि देशों की अपनी यात्रा के बीच वहाँ के लोगों को किस प्रकार उन्होंने अणुव्रत आन्दोलन के आदर्शों मे अवगत कराया, इसका भी उन्होंने अपने भाषण मे उल्लेख किया।

अन्त मे अणुव्रत-समिति की ओर से श्री मोहनलाल कठौतिया ने समागत सज्जनों को धन्यवाद दिया। इस प्रकार अणुव्रत गोष्ठी की पहली बैठक का कार्यक्रम अत्यन्त आनन्दोत्साह पूर्ण वातावरण मे सम्पन्न हुआ।

आयोजन (८) राष्ट्रपति भवन मे समारोह

जीवन शुद्धि का महान अनुष्ठान

आज २ दिसम्बर १९५६ को सूर्यग्रहण था अत: गोचरी प्रथम प्रहर मे ही होगई थी और गोष्ठी के प्रातःकालीन कार्यक्रम के बाद आचार्य श्री साधु-साध्वी एव श्रावक श्राविकाओं के साथ राष्ट्रपति भवन पधारे।

राष्ट्रपति जी और आचार्य श्री के बीच पन्द्रह मिनट तक एकांत मे बातचीत हुई। फिर आचार्य श्री और राष्ट्रपति जी साथ-साथ मुगल गार्डन मे, जहाँ आज का आयोजन रखा गया था, पधार गये।

भारत की आध्यात्मिकता

पहले आचार्य श्री ने आन्दोलन का परिचय देते हुये अपने भाषण मे कहा—

'मुझे प्रसन्नता है कि भारत के राष्ट्रपति अध्यात्म भावना के प्रतीक है। भारत एक अध्यात्म प्रधान देश है और आगे भी मै यह चाहूँगा कि भारत की जो आध्यात्मिकता है वह प्रतिदिन बढ़ती जाये। इसमे साधुओ का सहयोग तो है ही, अगर नेताओ का सहयोग भी, जैसा कि आज है, रहे तो निश्चय ही वह खूब बढ सकती है। हमारे ऋषियो ने कहा है कि राज्यसंपत्—यह कोई सर्वोत्तम वस्तु नही है। सर्वोत्तम वस्तु है सयम। इसीलिए अणुव्रत आन्दोलन का घोष है—"संयमः खलु जीवनम्" सयम ही जीवन है। वास्तव मे संयम से बढकर और कोई धन नहीं है।

अणुव्रत आन्दोलन के लिये आज जनता की भावना बढ़ रही है, जैसा कि स्वयं राष्ट्रपति जी ने भी कहा था कि अब इसे जनता से मान्यता मिल गई है और यह उचित भी है। जब तक आन्दोलन को जनता से मान्यता नहीं मिलती, तब तक वह फैल नहीं सकता।

आज से ७ वर्ष पूर्व जब इसका पहला अधिवेशन दिल्ली में हुआ था, तब हमे यह आशंका थी कि आन्दोलन मे जाति, देश, धर्म और रंग का कोई भेद न होते हुये भी लोग इसे साम्प्रदायिक मानकर इसमें सहयोग देंगे कि नही ? पर राष्ट्रपति जी ने कहा था कि आपकी भावना सही है अतः आप काम करते जाइये। लोगो की भावना अपने आप बदलती जायगी। हुआ भी ऐसा ही। आज लोग इसे साम्प्रदायिक दृष्टि से नही देखते है। यह देश मे फैल रहा है। अभी दिल्ली आने का भी हमारा लक्ष्य यही है कि यूनेस्को के अधिवेशन का अवसर उसके लिये सर्वथा उचित है। अभी यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के लोग आये हुये हैं। उनके साथ पारस्परिक संपर्क एवं परिचय हो ; आज का

राष्ट्रपति भवन का प्रसंग भी इसी उद्देश्य से है। इससे राष्ट्रपति जी की अणुव्रत आन्दोलन के प्रति श्रद्धा स्वयं प्रकट हो रही है।

आन्दोलन का अभिनन्दन

राष्ट्रपति जी ने अपने भाषण मे कहा :—

पिछले कई वर्षो से अणुव्रत आन्दोलन के साथ मेरा परिचय रहा है। शुरुआत मे जब कार्य थोडा आगे बढा था, मैने इसका स्वागत किया और अपने विचार बतलाये। जो काम आज तक हुआ है, वह सराहनीय है। मैं चाहूँगा इसका काम देश के सभी वर्गो मे फैले, जिससे सब इससे लाभान्वित हो सकें। इस आन्दोलन से हम दूसरो की भलाई करते हैं, इतना ही नहीं, अपने जीवन को भी शुद्ध करते हैं, अपने जीवन को बनाते है। संयम की जिन्दगी सबसे अच्छी जिन्दगी है। इसीलिये हम चाहते हैं कि सभी वर्गो मे इसका प्रचार हो। सबको इसके लिये प्रोत्साहित किया जाये।

हमारे देश मे कई तरह के लोग हैं। अणुव्रत आन्दोलन का काम पहले व्यापारियो मे किया गया। उनकी बुराइयो को दूर करने का प्रयत्न किया गया। ज्यो-ज्यो काम बढता गया, दूसरे वर्गो को भी लिया गया। अभी अभी जैसी मेरी आचार्य जी से बात हुई, कुछ और लोगों मे भी काम किया जावेगा। दो तरह के लोग होते हैं—कुछ ऐसे जो मामूली तौर से अच्छे होते है, उन्हें और अच्छा बना देना चाहिए। कुछ ऐसे लोग हैं, जो उस तरह के समाज के संपर्क से या जिनकी वैसी ही जिन्दगी रही है, इससे या दूसरे कारणों से बुराइयो मे पड़े हुए हैं, उन्हें सुधारना, ऊँचे रास्ते पर लाना मुश्किल है, पर हम चाहते है उनको भी अपने काम के दायरे मे लें और ऐसा आचार्य श्री ने विचार किया है।

अन्त मे आपने कहा—"बुराई मत करो, नुक्सान मत करो, जिन्दगी को अच्छा रखो"—यह हर कोई कह सकता है; परन्तु केवल

ऐसा कहने का असर नहीं पडता। असर केवल उनका पड़ता है, जो जैसा कहते हैं, वैसा करते भी हैं। इसलिये हमारे आचार्यो का, धर्म-गुरुओ का यह काम है कि वे लोगो मे उद्‌बोधन पैदा करें। साधु-समाज, धर्मगुरुओ का समाज, जिनके जीवन में कोई दोष नही है, वे ऐसा कर सकते हैं। हमारा देश धर्म परायण देश है। मामूली आदमी के बजाय धर्मगुरु या धर्माचार्य जो कहते है, उसे योग निष्ठा से सुनते हैं। मुझे विश्वास है, आपकी बात लोग सुनेंगे। इसलिये जब शुरू मे मुझे इस आन्दोलन के बारे में मालूम हुआ, मैने इसका स्वागत किया। मुझे यह जानकर और भी खुशी हुई कि आप इस क्षेत्र को और बढ़ाने के सम्बन्ध मे काम कर रहे है। जिन वर्गो मे कोई खास ऐब हो, उन्हें मिटायें, मैं आशा करता हूँ, इसमे आपको सफलता मिलेगी। अच्छे कामो में सबका सहयोग मिलता है और मिलेगा। सहयोग के अभाव में काम खराब नहीं होता। आपका काम फले-फूले, आगे बढे। मै यह कामना करता हूँ।"

मुनि श्री नगराज जी ने भी इस प्रसग पर भाषण दिया। कुमारी यामिनी तिलकम् ने सस्कृत मे मंगलगान किया। इस प्रकार अति स्वाभाविक वातावरण मे आज का कार्यक्रम संपन्न हुआ।

आयोजन (५) अणुव्रत गोष्ठी

अणुव्रत गोष्ठी की तीसरी बैठक

नैतिक विकास की महान योजना

'अणुव्रत गोष्ठी' का दूसरे दिन का समारोह ३ दिसंबर १९५६ को आचार्य प्रवर के सान्निध्य में हर्ष विभोर वातावरण में प्रारंभ हुआ।

बंबई निवासिनी श्रीमती कांता बहिन जवेरी तथा कुमारी इला

बहिन जवेरी एम० ए० ने मंगलगान किया।

आज के अधिवेशन मे मुनि श्री नथमल जी, हिन्दी जगत् के सुप्रसिद्ध कवि एवं साहित्यकार, संसत्सदस्य श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राष्ट्र के सुप्रसिद्ध समाजवादी विचारक आचार्य जे० बी० कृपलानी, बम्बई की भूतपूर्व मेयर श्रीमती सुलोचना मोदी, 'जीवन साहित्य' के संपादक श्री यशपाल जैन, अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री पारस जैन तथा श्री छगनला ा शास्त्री ने निर्धारित विषय "नैतिक विकास की योजना" पर अपने-अपने विचार प्रकट किये।

नैतिक दीप

श्री नवीन जी ने आचार्य श्री के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा व भक्ति प्रदर्शित करते हुये कहा—"आचार्य प्रवर का व्यक्तित्व अगम्य है। आप एक असाधारण व्यक्ति हैं। निरंतर दस दिन के लंबे विहार से आप के पैर छिल गये, यह देखकर मै गद्‌गद् हो उठा। मन में सहज ही प्रश्न उत्पन्न हुआ कि आखिर आचार्य जी इतना परिश्रम क्यो कर रहे हैं। कुछ सोचा, समाधान मिला कि महान् व्यक्ति अपने लिये नहीं जीते। जन साधारण के हित के लिये उनका जीवन होता है। प्रश्न समाहित हुआ।

कल आचार्य श्री का प्रवचन सुनकर मेरे हृदय में श्रद्धा का स्रोत वह चला। उनके प्रवदन मे द्रष्टा की वाणी सुनाई दी। जो केवल पढ़ लेता है, वह ऐसा भाषण नहीं कर सकता, अनुभूति से ही ऐसा बोला जा सकता है। साधारण व्यक्ति आँखो देखी बात कहता है। इसीलिये उसकी वाणी का कोई महत्व नहीं रहता। अनुभूत वाणी मे वेग होता है, उसका असर भी होता है। अनुभव तपस्या का फल है। आचार्य श्री का जीवन तपस्वी-जीवन है।

जीवन प्रगति का प्रतीक है। स्थिरता से ह्रास होता है। इसीलिये "चरैवेति चरैवेति" का मत्र सामने आया। अणुव्रत प्रगति के साधक हैं।

वे जीवन मे विकास लाते है, अवरोध नहीं। व्रत छोटे हैं किन्तु उनमें प्रचण्ड शक्ति है। वे जीवन की छोटी-छोटी बातो को भी छूते हैं। इनको अच्छी तरह समझ लेने से जीवन "सत्यं शिवं सुन्दरम्" बन सकता है।

अणुव्रती व्यक्ति सुधार से आगे बढ़ते हैं, उनकी गति मे वेग होता है। वे रुकते नही, व्यक्ति से समष्टि की तरफ चलते ही जाते हैं। जहाँ व्यक्ति और समष्टि मे सामंजस्य नही होता, वहाँ नाकारी स्थिति पैदा हो जाती है। आज के युग मे आचार्य विनोबा भावे तथा आचार्य श्री तुलसी इसी सामंजस्य के प्रतीक हैं। ऐसे नैतिक दीप ससार के तम को हरते रहे हैं और हरते रहेंगे।"

भोग बनाम त्याग

मुनि श्री नथमल जी ने अपने भाषण मे कहा—"आज हमारे सामने दो पक्ष हैं—एक आकर्षण का और दूसरा विकर्षण का। जितना आकर्षण भोग मे है, वह त्याग मे नहीं—यह संस्कारो का परिणाम है। हिंसा और भोग के आकर्षण को प्रभाव शून्य बनाने के लिये अमिताभ बनना प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य होना चाहिये। धन का ढेर या अधिकारो की आकाक्षाएँ 'अमिताभ' नहीं बना सकती। आत्मा 'अमिताभ' है। उसे पाना सहज नहीं। पवित्रता ही उसे प्राप्त करने का साधन है। पवित्रता लादी नहीं जा सकती, वह स्वतः आती है। व्रतो से जीवन 'अमिताभ' बनता है।

नैतिक उत्थान

श्रीमती सुलोचना मोदी ने अपने भाषण मे कहा—"आज देश मे नाना तरह के आंदोलनो की चर्चा है। किंतु कोई भी आंदोलन पूर्णतः मानव के अनैतिक व्यवहारो को नहीं छूता। वे एक अंग को छूकर चलते हैं। अणुव्रत आंदोलन ही एक ऐसा आंदोलन है, जो पूर्णतः नैतिक है। यह नैतिक उत्थान की बातें कहता है। कानून हृदय को नहीं

छूता। उसकी गति व्यक्ति के ऊपर की तह तक ही होती है। व्रत हृदय मे घुसते हैं और चिपक जाते हैं।

बाल्य जीवन सस्कारो को ग्रहण करने वाला जीवन होता है। उसे हम जिस प्रकार चाहें, उसी प्रकार मोड़ सकते है। मै चाहती हूँ आज की यह सभा सरकार से यह अपील करे कि ऐसा प्रबंध किया जाए जिससे बच्चो को प्रारंभ से ही अणुव्रत शिक्षा मिल सके।

अणुव्रतों की महिमा

आचार्य जे० बी० कृपलानी ने अपनी विनोदपूर्ण भाषा मे अनूठे ढंग से भाषण करते हुए कहा—

व्रत अच्छे हैं, पर मैं इनके लायक नहीं। मेरा जीवन राजनीति मे रचा-पचा है। धर्म मे निष्ठा अवश्य है किन्तु उसमे मेरा प्रवेश नहीं है। मुझे राजनीति से सन्यास ले लेना चाहिये किन्तु मै उसे छोड़ नहीं सकता। मैं मानता हूँ कि व्रतो के बिना दुनिया चल नहीं सकती। व्रतो को त्यागने से सर्वनाश हो जाता है। मै व्यक्ति सुधार मे विश्वास नहीं रखता। सामूहिक सुधार को सत्य मान कर चलता हूँ। व्यक्ति सुधार की प्रक्रिया मे वह वेग और उत्साह नही रहता, जितना सामूहिक सुधार मे रहता है। इसके तात्कालिक परिणाम भी लोगो को आकृष्ट कर लेते हैं। अणुव्रत आदोलन इस दिशामे मार्ग सूचक बने, ऐसी मेरी भावना है।

सजीव कार्यक्रम

श्री यशपाल जैन ने अपने भाषण मे कहा—अणुव्रत आदोलन हमारी निगाह को बाहर से हटा कर अपने भीतर की ओर देखने की प्रेरणा देने का सजीव कार्यक्रम है। वैयक्तिक जीवन मे समाये गहरे दोषों के परिमार्जन की यह एक सफल योजना है।

अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री पारस जैन ने अपने भाषण मे कहा—आज हमारा जीवन दुकानदारी का जीवन हो गया है। सर्वत्र हम स्वार्थ साधने की धुन में लग रहे हैं। दुकानदारी के स्थान पर मेहमान-दारी का, स्वार्थ के बदले निःस्वार्थ का जीवन हमारा बने, अणुव्रत आंदोलन हमे यह सिखाता है।

नैतिक प्रगति

श्री छगनलाल शास्त्री ने अपने भाषण मे कहा—यदि जीवन में नैतिकता नहीं, सयमाचरण नहीं तो कैसा जीवन ! वह केवल कहने भर को जीवन है। उसमे सारवत्ता और ओज नहीं होता। आज व्यक्ति की, समाज की, और राष्ट्र को कुछ ऐसी ही स्थिति बनती जा रही है। प्रायः सर्वत्र इस ओर पराङ्मुखता दिखाई देती है। फलतः व्यक्ति सचाई से गिर रहा है, ईमान से हाथ धो रहा है, चरित्र निष्ठा से मुँह मोड़ रहा है, केवल भौतिक अभिसिद्धियो की प्राप्ति और स्वार्थ पूर्ति मे अधा बन कर। इसलिये उसका जीवन आज ध्वस्त-विध्वस्त है, उसकी व्यवहार चर्या और चरित्र के बीच लम्बी दरारें और गहरी खाइयाँ पड़ गई हैं, जिन्हें पाटना आज अत्यन्त आवश्यक है। जिसके लिये नैतिक विकास और चारित्र्य जागृति का उज्ज्वल वातावरण अपेक्षित है। यह कहते प्रसन्नता होती है कि अणुव्रत आंदोलन नैतिक विकास की एक सफल योजना है। यदि समाज, राष्ट्र और जनजन ने इसे आत्मसात् किया तो यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि उसको एक नये परिष्कार, शुद्धि और शाति का वरदान प्राप्त होगा।"

नैतिक निर्माण का आंदोलन

अंत मे आचार्य प्रवर ने अपने उपसंहारात्मक भाषण में कहा—"अणुव्रतो के प्रति लोगो मे निष्ठा बढ़ रही है। आंदोलन के प्रति भाव उमड़-उमड़ कर आ रहे हैं—यह शुभ सूचना है। आज का जन जीवन

यह महसूस करने लगा है कि भौतिक सिद्धियाँ ही सब कुछ नहीं हैं। इससे परे भी कुछ 'अमिताभ' है, जिसे हमे पाना है। हमें यह नहीं सोचना है कि हमारे कार्यक्रमो मे कितने नेता इकट्ठे होते हैं। हमे यह भी नहीं सोचना है कि हमारे कार्यक्रमो की क्या-क्या प्रशंसायें होती हैं। परन्तु हमे सोचना यह है कि हमारे कार्यक्रमो से लोगो को क्या मिलता है। हमे यह सोचना है कि हम नैतिक उत्थान में कितने सहायक बन सकते हैं।

मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि अणुव्रत आंदोलन इतना सीधा-सादा होने पर भी लोग इससे दूर रहते है। इसमे अपना हित जानते हुए भी वे नजदीक नहीं आते, यह क्यो ? अणुव्रती बनने में संकोच क्यो ? लोग शायद इसे साम्प्रदायिक समझते हों किन्तु आंदोलन के ७ वर्षो के सार्वजनिक कार्यक्रमो से यह भावना भी ढह चुकी है। अभी कल जब राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी से मिलना हुआ, तब आंदोलन के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हुए उन्होने कहा था कि आंदोलन के प्रति शुरू से मेरी निष्ठा रही है। जब कि लोग इसे जानते भी नहीं थे, तब से मैं इसका प्रशंसक रहा हूँ। इसका लगाव किसी सम्प्रदाय विशेष से न रहने के कारण ही यह व्यापक बन रहा है, यह खुशी की बात है।

आज राष्ट्र के नेता इसे असाम्प्रदायिक समझने लगे हैं और इसे उचित प्रश्रय भी मिल रहा है। आज का जन-जीवन विषाक्त है—यह मैं जानता हूँ। लोगो की दुर्बलताएँ भी मुझ से छिपी नहीं हैं। लोग कषायों से मुक्त नहीं हैं। वर्तमान स्थिति पर कवि का यह कथन पूरा उतरता है कि—

"दग्धोऽग्निना क्रोधमयेन दष्टो,
दुष्टेन लोभाख्य महोरगेण ।
ग्रस्तोऽभिमानाजगरेण माया—
जालेन बद्धोऽस्मि कथं भजे त्वाम् ॥"

"क्रोध की अग्नि से मानव का हृदय जल रहा है, लोभ की ज्वालाएँ सारे विवेक को भस्मसात् कर रही हैं। मानरूपी अजगर सारे जीवन को निगल रहा है और माया के पेचीदे जाल मे फँसा मानव छटपटा रहा है।"

ऐसी अवस्था मे व्रतो का पालन संभव नही होता—ऐसा लोग सोचते है। यह नही भूल जाना चाहिए कि व्रत ही जीवन के प्राण हैं, उनके बिना जीवन सुखमय नही बन सकता और जीने की कला नहीं आ सकती, तब तक जीवन मिट्टी के समान बना रहता है। अणुव्रत आंदोलन जीवन की कला सिखाता है। कषायो से मुक्त करना ही उसका प्रमुख लक्ष्य है।

व्रतो से व्यक्ति श्रमनिष्ठ बनता है। श्रम से जीवन हलका महसूस होता है। हमारा श्रम मे पूर्ण विश्वास है। अभी-अभी मै अपने इन शिष्यो व साथियो के साथ दो सौ मील की पैदल यात्रा करते हुए यहाँ आया हूं। मेरे कन्धे खाली थे किन्तु इन साधुओ के कंधे भाराक्रांत थे—फिर भी वे आनन्द का अनुभव करते थे। विहार के श्रम से वे थकते नही थे। वे श्रम को अपनी साधना का एक प्रमुख अंग समझते है। इस कष्टमय साधना मे उन्हें अपने लक्ष्य के दर्शन होते है। श्रम इनके जीवन का अविभाज्य अंग है। श्रम ही जीवन है, यह हमारा घोष है। परन्तु श्रम सात्विक होना चाहिये, तामसिक नहीं।

आज व्रतो के प्रति लोगो मे निष्ठा बढ़ रही है, यह ठीक है। किन्तु जब तक इनका सक्रिय प्रयोग जीवन मे नही होगा तब तक बुराई मिटेगी नहीं। केवल व्रतो की गुणगाथा गा लेने मात्र से कुछ भी बनने का नहीं है।

यह आंदोलन विश्व मे चल रहे अन्य आंदोलनो से सर्वथा भिन्न है। यह नैतिक जीवन के प्रति केवल निष्ठा ही पैदा नहीं करता अपितु जीवन को नैतिक बनाने की दिशा में सक्रिय कदम उठाता है। यह जीवन को भाराक्रांत नहीं बनाता, भारमुक्त करता है। एक बार इसमे

प्रवेश कर लेने पर व्यक्ति उससे छूटने का विचार नही करता। व्रत व्यक्ति मे चिपक जाते हैं। ज्यो-ज्यो श्रद्धा बढती है, त्यो-त्यों जीवन व्रतमय बनता जाता है। भूदान मे व्यक्ति कुछ भूमि का दान कर अपनी जिम्मेवारी से छूट सकता है किन्तु इस आंदोलन से वह छूट नही सकता। ज्यो-ज्यो समय व्यतीत होता है त्यो-त्यों जीवन मे जिम्मेवारियाँ बढ़ती जाती हैं।

मै मानता हूँ कि व्यक्ति एकाएक व्रती नहीं बन सकता, किन्तु गूंगा बेटा बाप को, बाप कहे तो लाखन के अनुसार उसके प्रति अपनी भावना अच्छी रखे तो अवसर पर वह भी व्रती बन सकता है। मै सदा आशा वादी रहा हूँ। आज आंदोलन के प्रति सद्भावनायें बढ रही हैं तो वह दिन भी दूर नहीं, जब कि समस्त वर्गो मे नीति की प्रतिष्ठा होगी।

व्रती बनने मे सकोच नही होना चाहिये। जन साधारण के बीच व्रतो को ग्रहण करना लोग आडम्बर समझते हैं, यह उनकी भूल है। जनसमूह के बीच किये गये सकल्पो से आत्मबल बढ़ता है, जिम्मेवारी आती है—ऐसा मेरा अनुभव है।

अणुव्रत-गोष्ठी आप को नाना प्रकार के विचार दे रही है। विचारो की क्रांति आचार को उत्पन्न करती है। अणुव्रतो पर आप विचार करें। उसकी भावना को अपने मित्रो तक पहुँचायें और जीवन को तदनुकूल बनाने का प्रयास करें।

अणुव्रत गोष्ठी की अन्तिम बैठक

अहिंसा और विश्वशान्ति

४ दिसम्बर १९५६ को 'अणुव्रत गोष्ठी' का अंतिम दिन का कार्यक्रम था। देश विदेश के सम्भ्रात सज्जनो के अतिरिक्त विशेषतः विभिन्न देशो के बौद्ध भिक्षु उपस्थित थे। पिछले दो दिनो से उपस्थिति अधिक थी। सामने की पंक्ति मे पीतवस्त्रधारी बौद्ध भिक्षु थे और उनके पीछे की पक्तियो मे राज्यकर्मचारी, विशिष्ट अधिकारी व दूर दूर से आये सज्जन बैठे थे।

प्रारभ मे बंबई निवासी श्री रश्मिकुमार जवेरी ने अणुव्रत प्रार्थना का गान किया। आज के लिये निर्धारित विषय था—"अहिंसा और विश्वशान्ति"—जिस पर मुनि श्री बुधमल जी राष्ट्र के सुप्रसिद्ध विचारक—काका कालेलकर, अखिल भारतीय कांग्रेस के महामंत्री श्री श्रीमन्नारायण, दिल्ली राज्य विधान सभा की भूत पूर्व अध्यक्षा डा० सुशीला नायर, हिन्दी जगत् मे सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्र-कुमार, प्रो० एम० कृष्ण मूर्ति, ससतसदस्या श्रीमती सुचेता कृपलानी, श्रीमती सावित्री देवी निगम तथा दिल्ली के जन सेवी श्री गोपीनाथ 'अमन' ने अपने विचार प्रगट किये।

काका कालेलकर ने कहा—"श्रमण और भिक्षु शांति-सेना के सैनिक हैं। नैतिक प्रसार और प्रचार के लिये उन्होने जीवन को जगाया है—यह उचित है। अणुव्रत-आदोलन मे नैतिक विचार क्रांति के साथ साथ बौद्धिक अहिंसा पर भी बल दिया गया है—यह इसकी अपनी विशेषता है।"

जीवन का आंदोलन

अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के महामत्री श्री श्रीमन्नारायण ने कहा —

प्रारंभ से ही मै इस गोष्ठी मे शामिल होने की भावना रखता था, किन्तु कार्यवश आ नहीं सका। अणुव्रत आदोलन की जबसे मुझे जानकारी हुई है, तभी से मैं इसका प्रशंसक रहा हूँ। इसके संबंध मे मेरा आकर्षण इसलिये हुआ कि यह आदोलन जीवन की छोटी छोटी बातो पर भी विशेष ध्यान देता है। बड़ी बातें करने वाले बहुत हैं, किन्तु छोटी बातों को महत्त्व देने वाले कम होते हैं।

यह आंदोलन क्रमिक विकास को महत्त्व देता है—यह इसकी विशेषता है। एक साथ लक्ष्य पर नहीं पहुंचा जा सकता, एक एक कदम आगे बढ़ा जा सकता है। अभी कुछ दिन हुए मैं अणुव्रत आंदोलन के सप्तम अधिवेशन मे भाग लेने सरदार शहर गया था। मैंने देखा हजारो लोग नैतिक व्रतो को अपनाने के लिये तैयार होते हैं और अपना जीवन शुद्ध करते हैं। उन पर व्रत थोपे नहीं जाते, वे स्वयं अपनी आत्म-प्रेरणा से व्रत ग्रहण करते हैं। उनमे जीवन शुद्धि की तड़प मैंने देखी।

अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे आज पंचशील की चर्चा है। मैं मानता हूँ कि अणुव्रत आंदोलन अपने देश में पंचशील का आंदोलन है। इसका जितना ज्यादा प्रचार होगा, उतना ही देश का हित सम्भव है।

डा० सुशीला नायर ने कहा—प्रत्येक व्यक्ति धर्म की दुहाई देता है किन्तु धर्म का आचरण नहो करता। मै चाहती हूँ—धर्म के नाम की जगह धर्म का काम हो। कानून से सर्वोदय नहीं हो सकता। व्रतो से ऐसा ही संभव है। कानून से धन छीना जा सकता है प्राइवेट एंटरप्राइज के बदले स्टेट एंटरप्राइज शुरू किया जा सकता है किन्तु सौहार्द या प्रेम नही पाया जा सकता। अणुव्रतो से दोनों साथ साथ सहज मे सध जाते हैं।

अणुव्रत आदोलन जीवन के मूल्यो को बदलता है। हृदय और बुद्धि

.य हो, आचार और विचार का समन्वय हो, कथनी और करनी समन्वय हो—यही अणुव्रतो का ध्येय है। सेमिनार विचार-विमर्श के लिये किये जाते हैं। इनसे विचारो मे क्रांति आती है। विचार जब सक्रिय बनते है, तब जीवन प्रशस्त बनता है।

अहिंसा की चुनौती

हिन्दी जगत् के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमार ने अपने भाषण मे कहा—अहिंसा का इतिहास भी हो सकता है और तत्त्ववाद भी। उसमे मुझे नही जाना है। इतिहास और तत्त्ववाद के माध्यम से देखने पर उसमे मतवाद आ जाता है। मै अहिंसा को समग्र रूप मे, जिसमे शक्ति है—चेतना है, देखना चाहूँगा। आज हिंसा की अहिंसा के प्रति एक चुनौती है। जो हिंसा को नही मार सकती, वह अहिंसा नहीं है। जो हिंसा से समझौता करे, उसे मै अहिंसा नही मान सकता। सिद्धान्त की कसौटी व्यवहार है, जो व्यवहार पर खरा सिद्ध नही होता, वह सिद्धांत कैसा? मुझे यह कहते प्रसन्नता है कि महाव्रत का मार्ग जगत् से एकदम निरपेक्ष नही है, अणुव्रत उसका उदाहरण है। व्रत जीवन मे किनारे जैसे है। यदि नदी के किनारे न हो तो उसका पानी रेगिस्तान में सूख जाय। किनारे नदी को बाधने वाले नही होने चाहिये वे उसको मर्यादा मे रखने वाले होने चाहिये। ऐसे ही वे किनारे जीवन-चैतन्य को विकास देने वाले, और दिशा देने वाले हो सकते है।

प्रो० एम० कृष्णमूर्ति ने अपने भाषण मे कहा—जो जीवन अहिंसा से अभिव्याप्त है, वही सच्चा जीवन है। अहिंसा की अभिव्याप्ति जीवन मे आत्म चेतना जगाती है। आत्म जागृत व्यक्ति सहजरूप से विकारो से परे हो जाता है।

मुनिश्री बुद्धमल जी ने अपने भाषण मे कहा—वह विश्व के लिये परम हर्ष का दिन होगा, जब वह आत्मा से यह जान जायेगा कि हिंसा के द्वारा उसे कभी शांति मिलने वाली नही है। शांति तभी होगी जब

वह हिंसा के विरुद्ध कमर कस कर उससे मुकाबला लेने के लिये सन्नद्ध होगा।

विश्वशांति का प्रतीक

संसत्सदस्या श्रीमती सावित्री देवी निगम ने कहा—अर्थबल, सैन्य-बल या विज्ञान के बल पर आज भारत ऊंचा नहीं उठा है। उसकी महानता का कारण है संयम की साधना। आचार्य श्री तुलसी ने जो उपक्रम चालू किया है, वह बुनियादी कार्य है, इसकी उपेक्षा नही की जा सकती। भारत मे चलने वाले अन्य आदोलनो ने बुराई को पकड़ा अवश्य है किन्तु जड जनके हाथ नहीं आ सकी। आचार्य श्री ने बुराई की जड़ को पकड़कर एक विशेष काम किया है। यह आदोलन विश्व-शांति का प्रतीक है, ऐसा मै मानती हूँ और सबसे यह अपील करती हूँ कि वे ज्यादा से ज्यादा इसमे सहयोग देकर अपने कर्त्तव्य का पालन करें।

जीवन शुद्धि

संसत्सदस्या श्रीमती सुचेता कृपलानी ने कहा—अणुव्रत आंदोलन जीवन शुद्धि का आदोलन है। जब कार्य और कारण दोनो शुद्ध होते हैं तब परिणाम भी शुद्ध होता है। अणुव्रत आदोलन के प्रवर्तक का व उनके साथी साधुओ का जीवन शुद्ध है, अणुव्रतो का कार्य क्रम भी पवित्र है, इसलिये इनके कहने का असर पडता है।

अणुव्रत आदोलन के व्रत सार्वजनीन हैं। प्रत्येक वर्ग के लिये इसमे व्रत रखे गये हैं। यह इसकी अपनी विशेषता है। व्रतो की भाषा सरल व स्वाभाविक है। अहिंसा आदि व्रतो का विवेचन सामयिक व युगानुकूल है। अहिंसा की व्याख्या व व्रतो मे शब्दो का सकलन मुझे बहुत ही प्रभावोत्पादक लगा। कहा गया है—जीव को मारना या पीड़ा पहुँचाना तो हिंसा है ही, किन्तु मानसिक असहिष्णुता भी हिंसा है। अधिकारो का दुरुपयोग भी हिंसा है। कम पैसो से अधिक श्रम लेना भी हिंसा है,

आदि आदि। इसी प्रकार प्रत्येक व्रत जीवन को छूते हैं। अणुव्रतियों का जीवन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। मुझ पर आंदोलन का काफी असर है। आचार्य जी का सत् प्रयास सफल हो—यह मेरी कामना है।

श्री गोपीनाथ 'अमन' ने अपने भाषण मे कहा—अणुव्रत आंदोलन व्यक्ति सुधार का आंदोलन है। व्यक्ति जाति और राष्ट्र का मूल है। व्यक्ति से आगे बढता-बढता सुधार जाति और राष्ट्र को भी अपनी परिधि मे ले सकता है।

संयम सुख शान्ति का मूल

आचार्य प्रवर ने अपने उपसंहारात्मक भाषण मे कहा—

"प्रकाश को प्रकाशित करने के लिये दूसरे प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती। यदि स्वयं मे प्रकाश नही है तो वह दूसरो को भी प्रकाशित नहीं कर सकता। यही "व्यक्तिवादी सिद्धान्त" का आधार है। इसका फलित यह है—यदि व्यक्ति शुद्ध है तो समाज भी शुद्ध होगा, यदि व्यक्ति अपवित्र है तो समाज भी अपवित्र होगा।

"मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्" यह सच है। किन्तु सभी मनुष्य करके ही कहें—यह मुश्किल है। जो करता है उसे ही कहने का अधिकार है, यह एकान्तवाद ठीक नहीं। अच्छा उपदेश सबको मान्य होना चाहिये। हम वीतराग नही, फिर भी उपदेश करते है। सुधर्मा स्वामी भगवान की वाणी के आधार पर बोलते थे। उसी प्रकार हम वीतराग न होने पर भी वीतराग की वाणी के आधार पर बोलते हैं, यह अनुचित नही कहा जा सकता।

आज आडम्बर का युग है। प्रत्येक कार्य मे आडम्बर दीखता है। व्रतो के पालन मे भी आडम्बर दीखता है। इसी आशय को स्पष्ट करते हुये एक कवि ने कितना सुन्दर कहा है :—

वैराग्य रंगं परिवञ्चनाय, धर्मोपदेशो जनरञ्जनाय।
वादाय विद्याध्ययनं च मेऽभूत् कियद् ब्रुवे हास्यकरं समीश॥

लोग विरक्त बनते है दूसरो को ठगने के लिये, धार्मिक उपदेश जन-रंजन का साधन बना हुआ है, ज्ञानार्जन वाद विवाद के लिये किया जाता है, इससे अधिक हास्यास्पद स्थिति और क्या हो सकती है।

जब तक जीवन-व्यवहार में दम्भ रहेगा, हिंसक वृत्तियाँ रहेंगी, तब तक शान्ति का समावेश जीवन में हो सके, यह कम संभव लगता है। शान्ति —अहिंसा और संयम पर आधारित है। शास्त्रो मे कहा है—

हत्थ संजए पाय संजए वाय संजय संजई दिए।
अज्झप्परए सुसमाहि अप्पा सुतत्थं च विमाणइ जेस भिक्खु ॥

हाथ पैरों का संयम, वाणी का संयम, इंद्रियों का संयम करने वाला व्यक्ति और जो अध्यात्म मे लीन रहना है, वही साधु है, महान् है। ऐसे व्यक्ति को ही शान्ति प्राप्त होती है।

संयम और अहिंसा के आदर्श वैयक्तिक जीवन को तो मानते ही हैं, उससे आगे बढ़ कर वे सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन मे भी शान्ति का स्रोत बहा देते हैं। मेरा विश्वास है कि विश्वशान्ति का इसी प्रकार प्रादुर्भाव होगा, व फलित होगी।

अणुबम वा हाइड्रोजन बम द्वारा शान्ति चाहने वाले भयंकर अजगर के मुँह मे हाथ डालकर अमृत पात करना चाहते हैं। यदि संसार शान्ति और सुख चाहता है तो उसे अणुव्रतो के मार्ग पर आना होगा, अन्यथा वह भटकता ही रहेगा। अन्त मे मै आपसे अनुरोध करूँगा कि आप तटस्थ रहकर अणुव्रतो पर विचार करें और अपने मे उनको धारण करने का प्रयास करें।

अणुव्रत समिति के मन्त्री श्री जयचन्दलाल जी दफ्तरी ने त्रिदिवसीय कार्यक्रम का सिंहावलोकन करते हुये सबके प्रति आभार प्रदर्शन किया।

आल इंडिया रेडियो दिल्ली के डिप्टी डायरेक्टर जनरल श्री० ए० के० सेन तथा उनकी पत्नी श्रीमती आरतीदेवी आचार्य श्री के पास आये और नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि हम दोनों का नाम अणुव्रतियों की सूची मे लिख लीजिये। आचार्य प्रवर ने सहर्ष स्वीकार किया।

आज का कार्यक्रम बहुत ही प्रभावोत्पादक रहा। अत्यन्त उल्लास व उत्साह के साथ कार्य को सम्पन्न होते देख स्थानीय व बाहर से आये हुये कर्मठ कार्यकर्त्ता हर्ष विभोर हो रहे थे। अपने अथक परिश्रम के सुन्दर परिणाम से वे प्रफुल्लित हो रहे थे। इस प्रकार अणुव्रत गोष्ठी का त्रिदिवसीय कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ।

प्रतिक्रिया

गोष्ठी की चर्चा प्रत्येक क्षेत्र मे फैल गई। लोगो ने यह जाना और अनुभव किया कि आचार्य श्री तुलसी आज के युग के महान् व्यक्ति हैं जिन्होने अपनी साधना के फलस्वरूप अणुव्रत आन्दोलन की देन से मानव जाति को कृतार्थ किया है। प्रत्येक वर्ग ने अणुव्रत आन्दोलन के कार्यक्रम का हृदय से स्वागत किया। दिल्ली के प्रमुख पत्रों ने गोष्ठी की भूरि-भूरि प्रशसा की और उसके समाचारो को प्रमुखता दी।

समाचार पत्रों मे प्रकाशित समाचारो को पढ़ कर अनेक व्यक्ति आदोलन मे अपना सहयोग देने के लिये तैयार हुये और आचार्य प्रवर से मिले।

रेडियो का प्रोग्राम

४ दिसबर १९५६ की रात्रि को लगभग ८॥ बजे रेडियो प्रोग्राम था। आल इडिया रेडियो ने लगभग १५ मिनट तक अणुव्रत गोष्ठी के त्रिदिवसीय कार्यक्रम तथा राष्ट्रपति भवन के कार्यक्रम की संक्षिप्त झाँकी प्रसारित की। आँखो देखा हाल इस शीर्षक के अन्तर्गत श्री यशपाल जैन ने प्रायः सभी वक्ताओ के भाषणों का सार दिया।

सप्रू भवन में प्रधान मंत्री श्री नेहरू द्वारा उद्घाटन

१३ दिसम्बर की दुपहर को ३ बजे 'राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण मूलक अणुव्रत सप्ताह" का उद्घाटन प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के हाथों से सम्पन्न होने वाला था। आचार्य श्री २-४५ बजे ही सप्रूभवन पधार गये थे और सप्रू भवन का हाल श्रोताओं से खचाखच भर चुका था। भवन के बाहर साधुओं की हस्त निर्मित वस्तुओं की एक प्रदर्शनी सी की गई थी, जिसमे सब वस्तुएं व्यवस्थितरूप से रख दी गई थी। आचार्य श्री वहाँ ही ठहर गये। थोडी ही देर मे पंडित जी भी आ पहुंचे। उन्होंने साधुओं की निर्मित सब वस्तुओं को बड़े ध्यान से देखा, सूक्ष्माक्षर-पत्र को बहुत ही अधिक ध्यान से देखा और कहा कि यह बड़ा अद्भुत और आश्चर्यजनक है। इसमे एक इंच में देसी कलम से १४०० अक्षर लिखे गए थे। फिर आचार्य श्री और पडित जी साथ-साथ हाल मे पधारे। सीढ़ियाँ आने पर पडितजी ने आगे चलने का इशारा करते हुए कहा—आप चलिये। आचार्य श्री स्टेज पर बिछे छोटे से पाट पर बैठ गये। नेहरू जी पास मे बिछी हुई गद्दी के एक कोने पर बैठ गए।

श्रीमती कान्ता बहिन जवेरी तथा कु० इला बहिन जवेरी द्वारा गाये गए मंगल-गान से कार्यक्रम शुरू हुआ। अणुव्रत समिति के मंत्री श्री जयचंदलाल दफ्तरी ने स्वागत भाषण किया। श्री मोहनलाल कठौतिया ने प्रधान मत्री को खादी की माला पहनाई।

उद्घाटन भाषण

भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने उद्घाटन भाषण करते हुए कहा—"आचार्य जी ! भाइयो तथा बहनो ! अपने मामूली कर्तव्य को छोड़ कर भी मै यहाँ आया हूँ। यद्यपि मै कल भारत से चला जाने वाला हूँ फिर भी मुझे यहाँ आना उचित मालूम हुआ। मैने यह क्यो किया ? कुछ महीने पहले मेरा मुनि नगराज जी से मिलना हुआ था। दो चार दिन हुए आचार्य जी से भी मिलने का अवसर मिला। उन्होने मुझे अणुव्रत आंदोलन का हाल बताया। मुझे वह काम उचित लगा, इसलिये मैने यहाँ आना स्वीकार कर लिया। यद्यपि हमारा और आचार्य जी का काम का रास्ता अलग-अलग है, पर कभी कभी अलग-अलग रास्ते भी मिल जाते है, और वास्तव मे ही एक दूसरे की सहायता के बिना संसार का काम चल भी नहीं सकता। ससार में अनेक लोग अनेक प्रकार से अनेक काम करें, तब ही सारा काम चल सकता है। पर ससार में इतने कुछ काम होते हुए भी कुछ बुनियादी बातें होती हैं, जो सभी देश, सभी समाज और सभी व्यक्तियो के लिए आवश्यक हैं। हम इतिहास मे देखते है कि संसार मे अनेक बार उत्थान और पतन आये हैं। पर हजारो वर्षो की इन बातो मे हम अधिक को भूल जाते हैं। कुछ लोग अपने समय मे भी हुये हैं और उनकी बात आज भी सुनी जाती है। वे लोग स्वयं तो अच्छे मार्ग पर चलते ही है पर दूसरों को भी अच्छा रास्ता दिखाते हैं।

कुछ लोग स्वयं को एक गज से तथा देश व समाज को दूसरे गज से मापते हैं। जब गाधी जी राजनीति मे आये तब उन्होने कहा—व्यक्ति और समाज को एक ही गज से मापना चाहिये। यह ठीक ही थ। उन्होने स्वयं अच्छे रास्ते पर चलकर दूसरो को भी उस पर चलाने का प्रयत्न किया। उन्होने स्वराज्य-आन्दोलन मे भी इस बात को लिया और अपने विचार जनता मे फैलाये। इससे कुछ सुधार हुआ। उन्होने

अहिंसात्मक आन्दोलन से देश की ताकत को बढ़ाया और हमारी विजय हुई। वह विजय बदले की भावना पैदा किये बिना हुई।

दुनियां के इतिहास में हम देखते है कि जो हारता है वह बदला लेना चाहता है, और ताकतवर बन कर वह वापिस विजयी पर हमला कर देता है। वह हार का फिर बदला लेना चाहता है। इस प्रकार यह लड़ाई चलती रहती है और शान्ति नहीं होती। आज दुनियां की शक्ति इतनी बढ़ गई है कि वह खत्म हो सकती है। इससे दुनियाँ की आँखें भी खुल गई हैं। वह देखती है कि अगर कहीं भी शक्ति काम मे आई तो सारा संसार श्मशान हो जायेगा। वास्तव में ही हथियारों से शान्ति पैदा नही की जा सकती।

इसीलिये "यूनेस्को" के विधान में कहा गया है—लड़ाई लोगो के दिमागो मे पैदा होती है। गाधीजी ने भी कहा था—तलवार हमारे दिमाग में है, उसे निकालो और काटो। इन बाहर की तलवारों से शान्ति होने वाली नहीं है।

देश क्या है ? बहुत से व्यक्तियों का समूह। जैसे वहाँ के लोग होगे वैसा ही वह देश होगा, उससे दूसरा नही हो सकता। देश मे यदि व्यक्ति ऊँचे होंगे तो देश भी ऊँचा होगा। एक व्यक्ति भी अच्छा होगा तो उसका असर दूसरे पर पड़ेगा। अतः हम ऐसा वायुमंडल पैदा करें कि देश के सारे लोग अच्छे हों, देश अपने आप अच्छा हो जायेगा।

आज देश के सामने बड़े-बड़े काम हैं, उनमे सफलता तभी मिल सकती है, जब देश का चरित्र-बल अच्छा हो, वह कानून से नहीं बन सकता। हाँ, रास्ता जरूर बनता है। अतः घूम फिर कर बात वही आ जाती है कि देश की जनता का चरित्र कैसा है ? हम बहुत दिनो तक दूसरो को धोखा नहीं दे सकते। किसी को एक दिन धोखा दिया जा सकता है पर हमेशा नही दिया जा सकता। अतः हमे देश का चरित्र-बल अवश्य ऊँचा बनाना होगा।

इतनी कठिनाइयाँ हमारे सामने हैं तो हम सोचें कि हमे देश को

किस प्रकार का बनाना है। हमे भारत की बुनियाद ऐसी बनानी है, जो गहरी हो और बहे नही। विशेषतः हमे अपने नौजवानो को बनाना है, क्योकि हम तो अब बुड्ढे हो गये हैं। कल का भारत आज के बालक और नौजवान ही होगे। अतः हमे उन्हें ऐसे साँचे में ढालना है, जिससे वे अच्छे हो। हम लोग ४० वर्ष तक उस ढाचे मे ढले जो गाँधीजी ने देश के सामने रखा था। उससे अच्छा या बुरा जो कुछ हुआ, हो गया है, पर अब प्रश्न यह है कि जो काम हमे करने हैं, उन्हें छोटे आदमी नहीं कर सकते। उनमे शक्ति और धीरता होनी चाहिये। अतः मूल में वही बात आ जाती है कि देश का चरित्र उन्नत हो।

यह काम अणुव्रत-आन्दोलन से हो रहा है। मैंने सोचा—ऐसे अच्छे काम की जितनी तरक्की हो उतना ही अच्छा है। इसलिये मै आशा करता हूँ—"अणुव्रत-आन्दोलन" का जो प्रचार हो रहा है, उसमे पूरी तरह सफलता मिले।"

आचार्य श्री का सन्देश

प्रधान मत्री जी भाइयो और बहिनो! आज राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण मूलक अणुव्रत सप्ताह का उद्घाटन हुआ। भारत की राजधानी मे यह चरित्र-निर्माण मूलक कार्यक्रम चले, यह आवश्यक भी है, क्योकि यहाँ की बात का असर सारे देश पर ही नहीं, सारे विश्व पर पड़ता है। अतः यह अच्छा कार्यक्रम यहाँ से चला, यह अच्छा ही हुआ। आज देश और विश्व की स्थिति के बारे मे आप पढते और सुनते है ही। अतः उसके बारे मे मै क्या कहूँ, उसे सुधारने के लिये अनेक प्रयत्न हो रहे है। भारत के प्रधान मंत्री विश्वशान्ति और विश्वमैत्री के लिये पंचशील का प्रचार कर ही रहे है और उन पर यह जिम्मेदारी भी है। उससे पहले कि हम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे काम करें, हमे अपने देश की बातें सोचनी चाहिये। देश मे आज अनेक कार्य करने है और उनके लिये सुदृढ आधार की आवश्यकता है।

लोग कहते हैं—आज अणुयुग है, परमाणु-युग है, पर मुझे लगता है, आज का युग अकर्मण्यता, असहिष्णुता और आलोचना का युग है। हमें इस बारे मे सोचना है। आज विद्यार्थी अध्यापको की आलोचना करते है और अध्यापक विद्यार्थियो की। जनता सरकार की आलोचना करती है और सरकार जनता की। पर मै यह नही समझा कि सारे औरो की आलोचना करते हैं मगर अपने को क्यो नही देखते ? कोई अपना थोड़ा सा भी अहित नहीं देख सकता। पिछले ही दिनो मे प्रान्तीयता की झंझा ने देश के बड़े-बड़े लोगो को कँपा दिया। विद्यार्थी भी इसमे पीछे नही रहे। इसका क्या कारण है ? क्या अति-राष्ट्रीयता ही तो अति-प्रान्तीयता की जनक नहीं है ? हमे यह असहिष्णुता मिटानी होगी, व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन को उन्नत बनाना होगा।

इसलिये मै आप से कहना चाहूँगा—पहले आप अपना जीवन बनायें, फिर देश और उसके बाद विश्वमैत्री की बात सोचें। जब तक ऐसा नही होगा, तब तक कुछ नहीं हो सकता।

राष्ट्रो की संकीर्ण मनोवृत्ति को भी मिटाना होगा। एक राष्ट्र के हित को, यदि उससे दूसरे राष्ट्रो का अहित होता हो तो छोड़ना पडेगा। अपना अहित तो कौन करेगा ? पर इतना ही हो गया तो मै समझता हूँ, ससार शान्ति के मार्ग पर अग्रसर हो सकेगा।

आज जो अनीति भारत मे ही नहीं, सारे संसार मे फैल रही है, उसका उन्मूलन आवश्यक है। सब लोग ऐसा चाहते हैं। अब प्रश्न यह है कि इसका उपाय क्या है ? उपदेश इसका एक मार्ग था। हजारो वर्षो से यह चलता आ रहा है, पर आज हमारा काम प्रायः दूसरो ने लिया है, जगह जगह नेता लोग ऊँचे स्वर मे उपदेश देते है। उनका असर क्यो नहीं पडता ? बात स्पष्ट है—जब तक उनका निजी जीवन अच्छा नही होगा, तब तक उपदेश काम नही कर सकता। उनके जीवन का प्रतिबिम्ब जनता पर पडता है।

आज हम पैदल यात्रा करते हैं, यह बात लोगो को हास्यास्पद

लगती है। वे किसान जो हमेशा पैदल चलते थे, आज हमे पैदल चलते देखकर आश्चर्य करते हैं। अभी जब हम दिल्ली आ रहे थे तो रास्ते में हमें किसान लोग मिलते और कहते—आप मोटर मे क्यो नहीं बैठ जाते ? हमेशा श्रम करने वालो को भी पैदल चलना इतना भारी लगता है तो दूसरो की तो बात ही क्या की जाय ?

लोग कहते हैं—जो काम मिनटों मे हो जाता है, उसके लिये आप इतना समय क्यो लगाते हैं ? पर मै कहता हूँ, जो राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय काम करते हैं, वे उन साधनो का उपयोग करते हैं, पर मै तो इतना बोझ नहीं लेता। पंडितजी ने राष्ट्रीय ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय बोझ भी अपने कंधो पर ले लिया है, और उसे वे छोड भी नहीं सकते। उनका वह क्षेत्र है।

भारत ने हमेशा संसार का आध्यात्मिक नेतृत्व किया है, इसीलिये कहा गया है :—

"एत देश प्रसूतस्य, सकाशादग्रजन्मन.
स्वं स्व चरित्रं शिक्षेरन्, पृथिव्या सर्व मानवा :" .

नेहरूजी की ओर इशारा करते हुये आचार्य श्री ने कहा—आज विश्व मे शान्ति के लिये भारत का नाम सबसे पहले आता है। अतः यह भारत के लिये गौरव की बात है, धर्म के लिये गौरव की बात है। हाँ, तो वे उन साधनो का उपयोग करते है। पर मेरा काम तो कोटि-कोटि जनता का दुःख-दर्द जानना और सुनना है। अभी जब मैं गावो से होकर आ रहा था, लोग मुझ से पूछते थे कि महाराज हमारे पास वोट के लिये अनेक लोग आते हैं। हमे पता नहीं, किसको वोट दें और किसको न दें। आप हमें कह दीजिये, हम किसको वोट दें। मैंने कहा—मै नहीं कहता कि तुम उसको वोट दो और उसको मत दो। पर एक बात जरूर कहूँगा कि वोट की बिक्री तो मत करो अर्थात् नोट के बदले मे वोट मत दो। यह आवश्यक है कि आज देश मे ऐसा आन्दोलन चलाया जाये—मैंने इस आवश्यकता को अनुभव किया और उसी का

परिणाम है कि मैंने अणुव्रत-आन्दोलन का सूत्रपात किया। लोग कहेंगे—क्या आपने अणुव्रत चलाया? नहीं।

पंडितजी से मैंने कहा—आपने पंचशील चलाये। पंडितजी ने कहा—नहीं, यह तो चलते आ रहे हैं। मैंने क्या चलाया। (क्यों पंडितजी आपने ऐसा कहा था न? पंडितजी ने मुस्कराते हुये स्वीकार किया।) उसी प्रकार मैंने तो छोटे छोटे व्रतों का संगठन कर सारी जनता के सामने रख भर दिया है।

यह भी ध्यान रखा है कि इसमे धर्म, जाति, लिंग और रंग का कोई भेद न रहे। आज जगह जगह पार्टीवाजी चल रही है। हमने सोचा—एक प्लेटफार्म ऐसा हो, जिस पर सब इकट्ठे हो सकें।

जर्मन दूतालय के लोगो से मैंने पूछा—क्या आपको यह जैनो का आन्दोलन लगा? क्या इसमे कोई साम्प्रदायिकता है? उन्होने कहा—नहीं, यह तो हमारी बाइबिल के अनुकूल है। मुझे इससे खुशी हुई और इसीलिये जनता ने, नेताओ ने, साहित्यकारो ने, कवियो ने सभी ने इसमे सहयोग दिया।

मैं अपनी योजना को अन्तिम नहीं मानता। कोई भी अच्छी बात, वह चाहे जनता से मिले या नेहरूजी से मिले, मैं उसका स्वागत करूँगा। मेरा काम और भावना तो यही है कि जनता का जीवन स्तर ऊँचा उठे। और इसी के लिये मेरा प्रयास है।

देश की आज सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हममे से प्रत्येक अपनी जिम्मेवारी को समझे। भारतीयो ने उसे अभी तक नहीं समझा। विदेशी लोग इसका बड़ा खयाल रखते हैं। अधिकतर भारतीयो को अभी तक चलने, उठने, बैठने और थूकने का भी ज्ञान नहीं।

महाव्रत की बात बहुत दूर है। हम अणुव्रतों की बात करते हैं। हम दार्शनिक चर्चायें—आत्मा और परमात्मा की बातें फिर कभी करेंगे। आज तो नैतिकता के छोटे छोटे नियमो की बातें करनी चाहिये। अगर इतना भी हो गया तो भी बहुत है।

बुद्ध ने अति-त्याग और अति-भोग के बीच मध्यम मार्ग का उपदेश दिया। अति-त्याग साधारण जनता के लिये असाध्य है और अति-भोग तो सर्वनाशक है ही। अतः हमने भी साधारण जनता के लिये छोटे छोटे व्रतो को लिया और मध्यम मार्ग को अपना कर इस काम का सूत्रपात किया।

नैतिक प्रतिष्ठापन के लिये सबसे बड़ी आवश्यकता है—छोटे छोटे बच्चो को सुधारने की। बचपन से ही अच्छे संस्कार डालना सहज है। बडे होने पर समझाना बडा मुश्किल है। अतः शिक्षण संस्थाओ मे प्रारम्भ से ही बच्चों को अणुव्रतो की शिक्षा मिलती रहे, ऐसा सोचा जाना चाहिये। इसमे राष्ट्र के नेताओ, विचारको, कार्यकर्ताओ के सहयोग की अपेक्षा है।

इस प्रसग पर मुनि श्री नगराजजी तथा अ० भा० कांग्रेस के महामत्री श्री श्रीमन्नारायण के भी भाषण हुये।

मुनि श्री नगराज जी ने आंदोलन पर बोलते हुये कहा—"अणुव्रत आदोलन को चलते सात वर्ष हुए हैं। इस बीच आचार्य प्रवर तथा उनके आज्ञानुवर्ती साधु-साध्वियो के सतत प्रयास से लाखो व्यक्ति इसमे सम्मिलित हुए है, करोड़ो तक यह भावना पहुँची है। यह भारतीय संस्कृति के संयम एव अध्यात्म मूलक आधारो पर प्रतिष्ठित है। नैतिक और आध्यात्मिक आधार के बिना देश मे चलती सब प्रकार की प्रगति फीकी है। कांग्रेस के महामंत्री श्री श्रीमन्नारायण ने कहा– "मुझे इस आदोलन के प्रति अणु शब्द से आकर्षण हुआ। आज के जमाने मे बड़ी बड़ी बातें करने वाले बहुत हैं पर काम बहुत कम। जब मैंने अणुव्रत आंदोलन का नाम सुना तो आ।प—छोटी बातें करने वाले भी तैयार हैं। विद्यार्थियो मे, व्यापारियो मे, वकीलो मे, डाक्टरो मे, विभिन्न वर्ग के लोगो में इस आंदोलन द्वारा जीवन सुधार का काम किया गया। जिसकी जैसी शक्ति थी, उन्होने वैसे व्रत लिये। मुझे यह बहुत अच्छा लगा। हमारे देश में अनेको आर्थिक आयोजन चल रहे हैं पर जब तक चरित्र-निर्माण न हो,

तब तक आर्थिक आयोजनो से विशेष लाभ नही हो सकता। इसलिये मै पंचवर्षीय योजना की दृष्टि से भी इस आदोलन को महत्त्व देता हूँ। आर्थिक विकास के साथ साथ यदि चरित्र सबधी गुणो का भी विकास हो तो सोने मे सुगंध हो जाय।"

कुमारी यामिनी तिलकम् ने संस्कृत मे मंगलाचरण किया तथा श्री गोपीनाथ अमन ने आभार प्रदर्शन किया। सभा सानद संपन्न हुई।

आयोजन (८) अणुव्रत सप्ताह

दूसरा दिन

विद्यार्थी जीवन का निर्माण

१४ दिसम्बर १९५६ की प्रात: ९ बजे मॉडर्न हाईस्कूल मे प्रवचन का कार्यक्रम था। आचार्य श्री ठीक समय पर वहाँ पधारे, विद्यार्थियो के सामूहिक गान से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। स्कूल के प्रिन्सीपल श्री एम० एन० कपूर के स्वागत भाषण के बाद (काँग्रेस के महामन्त्री श्री श्रीमन्नारायण की धर्मपत्नी) श्री मदालसा देवी ने आचार्य प्रवर व अणुव्रत-आन्दोलन की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुये अणुव्रत-सप्ताह की उपयोगिता पर प्रकाश डाला।

आचार्य श्री ने अपने प्रवचन मे कहा—मुझे प्रसन्नता है कि मै आज विद्यार्थियो के बीच बोल रहा हूँ, विद्यार्थियो मे बोलना मेरी रुचि का विषय है। उनमे बोलना मैं पसन्द करता हूँ।

मै जो कुछ बोलता हूँ, उसके दो आधार हैं—मेरा अपना अनुभव और आर्षवाणी... आधार हीन बोलने मे कोई तथ्य नही होता, हृदय

नहीं होता, वेदना व तड़प नहीं होती। केवल शब्द जाल सा रह जाता है। मुझे आज विद्यार्थी जीवन पर प्रकाश डालना है।

जैन सूत्रो मे एक प्रकरण है—साधक अपने गुरु से पूछता है—भगवन् शिक्षा कौन-कौन प्राप्त कर सकता है अथवा विद्यार्थी के क्या लक्षण है। त्रिकालदर्शी भगवान् ने कहा—

"वसे गुरुकुले निच्चं, जोगवं उवहाणवं।
पियं करे पियं वाही, स सिक्खा लब्धु मरिहई ॥"

जिसमे ये पाँच लक्षण पाये जाते है, वह विद्यार्थी है।

पुराने जमाने मे यह परम्परा रही है कि विद्यार्थी गुरुकुलों में ही विद्याध्ययन करते थे। अपने माता-पिता से कोसो दूर रह कर निर्जन स्थान मे जीवन की बातें सीखते थे। वहाँ केवल किताबी ज्ञान ही नहीं, कैसे खाना, सोना, उठना, बैठना आदि आदि कार्यो का भी ज्ञान कराया जाता था। गुरुकुल के अधिपति उनका संरक्षण व संवर्धन करते थे। गुरुजनो के सात्विक व सदाचारी होने का लड़को पर पूरा असर पड़ता था। दिन और रात उनके सहवास से उनका जीवन मँजता रहता था। किन्तु आज की स्थिति और है। आज का विद्यार्थी मुश्किल से ५–६ घंटे अध्यापको के सम्पर्क मे रह पाता है। शेष समय घर वालो के बीच बीतता है ··इसीलिये अध्यापकों के कथन व रहन-सहन का इतना असर नहीं होता, जितना घर वालो का होता है। पारिवारिक चिन्ताओं का शिकार भी उसे होना पड़ता है। यही कारण है कि आज का स्नातक जीवन के सही मूल्यो के आँकने मे सफल नहीं होता। आज भी ऐसा सोचा जा रहा है कि यदि गुरुकुल की परम्परा का अनुसरण किया जाये तो सम्भव है, विद्याध्ययन के लक्ष्य मे कुछ परिवर्तन आ सके।

विद्यार्थी-जीवन साधना का जीवन है। योग-साधना उसका लक्ष्य होना चाहिये। इस ओर कैसे गति की जाय, ऐसा चिन्तन होना चाहिए। आप चौंकेंगे कि कहाँ तो विद्यार्थी जीवन और कहाँ योगी की योग

साधना ? यह प्रश्न हो सकता है। किन्तु आपको यह जान लेना चहिए कि योग के विना एकाग्रता नहीं आती और एकाग्रता के अभाव में विद्या का समुचित ग्रहण नहीं होता। वही विद्यार्थी अपने जीवन मे सफल हो सकता है, जो कि अपने अध्ययन, चिन्तन और मनन मे एकाग्र रहता है। एकाग्रता से ग्रहण की हुई बातें नहीं भूलतीं। उनके संस्कार अमिट होते हैं।

आज विद्यार्थियो का जीवन एक रस नही है। वह कई भागो मे विभक्त हो चुका है। राजनीति, समाज सुधार, अर्थनीति आदि आदि पचड़ो मे पडकर अपना अध्ययन भी वे पूरा नहीं कर पाते। न अध्ययन ही होता है और न राजनीति मे ही पूरा प्रवेश कर पाते हैं। आज का विद्यार्थी देश व विदेश की राजनीति के बारे मे सोचता है। उसे समझने का प्रयास भी करता है। किन्तु यह भूल जाता है कि उसका अध्ययन किस ओर जा रहा है। एक उदाहरण है:—एक गाँव मे कई वृद्ध महिलाएँ एक स्थान पर बैठी थीं। आपस मे चर्चा चल पड़ी। उनका मुख्य विषय था—राजनीति। अपने-अपने मनोगत भावो को कह कर वे अपने आप मे सन्तोष का अनुभव करती थीं। गर्मागर्म बहस होने लगी। एक राहगीर उस ओर से गुजरा। विषय को भाँपने मे उसे देर न लगी। व्यंग कसते हुए उसने कहा—

रँट्यो पूणी राम, इतरो मतलव आपरो
की डोकरियाँ काम, राजनीति स्युं राजिया।

इसी प्रकार विद्यार्थियो को भी राजनीति से दूर रहना चाहिए।

विद्यार्थी का जीवन तपस्यामय हो, तपस्या का अर्थ भूखे रहना ही नहीं। मन, वचन और काया को संयत रखना भी तपस्या है। स्वाध्याय सत्-सेवा आदि कार्य भी तपस्या है।

अपनी छोटी से छोटी भी गलती को सहर्ष स्वीकार करना विद्यार्थी जीवन का बड़ा गुण है। गलती करना इतनी भूल नहीं, जितनी बड़ी भूल कि गलती को गलती न समझना तथा समझ लेने पर भी उसे

नही छोड़ना है। विद्यार्थी इससे बचे। इसी को पुष्ट करने के लिए रामायण की एक कथा आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ —

दो भाई विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल गये। बारह वर्ष तक अध्ययन किया। कुल पति की आज्ञा से वापिस घर लौटे। इस अवधि मे बहुत से परिवर्तन हो चुके थे। आते आते उन्होने एक विशाल अट्टालिका के झरोखे मे बैठी हुई द्वादश वर्षीय कन्या को देखा। मन मे विकार उत्पन्न हुआ, विद्यार्थी अवस्था को भूल वे नाना प्रकार के संकल्प विकल्प करने लगे। किन्तु ?

माता पिता के चरणो मे प्रणाम किया। उन्होने देखा कि वही कन्या वहाँ भी उपस्थित है। मन चंचल हो उठा, मन ही मन सोचने लगे---यह कन्या कौन है? क्या इसे हम पा सकते है। साहस कर माँ से पूछा—माँ यह कौन है? माँ ने कहा—बेटा यह तुम्हारी बहिन है। जब तुम पढने के लिए गुरुकुल मे गये थे, तब इसका जन्म हुआ था। आज यह पूरे १२ वर्ष की हो गई है। यह कह कर माँ ने पुत्री की ओर संकेत करते हुए कहा—बेटी ये दोनो तेरे भाई हैं इन्हें प्रणाम कर। वह भाइयों के पैरो मे पड गई। यह देख दोनो दंग रह गये।

अपनी मलिन भावनाओ को याद कर उन्होने मन ही मन अपने आपको धिक्कारा। लज्जित हो, आँखें भूमि में गड़ाये हुये कुछ क्षण स्तब्ध से खड़े रहे। अपने किये का प्रायश्चित्त करने को उत्सुक हो उठे। उन्होने यह निश्चय किया कि इस पाप के प्रायश्चित्त स्वरूप वे जीवनपर्यन्त ब्रह्मचारी रहेंगे। इस कठोर व्रत के संकल्पमात्र से उनमे स्फूर्ति व उत्साह उमड़ पडा। आगे क्या हुआ? इसमे हमे नहीं जाना है, इस उदाहरण से विद्यार्थी कुछ सीखें और इस शृंखला को अक्षुण्ण रखने मे प्रयत्नशील रहें।

"विद्या ददाति विनयम्"—विद्या से विनय आती है। जो विद्या विनय नहीं देती, वह अविद्या है। उसका विकास नहीं, ह्रास होता है। विद्यार्थी को यह कभी नही समझना चाहिये कि उसकी समझ ही सब

कुछ है। बड़े बूढो की बातो पर ध्यान देना भी उसका परम कर्तव्य होना चाहिये।

मैं आज से ५ वर्ष पूर्व पंडित नेहरू से मिला था। कल फिर उनसे मिलने का मौका मिला। मैने उनमे बहुत अन्तर पाया। मुझे ऐसा लगा कि वे प्रतिवर्ष नम्र बनते जा रहे हैं। उनमे भारतीय परम्परा व सभ्यता के प्रति कितना सम्मान है। कहाँ कैसा व्यवहार करना चाहिये, यह वे केवल जानते ही नहीं, बल्कि तदनुकूल आचरण भी करते हैं। धर्माचार्य के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिये, यह आप उनसे सीखें। उनकी कोठी पर मैं गया था। वहाँ भी उन्होने लगभग ४८ मिनट तक धार्मिक विषयो के विचार-विनिमय मे कितना रस लिया, यह मै जानता हूँ।

आपको भी चाहिए कि आप नम्र रहना सीखें। नम्रता के अभाव मे आचार और विचार मे सामन्जस्य नहीं रहता, शिष्यत्व की भावना नहीं होती, वहाँ वात्सल्य नहीं आता या यो कह दें, वात्सल्य के बिना नम्रता नहीं आती।

विद्यार्थी अपने आपको पवित्र रखें। "जीवन को शुद्ध बनायें"—यह मैं विद्यार्थियो के लिए नही कहूँगा। क्योकि विद्यार्थी-जीवन बाल्य-जीवन है। वह प्रायः पवित्र होता है। मै उनको कहूँगा कि वे अपना जीवन अशुद्ध न बनाएँ।

तीसरा दिन

शान्ति का मार्ग

१५ दिसम्बर १९५६ को मध्याह्न में चरित्र निर्माण सप्ताह के अन्तर्गत आचार्य श्री का आयकर अधिकारियों के बीच सेन्ट्रल रेवेन्यू बिल्डिंग मे प्रवचन था। करीब १ बजे आचार्य श्री वहाँ पधारे। आयकर आयुक्त श्री एन० सी० चौधरी ने आचार्य श्री के स्वागत में भाषण दिया। आचार्यश्री ने उपस्थित अधिकारियो एवं कर्मचारियों को सम्बोधित करते हुए कहा—"आज आपके इस नये भवन में हम आपको और आप हम को कुछ विचित्र से लगते है। आज हमारा संगम भी तो नया है और जब तक परिचय नही हो जाता तब तक आश्चर्य होना स्वाभाविक भी है। एक बच्चा जब इस संसार मे आता है, तब पहले पहल उसे भी संसार कुछ विचित्र सा लगता है। धीरे-धीरे उसका परिचय संसार के साथ होने लगता है, वह अपने वातावरण में रच-पच जाता है। अतः उचित है, पहले मैं आपको अपना परिचय दे दूँ। हम भी आपकी तरह भिन्न-भिन्न प्रान्तो में रहने वाले थे। क्योकि साधु कोई जन्म से तो होता नही, जिसे अपने अनुभव से संसार से विरक्ति हो जाती है, वही साधु होता है।

हम लोग शरणार्थी भी हैं, क्योकि हमारी कही पर भी इंच भर जगह नही है। पर हम सामान्य शरणार्थियो से भिन्न हैं। दिल्ली मे एक बार बहुत से शरणार्थी मेरे पास आये और मुझे अपना दुःख सुनाने लगे। मैंने उनसे कहा—भाइयो आप और हमतो एक से है, क्योकि हम दोनो ही शरणार्थी हैं। पर हम में और आप में एक बहुत बड़ा

अन्तर है। वह यह है कि आपकी जमीन जायदाद छुड़ायी गई है और हमने अपनी धन सम्पत्ति जानबूझकर छोड़दी है। यही कारण है कि आपको तो दुःख होता है और हमे प्रसन्नता।

हम लोग जैन है। "जिन" का मतलब है—विजेता। विजेता यानी जो अपने पर अनुशासन करे। जिसने अपने पर अनुशासन नही कर लिया है, उसे वास्तव मे दूसरो पर अनुशासन करने का अधिकार ही क्या है? अपने स्वार्थ से दूसरो पर अनुशासन करने वाला कायर है। पर "जिन" विजेता अपने पर ही अनुशासन करते हैं, उनका ही धर्म जैनधर्म है।

आप कहेंगे कि—हम यहाँ क्यो आए? हम यहाँ अपनी साधना के लिए आए हैं। हमारा सारा काम चलना, फिरना, खाना, पीना और प्रवचन करना साधना के लिए ही होता है। यहाँ जो प्रवचन करने आये हैं, यह आप पर कोई अहसान नहीं हैं। यह तो हमारी साधना ही है। आपसे भी हम कहना चाहते हैं, आप भी जो कुछ करें, साधना की ही भावना से करें।

आज की आवश्यकता

आज देश ने सबसे अधिक जो खोया है वह है ईमान और मानवता। ऊपर से तो सारे लोग बहुत अच्छे लगते हैं, पर अन्दर से केवल अस्थि-पंजर मात्र रह गया है। सब दूसरों की आलोचना करने को तत्पर हैं, पर अपने आप को कोई नहीं देखता। व्यापारी लोग आपको कोसते है। वे सोचते हैं, हम तो इतनी मेहनत से पैसा कमाते हैं और आप लोग (इन्कम टैक्स आफिसर) आकर उसे साफ कर देते है। सचमुच आप लोग उन्हें यमदूत लगते हैं (श्रोताओ मे हंसी) पर वे स्वयं यह नहीं सोचते कि वे कितने गरीबो के गले पर छुरी फेरते हैं। अभी मेरे सामने व्यापारी (बनिये) लोग नहीं हैं। पर जब वे मेरे सामने होते हैं, तो मैं उनकी भी अच्छी तरह से खबर लेता हूँ। मुझे दुःख है कि आज

वनिये बदनाम है और उसके साथ साथ कभी-कभी हमे भी लोग कुछ बदनाम कर देते है, क्योंकि लोग हमे भी वनियो के गुरु कहते हैं। हमारे अनुयायी सारे वनिये ही हैं, ऐसा नहीं हे।

बहुत से व्यापारी ऐसे भी है, जिन्हें आपका बिल्कुल भय नहीं है। उनका व्यापार बिल्कुल साफ है। अणुव्रत मनुष्य को अभय बनाता है। भय से भय बढता है। अणुबम ने मनुष्य को भयभीत बना दिया तो विपक्ष के लोग हाईड्रोजन बम बनाकर अभय बनना चाहते हैं। पर अभय का रास्ता यह नहीं है। अणुव्रत अभय बनने का मार्ग है।

अणुव्रत आपको सन्यासी नहीं बनाता है। वह कहता है – जहाँ भी आप रहते है, वहाँ रहकर भी अपने पर नियंत्रण करें। अगर आपने यह कर लिया तो आपके घर और कार्यालय सब सुधर जायेंगे।

पहला अणुव्रत अहिंसा है। किसी को मार देना मात्र ही हिंसा नही है पर बुरा चिन्तन भी हिंसा है। अस्पृश्य मान कर करोडो का तिरस्कार करना हिंसा नही तो और क्या है? इस तिरस्कार की फिर प्रतिक्रिया भी होती है। आज जो सामूहिक रूप मे धर्म परिवर्तन किया जा रहा है, यह क्या है? क्या उन्होंने श्रद्धा से ऐसा किया है? श्रद्धा से व्यक्ति समझ सकता है पर इतने बडे पैमाने पर धर्म-परिवर्तन निश्चय ही अपमान का प्रतिकार है। हिन्दू लोगों ने शूद्रो के साथ असद् व्यवहार किया, उसका फल है कि आज ये लाखो की सख्या मे बौद्ध बनते जा रहे है। काम के आधार पर किसी को नीचा और अस्पृश्य मानना हिंसा है और व्यवहार विरुद्ध भी है। अगर इसी प्रकार कोई अस्पृश्य होता तो मातायें तो कभी की अस्पृश्य-अपवित्र हो जातीं।

भगवान् महावीर ने कहा—"कम्मुणा बभणो होई, कम्मुणा होई खत्तियो, वइसो कम्मुणा होई, सुद्दो हवइ कम्मुणा..." अर्थात् कर्म से ब्राह्मण होता है और कर्म से ही क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी कर्म से ही होता है।

जीवन के मूल्य बदलो

आज बड़ा वह माना जाता है, जिसके पास पैसे हों, भवन हों, मोटर हों और जिसकी आवाज सब सुनते हो। पर जीवन के इस मूल्य मे परिवर्तन करना होगा। हमे पैसे को मनुष्य से बड़ा नहीं मानना है। बड़ा वह है—जो त्यागी है, संयमी है। यदि पैसे से ही मनुष्य बड़ा हो जाता तो हम अकिंचन भिक्षुओं की क्या गति होती, जिनके पास एक पैसा भी नहीं है। भारतीय संस्कृति मे सदा त्यागियों की पूजा होती आयी है। बड़े बड़े सम्राटों के सिर भी उन अकिंचन भिक्षुओं के सामने झुक जाते थे। अतः आज भी हमे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि बड़ा वह है, जो त्यागी है।

दूसरा व्रत है—सत्य। केवल सत्य बोलना मात्र ही सत्य नहीं है। सत्य का अर्थ है—जैसा सोचे, वैसा बोले। यदि ऐसा नहीं, तो मनुष्य ऊँचा नहीं बन सकता।

इसी प्रकार तीसरे व्रत अचौर्य का मतलब भी केवल चोरी नहीं करना ही नहीं है। अपने कामधन्धे मे ईमानदारी नहीं बरतना भी चोरी है। अपनी जिम्मेवारी के काम से दिल चुराना भी चोरी है।

चौथा व्रत है—ब्रह्मचर्य। आज के जीवन में इसकी बड़ी कमी है। इसीलिये आज बचपन से यौवन आता ही नहीं, सीधा बुढ़ापा आ जाता है।

पाँचवाँ व्रत है—अपरिग्रह। इसका मतलब यह नहीं कि आप संन्यासी बन जायें। पर अपनी नि.सीम लालसाओ की सीमा तो करें।

आप आफिसर हैं। किसी व्यापारी पर अभियोग लगाया कि अपना घर भर लिया। उधर व्यापारी-गण अपनी रक्षा करते हैं—रिश्वत देकर। सरकार को आपको क्या चिन्ता ? आप सोचते हैं—"पहले पेट पूजा पीछे काम दूजा।" पर अब ऐसे काम चलने वाला नहीं है। अब आप स्वतन्त्र हो गये। राष्ट्र की सारी जिम्मेदारी आपके कन्धो पर है। अब

आप दूसरों पर दोष नही मढ सकते। अतः अपने आपको जगाना पड़ेगा।

सबसे पहली और महत्व की बात यह है कि आप रिश्वत न लें। मै आपकी कठिनाइयो को जानता हूँ। यह कठिनाई केवल आपकी ही नही है, प्रत्येक व्यक्ति के सामने अपनी-अपनी कठिनाइयाँ रहती हैं। बिना उनके सहे आप सुखी नहीं हो सकेंगे। जिस व्यक्ति ने इस तथ्य को समझ लिया है, वह निश्चय ही एक आन्तरिक शान्ति का अनुभव करेगा।

दूसरी बात आप दुर्व्यसनो से बचें। बीड़ी सिगरेट तो आज सभ्यता की चीज बन गई है। बहुत से लोगो से मै पूछता हूँ—भाई तुम बीड़ी पीते हो। वे कहते हैं—हाँ महाराज। वैसे तो हम बीड़ी नहीं पीते, पर कभी कभी जब दोस्तों के साथ बैठ जाते है तो सभ्यता के नाते पीनी पड़ती है। लानत है ऐसी सभ्यता को। क्या सभ्यता इसे ही कहा जाता है? और चाय तो आज बिछौने में ही चाहिये। बिना उसके तो दूसरे काम में हाथ लगाना ही मुश्किल हो जाता है। वह तो मानो आजकल रामनाम हो गई है। इसी प्रकार और भी बहुत सी नशीली चीजें है, जिनसे आप बचने की कोशिश करेंगे तो आपके जीवन में एक सच्ची शान्ति मिलेगी।

सेक्रेटरी श्री हरनाम शंकर के द्वारा किये गये आभार प्रदर्शन के साथ सभा विसर्जित हुई।

चौथा दिन

हरिजन—बनाम महाजन

१६ दिसंबर १९५६ को दोपहर में राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण अणुव्रत सप्ताह के अन्तर्गत हरिजन बस्ती मे वाल्मीकि मंदिर मे हरिजनो के बीच आचार्य श्री का प्रवचन हुआ।

पहले वाल्मीकि सभा के सेक्रेटरी श्री रतनलाल वाल्मीकि ने आचार्य श्री के स्वागत मे भाषण दिया।

आचार्य श्री ने अपना भाषण प्रारभ करते हुये कहा—आप लोगो मे सुनने की उत्कंठा है, जिसका प्रमाण स्वयं आप लोगो की उपस्थिति है। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। आप लोगो को समय कम मिलता है क्योंकि आपके जिम्मे सफाई का बहुत बडा काम है। दूसरे लोग जहाँ गन्दगी करते हैं, वहाँ आप लोग सफाई करते हैं। यह बड़े महत्त्व की बात है। इसे ऊँचे अर्थ में लें तो गन्दगी मनुष्य के भीतर है, आत्मा मे है। क्या कोई ऐसा भी हरिजन है जो उस गन्दगी को दूर कर सके। वही वास्तव मे सच्चा हरिजन है।

हरिजन का अर्थ

गाधीजी ने आपका नाम हरिजन दिया। पर वास्तव में इसका अर्थ क्या है, यह आपको समझना है। जैसा कि वैष्णव जन की परिभाषा में गाधीजी एक भजन गाते थे—"वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीर पराई जाने रे।" उसी प्रकार वास्तव मे हरिजन वह है जो अपने आपको स्वच्छ रखकर दूसरो को भी स्वच्छ रखने का प्रयास करता रहे। ऐसे

हरिजन थोड़े ही मिलेंगे पर उनकी अत्यधिक आवश्यकता है।

आज नई दिल्ली के वाल्मीकि मंदिर में आप लोगो के बीच मै पहली बार ही आया हूँ। वैसे मै बहुत स्थानो पर हरिजनों के बीच जाता रहा हूँ। वहाँ केवल मै देता ही देता नहीं हूँ, लेता भी हूँ। देता तो मै उपदेश हूँ और लेता उनसे भेंट हूँ। पर मै रुपयो और फल फूलो की भेंट नही लेता। मुझे त्याग की भेंट चाहिये। आज ही लोक सभा के अध्यक्ष अय्यंगार आये तो उन्होने मुझे फल भेंट करने चाहे। मैने कहा—मुझे भक्ति और त्याग की भेंट चाहिये।

आपको लोग हरिजन कहते हैं पर मेरी दृष्टि मे आप सबसे पहले मानव हैं। मनुष्य सबसे पहले मनुष्य है और पीछे वह सज्जन, दुर्जन, महाजन, हरिजन है। मानव मौलिक चीज है, दूसरी सब उपाधियाँ हैं।

सोचना यह है कि मानव कौन है? स्पष्ट है—जिसमें मानवता है, वह मानव है अन्यथा मानव का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। मानवता यह है कि मनुष्य दूसरो को भी अपने जैसा समझे। पर आज मानवता रह कहाँ गई है। आज तो करोड़ो आदमी अपने भाइयो को भाई नहीं समझते। वे उन्हें नीच और अस्पृश्य मान कर उनका तिरस्कार करने से भी नही सकुचाते। ये ऊँची-नीची कौम कब और क्यों हुई? यह सब इतिहास का विषय है। मुझे उसमें नहीं जाना है। पर शुरू मे भिन्न भिन्न जातियाँ काम के आधार पर बनी थीं यह निश्चित है। पहले हरिजन जैसा कोई नाम नही था। ये सब बाद की चीजें हैं। स्यात् पुराना नाम "महत्तर" था। जब से काम का व्यवस्थित विभाजन हुआ, तब वह श्रम पर अवलम्बित था। श्रम करने वालो को महान् कहा जाता था। उनमें जो विशेष काम करता, उसे महत्तर कहा जाता था। अतः सफाई का काम करने वालों को महत्तर कहा जाने लगा। पर आज स्थिति दूसरी ही हो गई है। आप लोगो ने भी अपने आपको हीन मान लिया। आप समझते हैं—हम तो नीचे हैं। पर यह कायरता क्यो? हीन वह है जो दुराचारी है, व्यभिचारी है, कमीना है। आप

सफाई का काम करने मात्र से हीन और नीच कैसे हो गये ?

मुझे एक प्रसंग याद आता है—एक बार एक चंडालिनी चली जा रही थी। उसके हाथ मे खप्पर था, हाथ लहू से सने हुये थे। सिर पर मरा हुआ कुत्ता था और वह मार्ग को पानी से छींटती हुई जा रही थी। उसे देखकर एक ऋषि ने पूछा—

"कर खप्पर शिर श्वान है, लहु जु खरड़े हत्थ।
छटकत मग चंडालिनी, ऋषि पूछत है वत्त।"

उसने तुरन्त उत्तर दिया—

"ऋषि तुम तो भोरे भये, नहिं जानत हो भेव।
कृतघ्नी की चरण रज, छटकत हूँ गुरुदेव।"

गुरुदेव आप इसका रहस्य नहीं जानते। मैं मार्ग पर जो पानी छिटक रही हूँ, इसका कारण है, आगे जो कृतघ्न मनुष्य चला जा रहा है, उसकी चरण रज मेरे पैरों पर न पड़ जाये। क्योंकि वह अस्पृश्य है।

अतः सफाई का काम करने मात्र से कोई अस्पृश्य नहीं हो जाता। वास्तव में अस्पृश्य तो वह है जो कृतघ्नी है। केवल अच्छे कपड़े पहन लेने मात्र से ही कोई ऊँचा नहीं हो जाता। दिन भर तो बेईमानी करे और आफिस में जाकर ऊँचे आसन पर बैठकर अपने आपको ऊँचा मानने वाला वास्तव में ऊँचा नहीं है। अतः आप अपने मन से यह भावना निकाल दें कि हम नीच हैं।

दूसरी बात है, आप लोग अपने आपको गरीब क्यो मानते हैं। क्या इसलिये कि आपके पास धन नहीं है ? तो हमे भी देखिये हमारे पास एक पैसा भी नहीं। हम पैदल चलते हैं। अब पूंजी की पूजा करने का जमाना लद चुका है। हाँ, आज सीटों का जमाना अवश्य है। आज वे आदमी बड़े माने जाते हैं, जो शासकीय सीट पर है। पर यह भी गलत बात है। वे ही आदमी जिन्हें सीट लेनी होती है, पहले कितने लुभावने आश्वासन देते हैं और फिर गरीबो के सामने देखते तक नहीं। अतः उन्हें ही बड़ा मानना कोई आवश्यक नहीं है। बड़े वे ही हैं जो त्यागी

हैं। खाने को बड़े भी तो मुश्किल से बनते हैं फिर बड़ा आदमी बनने में तो बड़े त्याग की आवश्यकता है। अगर आपको बड़ा बनना है तो अणुव्रती बनिये।

आप लोग इतना काम करते हैं, पर फिर भी रहते भूखे के भूखे हैं। इसका कारण क्या है ? यही कारण है कि आप कमाते तो एक हाथ से हैं और गंवाते सौ हाथो से है। इधर कमाया और उधर शराब मे खो दिया। मांस मत खाइये। हाँ, रोटी खाये बिना काम नही चल सकता। पर मांस भी कोई खाने की चीज़ है ? तम्बाकू भी आपको चाहिये। क्या यह पैसे, स्वास्थ्य और सबसे ज्यादा आत्मा के बर्बाद होने का रास्ता नहीं है ?

एक बात और—आप अपने वोट की बिक्री न करें। आप वोट किसी को दें, इसमे मुझे आपसे कुछ नही कहना है। पर अपने आपको दूसरों के हाथ तो मत बेचिये।

कम से कम इतनी बातों को अपने जीवन में स्थान दे दिया तो मै समझता हूँ कि आपका जीवन सुखी हो जायेगा। बिना आत्म-शुद्धि के कहीं भी शान्ति नहीं मिलने वाली है। चाहे आप कहीं चले जायें, किसी धर्म को स्वीकार कर लें।

आपके साथ साथ आपके पास बैठने वाले भाइयो से भी मै यही कहूँगा कि वे अस्पृश्यता जैसी मानसिक हिंसा का त्याग करें। हाँ, इस सम्बन्ध में आपसे भी मुझे कहना है। हरिजनो में भी आपस मे छूआछूत है, यह अनुचित बात है। जब आप लोग भी इसके शिकार हैं, तब दूसरों को आप समानता की बात क्या कह सकते है। अतः उसे मिटाइये, तब ही आप बड़े हो सकेंगे। अपना बड़प्पन अपने हाथ में है। अगर आप किसी को भी छोटा नहीं मानते हैं तो आप स्वयं ही बड़े हो जाते है।"

प्रवचन के अन्त में अनेकों (प्रायः सभी) हरिजनो ने वोट के लिये

रुपये लेने और शराब पीने का त्याग किया ..उसमे थोड़े लोगो ने धूम्र-पान और उससे थोड़े लोगो ने मांस खाने का त्याग किया।

त्याग लेते समय कुछ बच्चे भी खड़े हो गये थे। उन्हें समझाते हुये आचार्य श्री ने कहा—अभी तुम छोटे हो, फिर बड़े हो कर भी इन्हें निभाना होगा। अतः पूरा समझ लेना। कुछ छ[illegible] थे, जो त्याग के महत्व को नहीं समझते थे, उन्हें प्रत्याख्यान नहीं करवाया गया।

[illegible]

पांचवां दिन

पाप का सुधार

१७ दिसंबर १९५९ को नई दिल्ली विहार कर आचार्य श्री नये बाजार पधारे। बीच में "राष्ट्रीय-चरित्र-निर्माण-अणुव्रत सप्ताह" के अन्तर्गत "सेन्ट्रल जेल" में प्रवचन हुआ। प्रवचन प्रारम्भ करते हुए आचार्य श्री ने लगभग १५०० कैदियों को सम्बोधित करते हुए कहा—"आज के इस सुन्दर अवसर पर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। अपराधियों के बीच काम करने मे मेरी विशेष रुचि रही है। आप लोगो के बीच मेरा आने का पहला ही अवसर है। शायद आप लोगों का भी यह पहला ही अवसर होगा, जब कि एक धर्म गुरु आप के बीच उपदेश कर रहे हैं।

सब से पहले मैं आप से यह पूछना चाहूँगा कि आप आस्तिक हैं या नास्तिक? नास्तिक वह है जो पुनर्जन्म, धर्म, कर्म मे विश्वास नहीं करता। जो इनमे विश्वास करता है वह आस्तिक है। शायद आप

लोगो मै से अधिकतर आस्तिक होगे। आप को सोचना है—ईश्वर क्या है ? ईश्वर वही है, जो सर्वद्रष्टा है। इसीलिए हम सवेरे-सवेरे उसका स्मरण करते हैं। जब हमने मान लिया कि परमात्मा सारे संसार को देखता है तो उससे छिपकर काम करने वाला क्या नास्तिक नहीं है ? अतः सब से पहले आपको यह सोचना है कि आपने क्या अपराध किया था ? किसी दूसरे ने आप के अपराधों को देखा या नही ? पर आप खुद अपने अपराधो को नही भूल सकते। इसी कारण आप को जेल की हवा खानी पड़ी है। यद्यपि मै यह मानता हूँ कि समूचा संसार कैद खाना ही है क्योकि शरीर भी तो बन्धन ही है·· जिस दिन इससे छूटेंगे, वह दिन धन्य होगा। पर इतना कह देने मात्र से काम नही चलेगा। यह निश्चय की भाषा है। व्यवहार की भाषा में जेल यही है, क्योकि यहाँ अपराधी रहते हैं। मै कहूँगा—आप अपना आत्म-निरीक्षण करें। आप सोचिये—क्या आपने अपराध किया है ? शायद आपकी आत्मा हाँ कहेगी। तब आप उसे छुपाइये मत। साफ-साफ कह दीजिये। आप यह देखते होगे कि पुलिस ने आप को व्यर्थ ही जेल में डाल दिया है। पर आज आप उसे भूल जाइये। गवाहो की झूठी गवाही को भूल जाइये। अपने आप को देखिये कि अपना क्या अपराध हुआ ? पाप के स्वीकार मात्र से आप की आत्मा कुछ हल्की हो जायेगी। पाप का पहला प्रायश्चित है—आत्म-ग्लानि। अतः अगर आप अपने आप को स्वीकार कर लेते हैं, तो एक रूप से उसका प्रायश्चित्त हो जाता है।

रामायण मे एक प्रसंग आता है—एक बार सीतेन्द्र अपने स्वर्ग से चल कर रावण आदि अपने पूर्व भव के सम्बन्धियों को देखने नरक में गया। वहाँ उसने देखा—सारे नैरयिक आपस में बुरी तरह लड़ते हैं और दुःख पाते हैं। उसके मन मे दया आ गई। उसने चाहा कि वह रावण आदि को विमान में बिठा कर अपने स्वर्ग में ले जाये। पर अपने पाप के कारण वे ऊपर नहीं जा सके। सीतेन्द्र ने भी देखा कि वह रावण आदि को स्वर्ग में नहीं ले जा सकता और कहा—तुम स्वर्ग

में तो नहीं जा सकते पर एक काम तो करो—आपस मे लड़ कर जो तुम दुःख पा रहे हो, वह तो मत करो। इससे कम से कम तुम्हारा अगला जन्म तो सुधरेगा। रावण ने उसकी बात मान ली।

इसी प्रकार हम आज यहाँ जेल मे आये हैं पर आप को जेल से छड़ाने के लिये नहीं। हमारा कर्तव्य है कि हम आप को उपदेश दें और आप को दुर्व्यसनो से छुड़ायें। आप भी जेल से छूट नहीं सकते पर कम से कम अपने अपराधो को तो स्वीकार करें। इससे आप को आगे की लम्बी जेल से छुटकारा मिलेगा।

अपराध कई प्रकार के होते हैं—मानसिक, वाचिक और कायिक। मन मे बुरा चिन्तन करने वाला भी अपराधी है तो जो आदमी हत्या या चोरी करता है, वह तो साक्षात् अपराध है ही ···फिर वे चाहे जेल मे हो या बाहर। उसी प्रकार जो आदमी हत्या नहीं करता है, अहिंसक है, पर चाहे जेल में भेज दिया जाये, वह अपराधी नही होता। यह भी क्या पता कि आप अपराधी हैं या नहीं। मै तो कई बार कहा करता हूँ कि आज का सारा संसार ही अपराधी है। व्यापारी बाजार में अनीति करते हैं, क्या वे अपराधी नहीं हैं? कानून का भंग करने वाला हर कोई अपराधी है। तो आज ससार में कितने आदमी हैं, जो अपराध नहीं करते। पर कानून ही ऐसा है कि जिससे सारे पकड़ में नही आते या नहीं पकड़े जाते। आप अपराधी इसलिये हैं कि आपका अपराध पकड़ लिया गया। अतः व्यवहार की दृष्टि से यह स्पष्ट है कि आपने अपराध किया है। इसलिये आज आप को स्वयं को टटोलना है।

हमने सोचा—जब हम सब वर्गो में काम करते हैं तो अपराधी लोगों को भी हमें सम्हालना चाहिये। हमारा यह दावा नही है कि हम आप को सुधार ही देंगे। प्रेरणा देना हमारा काम है। सुधरेंगे तो आप स्वयं ही। मैं यह कहूँ कि मै आप को सुधारता हूँ, तो यह 'अहं' होगा। रास्ता दिखाना मेरा काम है उस पर चलना आप का काम है। मैं क्या,

परमात्मा भी किसी को सुधार नहीं सकता, यदि स्वयं व्यक्ति सुधरना न चाहे।

सुधार व्रतो से सम्भव है। अणुव्रत व्रतों का मार्ग है वह आप के सामने है। अति-त्याग और अति-भोग के ब च का यह मध्यम मार्ग है। अणुव्रती वह है जो छोटे व्रतों को ग्रहण करे। आप भी आज से अपने अपराधो को पुनः न दुहराने की प्रेरणा लें। खान-पान मे अशुद्धि न बरतें। कम से कम उन चीजो को तो अवश्य छोड़िये जो दिमाग को बिगाडती हैं। इसके अलावा आप से मै एक बात यह भी कहूँगा कि आप अपने व्यवहार को इतना विश्वस्त बनाइये, जिससे कि आप के आस-पास रहने वाले अफसर आप पर विश्वास कर सकें · सजा तो आप को भोगनी ही पड़ेगी। तो फिर अविश्वस्त बन कर पाप क्यो कमा रहे हैं।

आप के साथ-साथ उपस्थित अधिकारियो से मै भी यह कहना चाहूँगा कि आप को कैदियो के साथ वैसा बर्ताव तो करना ही पड़ता है, जैसा कानून कहता है। पर आप अपनी ओर से उनके साथ क्रूर व्यवहार न करें।

इसके बाद सभी लोगों ने दो मिनट तक आत्म-चिन्तन किया। कई कैदियों ने अपने-अपने अपराध स्वीकार भी किये और आगे वैसा न करने की शपथ ली। वातावरण बड़ा शान्त रहा।

तत्पश्चात् एक कैदी ने अपनी आत्म-कथा सुनाई। उसकी बोली में वेग था। एक ही साँस मे वह सब कुछ कह गया और आचार्य श्री से यह प्रार्थना की कि वे उच्च अधिकारियो से मिलते वक्त कैदियो की स्थिति का भी वर्णन करें और उसमें कुछ सुधार हो, ऐसा प्रयत्न भी करें।

आज के इस अनोखे कार्य-क्रम मे केन्द्रीय रेलवे मंत्री श्री जगजीवन-राम और राजस्थान के पुनर्वास मंत्री श्री अमृतलाल यादव ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये और अणुव्रत आंदोलन के वर्गीय कार्यक्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा की। कई श्रावक श्राविकायें भी कार्यक्रम में उपस्थित थीं।

आत्मा की आवाज

केन्द्रीय रेलमंत्री श्री जगजीवनराम ने अपने भाषण में कहा—"जिस काम को करते समय छिपाना चाहते हैं या काम करके जिसे छिपाना चाहते हैं, मेरे विचार मे वह अपराध है। सब की आत्मा हर वक्त यह बताती रहती है। पर होता यह है कि हम आत्मा की आवाज को दबा देते हैं। व्यक्ति अपराध क्यो करता है, समाज का ढांचा भी इसका एक कारण है। आज के समाज में अनेकों बेढंगी और बेहूदी बातें हैं, जिन्हें हमे बदलना है। आचार्य श्री तुलसी अणुव्रत-आदोलन द्वारा ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं इसलिये मुझे इस आंदोलन मे दिलचस्पी है। आचार्य श्री का यह काम बड़ा सुन्दर है। मैं तो चाहता था कि जहाँ भी यह कार्यक्रम चले, उपस्थित रहूँ। पर ऐसा कर नहीं सका, दूसरा कार्य भार जो है। जेल के भाइयों से मै कहना चाहूँगा कि वे जेल से निकलें तो कुछ सीख कर निकलें। बुराइयाँ नही, भलाइयाँ और चरित्र की बातें।

नैतिक दिशा

राजस्थान के पुनर्वास मंत्री श्री अमृतलाल यादव ने अपने भाषण में कहा—"जिन कैदी भाइयो ने खड़े होकर आचार्य श्री के समक्ष प्रतिज्ञायें ली हैं, वे अपने मन में निश्चय कर लें—उसके अनुरूप उन्हें अपने आप को तैयार करना होगा। जीवन के आध्यात्मिक और नैतिक पहलुओं पर जैसा कि आचार्य श्री ने बताया, वे अमल करें और अपने भावी जीवन मे क्रियात्मक रूप से ईमानदारी, सचाई आदि अपनायें। अणुव्रत आंदोलन वह आंदोलन है, जिसने दलित, शोषित और पीड़ित—सबको—मानव-मात्र को एक नैतिक दिशा प्रदान की है। आचार्य श्री तुलसी का यह गौरवशाली कदम है।"

छठा दिन

महिलाओं का दायित्व

१८ दिसम्बर १९५६ को "दीवान हाल" मे दिल्ली प्रदेश काँग्रेस महिला समाज की ओर से महिलाओ में आचार्य श्री का प्रवचन हुआ। दिल्ली की अनेक कार्यकर्त्रियो के अलावा काँग्रेसाध्यक्ष श्री ढेबर भाई भी प्रमुख वक्ता के रूप मे उपस्थित थे। हाल खचाखच भरा था। दिल्ली प्रदेश काँग्रेस महिला समाज की संयोजिका श्रीमती सुशीला मोहन नें आचार्य श्री के स्वागत मे भाषण दिया।

आचार्य श्री ने अपना प्रवचन आरम्भ करते हुए कहा—"आज सप्ताह के छठे दिन का कार्यक्रम है। उसका उद्देश्य यही है कि आज जो देश का चारित्रिक वातावरण गन्दा हो गया है, शुद्ध किया जाय। जब तक देश का चरित्र ऊँचा नहीं होगा, तब तक सारी विकास योजनाएँ बे-बुनियाद होगी। इसीलिए हमने सोचा कि हमें देश में चरित्र का वातावरण बनाना चाहिए। वैसे तो जिम्मेवार व्यक्ति इस विषय मे सोचते ही है, क्योकि देश की बागडोर चिन्तक व्यक्तियो के हाथ मे है। पर हमारी भी कुछ जिम्मेदारी है और इसलिए हमने सोचा--यह आन्दोलन अब की बार राजधानी में भी विशेष रूप से चलाना चाहिए। इसलिए हम राजस्थान से चलकर अभी-अभी यहाँ आये और देश के विशिष्ट व्यक्तियो से विचार-विमर्श किया। इसी का यह परिणाम है कि हम जन-जन मे नैतिक जागृति लाने की कोशिश कर रहे हैं।

हम हरिजनो मे गये। हम जेल वासी बन्दियों के बीच भी गये।

हमें खुशी हैं कि वहाँ पर अनेकों वन्दियो ने अपने अपराध स्वीकार किये और फिर से अपराध न करने की प्रतिज्ञा की। वहाँ पर मैने एक बात कही थी—आज अपराधी कौन नहीं है। सारा संसार मुझे तो अपराधी ही दीखता है, ये बेचारे अपराध करते देख लिए गये। अतः जेल में डाल दिये गये। उनका सुधार भी आवश्यक है।

बहिनो से मैं कहूँगा—आपका सुधार बड़ा महत्व रखता है। एक बहिन के सुधार होने का मतलब है, एक परिवार का सुधार, अतः आपको देश के नैतिक पतन से लड़ने के लिये तैयार रहना चाहिये। आप यह कहना छोड़ दें कि हम क्या कर सकती हैं। आप तो बहुत कुछ कर सकती हैं। कई भाई व्यापार में अनैतिकता करते हैं। उनसे पूछा गया—आप अनैतिकता क्यों करते हैं? तब उन्होंने कहा—हम क्या करें? हमें औरतें तंग करती हैं। उन्हें हमेशा नई फैशन चाहिये। नये जेवर और नये कपड़े चाहिये। इसीलिये हमे अनैतिकता बरतनी पड़ती है··· उनका यह उत्तर सही हो, यह मै नही मानता। पर आज हमें उन्हें नहीं देखना है। मैंने "सप्रू हाऊस" मे कहा था—आज आलोचना का युग है। हर एक दूसरे की आलोचना करने को तैयार है। जनता सरकार की आलोचना करती है। पर ज्यादातर वही लोग सरकार को कोसते हैं, जो स्वयं रिश्वत देते हैं। इसी प्रकार सरकारी लोग जनता की आलोचना करते हैं। अध्यापक छात्रो की आलोचना करते हैं और छात्र अपने अध्यापकों की। पर अपनी आलोचना कोई नही करता। सब दूसरो की आलोचना करते हैं। अगर अपनी आलोचना करें तो देश सुन्दर हो जाय। आज दूरबीन बनने की आवश्यकता नहीं है, आइना बनने की आवश्यकता है। दूरबीन दूर की चीजें देखती है, आइना नजदीक की। आज अपने आपको नजदीक से देखने की आवश्यकता है।

कई लोग कहते हैं—इस प्रकार व्यक्ति-व्यक्ति के सुधार से सारा संसार कब तक सुधरेगा? पर आप बताइये कि इसके सिवाय परिवर्तन का और मार्ग ही क्या है?

आज लाखो आदमी एक साथ धर्म परिवर्तन कर रहे हैं। पर मेरा इसमे विश्वास नहीं। धर्म-परिवर्तन इस प्रकार कभी सम्भव नहीं होता। एक एक व्यक्ति जब धर्म के महत्व को समझेगा, तब ही वास्तविक सुधार सम्भव है। एक एक व्यक्ति से समाज का सुधार होगा और फिर एक एक समाज से एक देश का सुधार होगा और फिर सारे राष्ट्र का। क्रान्ति की यह प्रक्रिया है। मकान की एक एक ईंट सही होगी तो मकान पक्का बनेगा। अगर ईंटें ही कमजोर होगी तो मकान पक्का कैसे बनने वाला है। इसी प्रकार यदि राष्ट्र का व्यक्ति व्यक्ति चरित्रवान होगा तो राष्ट्र अवश्य उन्नत होगा।

अगर आज बहनें यह संकल्प करलें कि हमे फैशन नहीं चाहिये, हमारे लिये जनता का शोषण नहीं होना चाहिये, तो मै समझता हूँ, यह बहुत बड़ी क्रान्ति होगी ;

दूसरी बात यह है कि बहनें अपने आप मे हीनता का अनुभव करती हैं, यह क्यो ? आप तो महापुरुषो की माताएँ हैं। तब फिर आप मे यह कायरता क्यो। बहनें तो पुरुषो से कई बातो मे आगे हैं। भारत मे चरित्र का स्थान पुरुषो से बहनो का ऊँचा है। तब फिर अपने आपको हीन मानना, क्या अपराध नही है ?

मै बहुधा बहनो से यह सुनता हूँ कि उनका आदर नहीं होता। पर मैं आप से एक बात कहूँ कि आपके पुत्री हो जाये तो आपके मन मे कितनी हीन भावना पैदा होती है। राजस्थान मे एक कुप्रथा है कि लड़का पैदा होता है तो उसकी खुशी में थाली बजाई जाती है और लड़की पैदा होती है तो छाज पीटा जाता है। कहा जाता है—यह पत्थर कहाँ से आगया। और भी कितने हीन भाव मन मे आते होगे। तो फिर सोचिये आपके मन में ही यदि लड़की के प्रति हीन भावना है तो पुरुषो के मन तो उच्च भावना होगी ही कैसे ? अतः आप को स्वयं अपने मन से वह दुर्भावना निकाल देनी चाहिये। मैं समझ नही पाया, जबकि दोनों ही सृष्टि के अंग है, तो फिर उनमें यह भेदभाव क्यो ?

तीसरी बात है—आप सोचती हैं कि हमारा उत्थान पुरुष करेंगे। पर यह बात निराधार है। अपना उत्थान व्यक्ति स्वयं करने वाला है। कोई किसी का उत्थान नहीं कर सकता। उत्थान आखिर है क्या? अपनी कमियों को दूर किया कि उत्थान हुआ। हमें प्रगति नहीं करनी है। केवल अपनी दुर्गति को हटा देना है। यही वास्तव में प्रगति है और यह किसी दूसरे से होने वाली नहीं है।

रामायण में सीता जी के लिये कितना सुन्दर उदाहरण है। अरण्य में छोड़ देने के बाद राम स्वयं सीता को याद करते हैं। वहाँ कितना सुन्दर चित्रण किया जाता है :—

"मतो देण मंत्रीश, सुकाम समारण दासी"

राम कहते हैं—सलाह देने के लिये सीता मेरे मंत्री का काम करती थी। जब कभी उससे सलाह लेने का काम पड़ता, वह कितनी सुन्दर सलाह देती थी। पर वही सीता घर का काम करने के लिये दासी थी। आज स्त्रियाँ सोचती हैं कि घर का काम करना तो उनका है ही नहीं। कई बार हमारी ये बहनें कहती हैं—महाराज सेवा करने की इच्छा तो थी। पर करें क्या, साथ में कोई औरत नहीं है। इस प्रसंग पर मुझे वह कथा याद आती है—

"एक व्यक्ति एक सेठ जी के पास गया और कहा—मुझे अमुक चीज चाहिये। सेठ जी ने कहा—हाँ भाई, वह चीज तो है पर देने वाला कोई आदमी नहीं है। वह हंसा और कहने लगा—मैं तो आपको आदमी ही समझता था। व्यंग को सेठ जी समझ गये।"

इसी प्रकार हमारी बहनें कहती हैं—उनके साथ काम काज करने के लिये कोई औरत नहीं है। तो मैं समझ नहीं पाया कि आप औरत हैं या और कोई। अतः जब तक बहनों में स्वावलम्बन नहीं आएगा, तब तक वे वास्तविक उन्नति नहीं कर सकेंगी।

इसी प्रकार दहेज-प्रथा के बारे में भी मैं आपसे यह कहूँगा कि क्या यह नारी जाति के लिये कलंक की बात नहीं है। रुपये पैसों से भेड़-

बकरियों की तरह औ रतो को खरीदना और बेचना क्या शर्म की बात नहीं है। आप कहेंगी हम क्या करें, पुरुषो का दिमाग ही ऐसा है। बात ठीक है। पर एक बात तो आप कर सकती हैं—अपने पुत्रो की शादी में स्वयं तो कुछ न लें। अगर आप इतना भी कर सकीं तो नैतिक क्रान्ति में आप बड़ा भारी काम कर सकेंगी।

आप मेरी भावना को समझें और तदनुकूल जीवन बिताने का प्रयास करें।"

आज के मानव का मूल्य

कांग्रेस के अध्यक्ष श्री ढेवर भाई ने कहा—"हम सबने महाराज श्री का प्रवचन सुना। शब्द त सब ही बोलते हैं। पर कितनेक शब्दो का बल दूसरा ही होता है। और सचमुच ही आचार्य श्री ने जो बातें कहीं, वे बड़ी बल वाली बातें हैं। अणुव्रत की बात उनके लिये नई नही है। फिर भी वे हमारे बीच आये। इसलिये नहीं कि यहाँ आपसे उन्हें कोई स्वार्थ साधना है या इसलिये नहीं कि आपको अपना शिष्य बनाना है ''पर वे हमारी हालत देखकर अनुकम्पा से प्रेरित होकर ही यहाँ आये है।

मनुष्य ईश्वर की सबसे बड़ी कृति है। पर मनुष्य ने अपनी जाति को बिगाड़ने की जितनी हरकतें की है, उतनी शायद किसी ने नहीं कीं। गाय, बैल, पत्थर, वृक्ष कोई भी अपने धर्म को नहीं भूले, पर मनुष्य सब कुछ भूलकर आज कहाँ पहुँच गया है? वह मनुष्य जो अपने हाथ से सोना निकालता था, आज सोने का गुलाम बन गया है। वह मनुष्य जो अपने हाथ से समृद्धि पैदा करता था, आज समृद्धि का गुलाम बन गया है। वह मनुष्य जो अपने हाथों से अपने पुरुषार्थ से संसार को बनाता है, वही आज संसार का गुलाम बन गया है'''ऐसे तो मनुष्य जीवन अमूल्य है पर आज वह सबसे सस्ती चीज समझा जाता है।

आज मनष्य का मूल्य बदल गया है। मूल्यांकन की दृष्टि बदल गई

है। कभी मानवता की कद्र की जाती थी पर आज अभिनेता और अभिनेत्रियो की कद्र की जाती है।

कनॉट् सरकस में एक बार बच्चों, युवको और बुड्ढों की भीड़ जमा हो गई थी। उसे देखकर किसी ने समझा यहाँ नेहरू जी या कोई दूसरे बड़े नेता आये होंगे। पर पूछने पर पता चला कि वहाँ तो अभिनेता और कई अभिनेत्रियाँ खड़ी थीं। अतः लगता है, जीवन आज सूखा हो रहा है। हमें अन्दर से प्रेरणा नहीं मिलती। अतः वह स्थान-स्थान पर सिनेमा में और दूसरी जगह मारा मारा भटकता फिरता है। आज हमें आवश्यकता है कि हम जीवन को रसमय बनायें और प्रतिपल रस लेना सीखें।"

आयोजन (१३) अणुव्रत सप्ताह

सातवां दिन

पैसे की भूख

१६ दिसम्बर १६५६ को आहार के पश्चात् दोपहर के दो बजे आचार्य प्रवर विक्रय कर कार्यालय मे प्रवचन करने पधारे। वहाँ के सारे अधिकारी एवं कर्मचारी एक खुले मैदान में इकट्ठे हो गए। लगभग ५०० की उपस्थिति थी। जैन मुनियों को नजदीक से देखने का उनके लिए पहला ही अवसर था। उनके चेहरो पर जिज्ञासा झलकती थी। विक्रय कर आयुक्त श्री डी० डी० कपिल के स्वागत भाषण के बाद आचार्य श्री ने अपने भाषण मे कहा—दूसरो को धोखा देना पाप है

किन्तु सबसे बडा पाप है अपने आप को धोखा देना। व्यक्ति दूसरो का बुरा करता है पर यह नहीं सोचता कि सबसे ज्यादा बुरा स्वयं का होता है। बुरे व्यक्ति से समाज बुरा बनता हैं, बुरे समाज से राष्ट्र बुरा बनता है और बुरे राष्ट्र का प्रभाव अनेक राष्ट्रो पर पडता है। इसीलिए स्वयं को धोखा देने से बचना चाहिए। मैंने एक प्रवचन मे कहा था—

आपको और संघ को, संसार को धोखा न दो।
करके कहनी सींक करनी वेग से आगे बढो॥
व्यक्ति जाति व संघ का इससे सदा कल्याण है॥

जब तक कथनी और करनी मे समानता नहीं आती तब तक पवित्रता नही आती।

वह नारकीय जीवन है, जिसमे मन-वाणी और काया का सामञ्जस्य नहीं, आत्मविश्वास नहीं, इंसानियत या मानवता नहीं।

वह स्वर्गीय जीवन है, जिसमे सत्य, अहिंसा व प्रेम भरा हुआ है; जिसमे आत्म सम्मान है, आत्म निष्ठा है।

आज मनुष्य की निष्ठा पैसे मे है। वह सुख-सुविधा व विलास चाहता है। विलास पैसे के बिना नहीं आता। पैसो का ढेर शोषण के बिना नहीं होगा। इसलिए अपनी विलास की अभिलाषा को तृप्त करने के लिए शोषण भी करता है। कभी-कभी अपनी मानवता को भी बेच देता है। उसे पैसा चाहिए, वह कैसे भी क्यों न मिले वह यह नहीं सोचता। उसका ध्यान पैसे पर केन्द्रित है। इसी को बनाये रखने के लिये वह ज्यादा व्यावहारिक बनता है। झूठी सभ्यता को अपनाने में कभी नही हिचकता। यहीं से बुराई का चक्र घूमने लगता है। घूमते-घूमते जब वह व्यक्तियो को जीर्णकाय बना देता है, तब व्रतो की बात याद आती है। उसके चिन्तन के प्रकार में एक मोड़ आता है और वह भोग से त्याग की ओर मुडता है। महाव्रतो को वह अपना नहीं सकता। अणुव्रतो की ओर गति करता है।

अतिभोग विनाश का कारण है और अति त्याग (महाव्रत) व्यापक

नहीं हो सकते। अणुव्रत बीच का मार्ग है, मध्यम प्रतिपदा है। वे छोटे-छोटे व्रत व्यापक बन सकते हैं। साधारण से साधारण व्यक्ति भी इन्हें अपना सकता है।

विशिष्ट अणुव्रती किसी भी कर की चोरी नहीं करता। राज्य-निषिद्ध वस्तुओं का व्यापार नहीं करता। कट-तोल-माप नहीं करता, जीवन को आडम्बर युक्त नहीं कर सकता। इस प्रकार जीवन का प्रत्येक क्षेत्र पवित्र बनता चला जाता है और जीवन सुखी व भारमुक्त हो जाता है।

मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि आप अणुव्रतो को समझें। प्रवेशक अणुव्रती, अणुव्रती या विशिष्ट अणुव्रती इन तीनो मे से किसी भी श्रेणी मे अपनी शक्ति के अनुसार सहयोग दें। व्रतो से घबराएँ नहीं।

प्रश्नोत्तरो का भी कार्यक्रम रहा। व्रतों का वाचन हुआ। विक्रय कर कार्यालय में प्रवचन कर आचार्य श्री मिनर्वा पधारे। उस समय राजस्थान के राज्यपाल सरदार गुरुमुख निहालसिंह दर्शनार्थ आये। लगभग २० मिनट तक बातचीत हुई। उन्होनें कहा—अब मै आपके राजस्थान में आ गया हूँ। यदि संभव हुआ तो मर्यादा महोत्सव पर सरदार शहर आ सकूंगा।

आत्मतत्त्व का बोध

१६ दिसम्बर १६५६ को अपराह्न मे दूसरा कार्यक्रम वकील-संघ की ओर से आयोजित किया गया।

सर्व प्रथम मुनि श्री नगराज जी ने परिचयात्मक भाषण दिया। वकील-संघ के अध्यक्ष श्री राधेलाल अग्रवाल ने स्वागत भाषण दिया। तदनन्तर आचार्य श्री ने प्रवचन आरम्भ करते हुए कहा—"आज सप्ताह का अंतिम दिन है। जहाँ पिछले दिनों विद्यार्थियो, अध्यापकों, हरिजनों तथा अन्यान्य वर्गीय लोगों के बीच इस नैतिक निर्माणकारी आन्दोलन का कार्यक्रम चला, वहाँ आज विशिष्ट बौद्धिक क्षेत्र के लोग—आप वकीलो, जजों एवं मजिस्ट्रेटों के बीच यह कार्यक्रम रखा गया है, जिसे मै आवश्यक समझता हूँ।

हम जिस देश मे रहते है, उसे पुण्यभूमि कहा जाता है। आप कहेंगे—क्यो ? यहाँ पर सत्य और अहिंसा की जगमगाती ज्योति निरंतर जलती रहती है। दूसरे देशों को इसने सत्य और अहिंसा का पाठ पढ़ाया। यहाँ पर विध्वंसात्मक शस्त्रो का अन्वेषण नहीं हुआ, यहाँ की गवेषणा से आत्म-तत्व प्राप्त हुआ है। पश्चिम में एटमबम और हाई-ड्रोजन बम का आविष्कार हुआ, वहाँ हमारे ऋषियो ने सत्य और अहिंसा का आविष्कार किया। केवल यह कहने भर के लिए नही, उन्होने अपने जीवन मे उतारा भी। अतएव यह कहा गया है—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

अर्थात् संसार के लोगो को नीति और चरित्र की शिक्षा लेनी है तो वह ज्ञानी और सच्चरित्र भारतीय से ले। यही कारण है, भारत ने संसार का आध्यात्मिक और नैतिक नेतृत्व किया था, पर आज

खेद है कि भारत में बाहर से लोग नीति की शिक्षा देने आते हैं। कोई भी आये, उसकी हमें शिकायत नहीं। भारतीय संस्कृति ने बन्धु होकर रहने वालो का हमेशा स्वागत किया है। पर वास्तव में जो भारतीय होगा, उसके मन में दु.ख होगा कि आज भारत की क्या दशा हो गई है ? मै जानता हूँ कि आज भारत मे ऊँची ऊँची शिक्षाएँ चल रही हैं, पर इसके साथ-साथ यह भी जानता हूँ कि आज भारत मे आत्म-निरीक्षण की भावना बहुत कम हो गई है। हर कोई दूसरो को बुरा-भला कह देगा पर अपना आत्म-निरीक्षण करने को कोई तैयार नहीं। दर्शन केवल शिरस्फोटन के लिए नहीं है, वह देखने के लिए है, अपने आपको देखने के लिए है। अतएव भारतीय ऋषियो ने कहा है—

"अप्पाचेव दमेयत्वो, अप्पाहु खलु दुद्दमो।
अप्पादंतो सुही होई, अस्सि लोए परत्थए...

आत्मा का—अपने आपका ही दमन करना चाहिए। आत्मा निश्चय ही दुर्दमनीय है। जो अपने आप का दमन करता है, अपने आप को संयत बनाता है, वह इस लोक मे और परलोक मे सुखी होता है।

दूसरो पर अनुशासन करने के लिए सब तैयार हैं, पर अपने पर कोई नहीं करता। वह विद्या ही क्या है जिससे इतना भी ध्यान न आए कि दूसरो को पीड़ा नहीं देनी चाहिए ? भारतीय संस्कृति में कहा है:—

"वर मे अप्पादंतो, संजमेण तवेण य...
माहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहिं वहेहि य।

अर्थात् अच्छा हो अपने नियमो से हम अपना कंट्रोल करें।
मत ना दूजे वध बन्धन से मानवता की शान हरें॥

बहुत से लोग मौत से घबराते हैं। पाँच क्षण के लिए भी दवाइयाँ लेकर जीवन की याचना करते रहते हैं। पर हमारे शास्त्रों मे बताया गया है—"मौत से लड़ो" जब तुम और काम करने मे समर्थ नहीं रहो, तब अनशन कर अपने शरीर का त्याग करदो।

अणुव्रत का मार्ग

महाव्रत की तो कल्पना ही शायद आप लोगो के लिये मुश्किल हो जायेगी। जीवन भर पैदल चलना, अपना बोझ स्वयं उठाना, चिकित्सा भी डाक्टर से नही करवाना, नौकर-मजदूर नहीं रखना, भोजन आदि के लिये किसी को तंग नहीं करना, केशलुंचन करना, रात को कुछ भी नही खाना, न कुछ भी पीना। प्राण चले जायें पर प्रण नही जाये—यह साधुत्व का आदर्श है। पर अणुव्रत तो मध्यम मार्ग है। उसमें न तो इतना बडा त्याग है और न बहुत ज्यादा भोग के लिये छूट ही है। भोगो का नियंत्रण यथाशक्य करते रहो, यही इसका संदेश है। इसलिये यह प्रत्येक के लिये ग्रहण करने योग्य है। आप भी इसे ग्रहण कर सकते हैं।

आज लोगो में धर्म से अरुचि हो गई है। विशेषतः शिक्षित वर्ग तो धर्म को अफीम तक कह देते हैं। पर यह निरपेक्षता क्यो हुई? क्योकि धर्म केवल धर्म स्थानो तक ही रह गया। जीवन-व्यवहार मे वह नहीं उतरा। आज भी बाजार और कचहरी मे, जीवन-व्यवहार में धर्म को भुला दिया जाता है। इसी कारण धर्म बदनाम हो गया। पर वह क्या धर्म जो केवल धर्मस्थानों में ही किया जा सके। उसकी हर क्षेत्र मे आवश्यकता है। वकालत मे भी ईमानदारी की बड़ी आवश्यकता है। वकालत मे निष्ठा यह हो कि वह केवल अपने लाभ के लिये ही नही की जाय। इसका अर्थ यह हो कि असलियत बताये। सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा बताना वकालत नहीं है, धोखा है, हमारे ऐसे वकील अणुव्रती भी हैं, जो कभी झूठा मामला नहीं लेते। झूठे गवाह तैयार नहीं कराते। आप कहेंगे यह तो मुश्किल है। हमारा वकालत का धंधा ही ऐसा है कि हमे सच-झूठ करनी ही पड़ती है। पर यह बात तो सबके लिये बराबर है। एक व्यापारी के लिये भी यही कठिनाई है। वह कहेगा—मिलावट किये बिना काम ही नही चलता। इसी

प्रकार की समस्या मिनिस्टरो के भी सामने हो सकती है। वैद्य, डाक्टर, भी तो यही कहेंगे। परन्तु यह बचाव अवैधानिक है। अतः मैं आपसे भी यही कहूँगा कि जब तक आप नैतिकता के इन स्थूल व्रतों को नहीं अपना लेते तब तक मानवता आपसे बहुत दूर रहेगी। आज हम आत्मा, परमात्मा और पुनर्जन्म की बातो को छोड़कर कम से कम व्यवहार की इन छोटी छोटी बातो पर तो ध्यान दें।

आप पूछेंगे—यह आन्दोलन किसका है ? उत्तर है--सबका है और इसीलिये आपका भी है। यह सर्व धर्म समन्वय की भावना को लेकर चलता है। अत. किसी धर्म सम्प्रदाय विशेष का नहीं है।

अणुव्रत-आन्दोलन की दृष्टि है—जीवन के मूल्य बदलो। आज तो धन और सत्ता का महत्त्व बढ़ गया है, यह गलत बात है। जैसे दवा रोग मिटाने के लिये ही दी जाती है, उसी प्रकार धन केवल जीवन-निर्वाह के लिये है, दूसरों पर प्रतिष्ठा जमाने के लिये नहीं। प्रतिष्ठा और अणुव्रत दोनों एक साथ नहीं चल सकते। अणुव्रतों की दृष्टि से ऊँचा वह है जो चरित्रवान् है।

आप कहेंगे—हजारों वर्ष हो गये, उपदेश होते आये हैं। भगवान् महावीर आये, बुद्ध आये, महात्मा गाधी आये। उन्होंने अपना अपना उपदेश दिया। पर क्या बुराइयाँ संसार से मिट गईं ? आपका कहना ठीक है। पर मै तो कर्मवादी हूँ। कर्म को मानता हूँ। कितना होता है, इसकी मुझे परवाह नहीं। काम करना हमारा कर्त्तव्य है। जितना भला होता है, उतना अच्छा है, उसे बुरा नहीं कहा जा सकता।

हम भी अपनी क्षमता के अनुसार काम करते हैं। विश्व कवि टैगोर ने एक जगह कहा है—

"सूर्य छिपने लगा, अंधेरा होने लगा। सूर्य बोला—मैं तो चला जा रहा हूँ। पीछे से अंधेरा न हो जाय, कौन प्रकाश करेगा ? टिमटिमाते दीपक ने कहा—मैं जो हूँ, अपनी शक्ति के अनुसार प्रकाश करूँगा।"

उसी प्रकार अपनी शक्ति के अनुसार हम काम करते हैं। हाँ, इसमें

आपका सहयोग अपेक्षित है। अकेला मै क्या कर सकता हूँ। श्री नेहरूजी से भी मैने कहा—क्या आपका सहयोग इसमे अपेक्षित नही है ?

उन्होने पूछा—कैसा सहयोग ?

मैने कहा—हम राजनैतिक सहयोग नहीं चाहते।

उन्होने कहा—मै तो राजनीति में रचा-पचा व्यक्ति हूँ। मेरा सहयोग आपके क्या काम आयेगा ?

मैने कहा—पर मै तो राजनैतिक जवाहरलाल का सहयोग नहीं चाहता... मै तो व्यक्ति जवाहरलाल का सहयोग चाहता हूँ।

उन्होने कहा—वह सहयोग तो है ही।

मैं इस भावना को शुभ-सूचक मानता हूँ। अतः इसी प्रकार आप लोगो से भी कहूँगा कि आप अपना सहयोग हमें दें।

उपस्थित वकीलो की संख्या १२५-१५० थी। और भी जज, मजिस्ट्रेट व अनेक सम्भ्रान्त नागरिक उपस्थित थे। प्रवचनोपरान्त प्रश्नोत्तर भी हुये। सभी ने पूरा पूरा रस लिया।

प्रश्नोत्तर

प्र० हम काम करते हैं, यह करने वाला कौन है ?

उ० आत्मा। दूसरे शब्दो मे जो अहं का बोध करता है, वही तत्त्व काम भी करता है।

प्र० क्या अहकार आत्मगुण है ?

उ० नहीं, वह आत्मा की दुष्प्रवृत्ति है,

प्र० शरीर मे आत्मा का वास कहाँ है ?

उ० सारे ही शरीर मे। जिस प्रकार तिलों मे तेल सभी जगह व्याप्त रहता है, उसी प्रकार आत्मा भी सारे शरीर मे व्याप्त है।

प्र० आत्मा क्या है ?

उ० चैतन्य गुण युक्त पदार्थ आत्मा है।

प्र० "मै यह कहता हूँ"—यह जो हमे बोध होता है, क्या यही आत्मा है ?

उ० हाँ, यह आत्मा का एक गुण है। उसमे और भी अनेक गुण हैं जैसे श्रवण, दर्शन आदि।

प्र० कर्म करने में आत्मा स्वतंत्र है या परतंत्र ?

उ० स्वतत्र भी है और परतंत्र भी।

प्र० आप अहिंसा का प्रचार करते हैं। पर कमजोरों मे उसके प्रचार की क्या आवश्यकता है ? अहिंसा के कारण ही तो भारत गुलाम हुआ था और आज भी वह पूरा सशक्त नहीं है। अतः पहले भारत को वलवान् होने दीजिये, फिर अहिंसा का प्रचार कीजिये।

उ० मैं कायरता को अहिंसा नहीं मानता। डर कर छुपने वाला यदि अपने को अहिंसक कहे तो मैं उसे प्रथम दर्जे की कायरता कहता हूँ। और आज अगर हम हिंसा का प्रचार करने लगेंगे तो समूचा संसार क्या जगत नहीं हो जायेगा ? अणुव्रतो का मतलव यह तो नहीं है कि अपनी रक्षा मत करो। उसका मतलव तो है—कम से कम दूसरो पर तो प्रहार मत करो।

प्र० अणुव्रत का अर्थ है—नैतिकता का प्रसार। इस ओर सर्वोदय काम कर ही रहा है तो फिर उसके होते अणुव्रतो की क्या आवश्यकता हुई ?

उ० प्रत्येक आन्दोलन की अपनी अपनी सीमायें हुआ करती हैं। अत. अणुव्रत-आन्दोलन की भी अपनी स्वतत्र सीमा है। सर्वोदय केवल नैतिक ही नहीं है, वह आर्थिक भी है। पर अणुव्रत विशुद्ध नैतिक ही है। एक डाक्टर सव प्रकार की चिकित्साओ में निपुण है, फिर भी स्पेशलिस्ट (विशेषज्ञ) डाक्टरो की आवश्यकता होती है।

प्र० अणुव्रतो मे जो बातें बताई गई हैं, वे वेदो, उपनिषदो आदि धर्मग्रन्थों मे पहले ही बताई हुई है तो फिर अणुव्रत की क्या आवश्यकता है ? आवश्यकता तो ऐसे व्यक्तियो की है, जो अपने जीवन मे इन सब बातों का आचरण कर सकें ?

उ० मैं यह कब कहता हूँ कि यह नया है। पुराने शास्त्रो मे जो

अच्छी अच्छी बातें हैं, उनका आज के युग की दृष्टि से मैनें चुनाव किया है। वैसे शास्त्रो में है तो सब कुछ, पर लोग आज उसे भूल गये। अतः अणुव्रतो के माध्यम से हम लोगो को उस ओर आकृष्ट करने का प्रयास करते हैं . .

ऐसे व्यक्ति एक-दो नहीं, अनेक हैं जिन्होने ब्लैक मार्केटिंग के जमाने मे भी ब्लैक मार्केट नही किया, झूठी साक्षी नहीं दी। वे सारे अणुव्रती हैं। और आप भी तो वैसे बन सकते हैं।

प्र० क्या दिल्ली मे भी ऐसे व्यक्ति हैं?

उ० हाँ, एक नहीं, दसो ऐसे व्यक्ति मिलेंगे।

वकीलो के लिये इस तथ्य को स्वीकार करने के अलावा कुछ अवशेष था ही नही।

कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ।

आयोजन (१५)

आज के व्यापारी

राष्ट्रीय चरित्र निर्माण अणुव्रत सप्ताह के अंतर्गत ता० २० दिसंबर को प्रातः ९ बजे दिल्ली मर्केन्टाइल एसोसियेशन की ओर से आचार्य श्री के सान्निध्य में व्यापारी सम्मेलन का आयोजन रखा गया, जिसमे दिल्ली तथा अन्यान्य स्थानो के विभिन्न क्षेत्रीय व्यापारी बड़ी संख्या में उपस्थित थे। भारत के वाणिज्य मंत्री श्री मोरार जी देसाई ने प्रमुख वक्ता के रूप में भाग लिया।

आचार्य श्री ने उपस्थित व्यापारियों को संबोधित करते हुए कहा—

"पैसा जीवन का चरम साध्य नही है। वह सामाजिक जीवन का साधन कहा जा सकता है। पर कहते खेद होता है - आज स्थिति कुछ ऐसी बन गई है कि पैसा जीवन के लक्ष्य स्थान पर आरूढ हो गया है। पैसा जब एक मात्र ध्येय बन जाता है, तब उसका अर्जन करते समय न्याय-अन्याय, औचित्य अनौचित्य का ध्यान कोई रख सके, यह संभव नहीं है। इससे शोषण बढता है, स्वार्थपरता बढती है, फलतः जीवन गिरता है, उसका आत्म बल और सत्यनिष्ठा डगमगा जाती है। अब मैं मध्यम श्रेणी के कुछ अणुव्रतियो को यह कहते सुनता हूँ कि अमुक व्यापारी के यहाँ नौकरी के लिये जाने पर उन्हें जवाब मिला कि व्यापार मे झूठ से परहेज करने वालों की उनके यहाँ क्या उपयोगिता ? यह आज के व्यापारी मानस का चित्र है। पर मैं कहना चाहूँगा—यह उनकी भ्रांत धारणा है। यह कायरता है। व्यापारी अपने जीवन मे सत्य की जितनी अधिक सन्धि पेश करेंगे, उनका जीवन उतना ही ऊँचा उठेगा। व्यापारियो की प्रतिष्ठा जो आज घटती जा रही है, पुन. कायम होगी। वे सब तरह से लाभ मे होंगे। वास्तव में सत्य और ईमानदारी व्यापारी जीवन का भूषण है।

व्यापारियों की प्रतिष्ठा

केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने अपने भाषण मे कहा—"आज व्यापारी की इज्जत ठीक नहीं है, ऐसा आम तौर से कहा जाता है। पर व्यापारी ही कमजोर है, और सब ऊँचे हैं, मैं इसे ठीक नहीं मानता। समाज तालाब के पानी जैसा है। समाज के एक कोने का पानी खराब हो, दूसरे का अच्छा, ऐसा नहीं हो सकता। बात यह है, व्यापारी के पास पैसा होता है, वह ऊँचा माना जाता है। जो ऊपर के तबके के लोग होते है, पैसे आदि की दृष्टि से जो ऊँची स्थिति मे होते हैं, उनकी ओर सब की दृष्टि जाती है। सब को उनसे आशा रहती है, इसीलिये उनकी आलोचना होती है। उनको चाहिये कि वे ऊपर की

स्थिति के लायक बनें, वे गुणो ! चे बनें। नैतिकता की बुनियाद सचाई है। यह मनुष्य का स्वभाव है। झूठ क्या है, अन्दर से झट मालूम हो जाता है, पर उसे हम रोकते जाते हैं। झूठ की आदत पड़ जाती है, सचाई के प्रति निष्ठा कम हो जाती है। हर एक व्यक्ति को उससे (झूठ से) बचने की कोशिश करनी है। अन्यान्य पेशो की तरह व्यापार भी जीवन चलाने का एक पेशा है और वह एक जरूरी काम है। यदि वह न हो तो लोगो को चीज कैसे मिले? पर वह झूठ के बिना नही चल सकता, ऐसा कहने वालो को भरोसा नही है, धर्म पर, सचाई पर। आज केवल व्यापारी ही नहीं हर एक आदमी चाहता है, उसे जीवन के साधन अधिक से अधिक प्राप्त हों—मोटर गाड़ी उसके पास रहे, मुलायम कपड़े उसे मिलें, खाना अच्छा मिले, चाहे पचे या नहीं। यह सब इसलिये कि उसका दिमाग कुछ ऐसा बन गया है, वह सुविधा और आराम चाहता है, इसलिये वह पैसे के पीछे पड़ा है। पर ध्यान रहे भोग से आदमी कभी तृप्त नही होते, उससे तो दुःख बढ़ता है। व्यापारी भाई इतना समझ लें, यदि वे सच का व्यवहार करेंगे तो पैसा तो उनको मिलेगा और जीवन भी उनका ऊँचा होगा। यदि सत्य को छोड़ा तो जीवन तो गिरेगा और पैसा भी नही रहेगा।"

प्रस्तुत आयोजन मे पूना के सर्वोदयवादी विचारक श्री रिषभदास रांका ने श्री मोरार जी देसाई के परिचय मे भाषण दिया। दिल्ली मर्कन्टाइल एसोसियेशन के अध्यक्ष रायसाहिब श्री गुरुप्रसाद कपूर ने समागत अतिथियो का स्वागत किया तथा श्री छगनलाल शास्त्री ने अणुव्रत सप्ताह के कार्यक्रम पर प्रकाश डाला।

दोपहर मे दो बजे लक्ष्मी हायर सेकेण्ड्री स्कूल की लगभग ३०० छात्रायें आचार्य श्री का संदेश सुनने को नया बाजार आईं। अध्यापिकायें भी साथ थीं।

आचार्य श्री ने उन्हें जीवन उत्थान की प्रेरणा देते हुए बताया कि वे विवेक, विनय और नम्रता जैसे सद्गुणो का संचय करें। बाहरी साज

सज्जा और दिखावे में न भूल वे आतरिक सौन्दर्य की साधना करें। आतरिक सौन्दर्य का अर्थ है—सयम, सादगी और सच्चरित्रता।

आयोजन (१६)

चुनावों में चरित्र शुद्धि

आगामी देशव्यापी आम चुनावो मे अनैतिक और अनुचित प्रवृत्तियों का समावेश न हो, इस लक्ष्य से आचार्य श्री के सान्निध्य में २२ दिसंबर १९५६ को कास्टीट्यूशन क्लब, कर्जन रोड, नई दिल्ली में अखिल भारतीय राजनैतिक दलो के नेताओ की एक सभा का आयोजन रखा गया जिसमें चुनाव मुख्यायुक्त श्री सुकुमारसेन, काँग्रेस अध्यक्ष श्री यू० एन० ढेवर, साम्यवादी नेता श्री० ए० के० गोपालन, प्रजा समाजवादी नेता आचार्य जे० बी० कृपलानी आदि देश के प्रमुख राजनीतिज्ञ उपस्थित थे।

आचार्य श्री ने अपने संदेश मे कहा—"मनुष्य ने जब से संगटित रूप में रहने की सोची किसी व्यक्ति को अपना नायक चुना। उसका सीमित क्षेत्र था कुल या परिवार जिसका नियंता कुलकर कहा जाता था। यह व्यवस्था शासन सूत्र मे गणतन्त्र के रूप में परिव्याप्त थी। प्राचीन भारत के मल्लि और लिच्छवि गणतन्त्र इसके उदाहरण हैं। समय न पलटा खाया, जन साधारण से मिलने वाली प्रभुसत्ता का अधिकारी एक व्यक्ति बन बैठा, एकतन्त्र चला। जहाँ व्यक्ति एकाकी अपने स्वार्थ और हित साधने मे लग जाता है, वहाँ जनहित गौण हो जाता है। एकतन्त्र ने इतनी गहरी जड जमाई कि राजा को ईश्वर का

अवतार माना जाने लगा। युग ने करवट ली, भारत मे राजतंत्र मिटा, विदेशी हकूमत हटी, स्वतत्रता आई, जनतांत्रिक आधार पर इसकी शासन व्यवस्था शुरू हुई। आप जानते है जनतंत्र का आधार है जन-जन। उस व्यवस्था का प्रकार चुनाव है। यदि चुनाव मे अनैतिकता और अन्याय का समावेश रहे तो उससे फलित होने वाला जनतंत्र शुद्ध नही हो सकता। जैसा कि अणुव्रत आंदोलन का लक्ष्य है—लोक जीवन मे नैतिक प्रतिष्ठा और चारित्रिक जागृति लाना, चुनाव कार्य में भी इस शुद्धिमूलक भावना का प्रसार हो, एकमात्र इसके लिये हमारा यह प्रयास है। हमारा किसी दल, पार्टी व पक्ष से कोई संबंध नही है। अध्यात्म प्रेरणा और सत्य निष्ठा जागृत करना हमारा कार्य है।

यह किसी से छिपा नहीं है कि चुनाव कार्य मे कितनी अशुद्धि और अनैतिकता छाई हुई है। दलगत और व्यक्तिगत स्वार्थ से मनुष्य इस कदर घिर जाता है कि वह सत्य, न्याय और जनसेवा से पराङ्मुख होने लगता है। जनतंत्र के मूल आधार चुनावो मे से अनैतिकता दूर हो सके, इस दृष्टि से उम्मीदवारो, मतदाताओ व समर्थको आदि के लिये कुछ नियम प्रस्तुत करता हूँ।

उम्मीदवारों के लिये नियम

(१) रुपये-पैसे व अन्य अवैध प्रलोभन देकर मत ग्रहण नहीं करूँगा।

(२) किसी दल व उम्मीदवार के प्रति मिथ्या, अश्लील व भद्दा प्रचार नहीं करूँगा।

(३) धमकी व अन्य हिंसात्मक प्रभाव से किसी को मतदान के लिये प्रभावित नहीं करूँगा।

(४) मत-गणना मे पर्चियाँ हेर-फेर करवाने का प्रयत्न नहीं करूँगा।

(५) प्रतिपक्षी उम्मीदवार और उसके मतदाताओ को प्रलोभन व

भय आदि दिखा कर तथा शराब आदि पिलाकर तटस्थ करने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

(६) दूसरे उम्मीदवार या दल से अर्थ प्राप्त करने के लिये उम्मीदवार नहीं बनूंगा।

(७) सेवा भाव से रहित केवल व्यवसाय बुद्धि से उम्मीदवार नहीं बनूंगा।

(८) अनुचित व अवैध उपायो से पार्टी टिकिट लेने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

मतदाता और समर्थक के लिये नियम

(१) रुपये पैसे आदि लेकर या लेने का ठहराव कर मतदान न करूंगा और न करवाऊंगा।

(२) किसी उम्मीदवार या दल को झूठा भरोसा न दूंगा और न दिलवाऊंगा।

(३) जाली नाम से मतदान न करूंगा।

(४) अपने पक्ष या विपक्ष के किसी उम्मीदवार का अच्छा या बुरा असत्य प्रचार न करूंगा और न करवाऊंगा।

राष्ट्र के नेता इन पर विचार करें और इनके व्यापक प्रसार का प्रयास करें।"

चुनाव मुख्यायुक्त द्वारा समर्थन

चुनाव मुख्यायुक्त श्री सुकुमारसेन ने अपने भाषण मे कहा—"आचार्य श्री तुलसी ने जैसा अपने भाषण मे बताया, आज के आयोजन का उद्देश्य है—चुनावों मे अपवित्रता न रहे इसका प्रसार करना। मुझे बहुत प्रसन्नता है कि सब राजनैतिक दलो के नेता इसमे सम्मिलित हुये हैं। हमारे देश मे ब्रिटिश हकूमत के समय भी चुनाव होते थे पर तब हमारी हालत मालिकों की नहीं थी। आज हमारी हालत मालिको की है। हमारे ऊपर भारी जिम्मेवारी है। चुनावो मे हमारे देश

के वे आदर्श प्रतिबिम्बित हो, जिन्हें हम सदियों से मानते आ रहे हैं। आचार्य श्री ने जो नैतिकतामूलक नियम प्रस्तुत किये हैं, उन्हें बार-बार दुहराया जाये। जनता के सामने प्रतिज्ञा की जाय ताकि जनता के सान्निध्य मे उन मे शक्ति पैदा हो। प्रतिज्ञायें तोडने के लिये नही, पालने के लिये की जाएँ। जो नियम आचार्य श्री ने रखे हैं, मै उनमें दो बातें और जोड़ने का निवेदन करूँगा।

(१) मतदाता यह प्रतिज्ञा करे कि मै वोट अपने अन्तरतम की आवाज के अनुसार दूँगा, देश के लाभ को सोचते हुये दूँगा।

(२) मै किसी ऐसे उम्मीदवार को वोट नही दूँगा, जिसने उम्मीदवार के लिये निर्धारित उक्त नियम नही लिये हो।

मै आशा करूँगा, हर पार्टी इन आदर्शों को ध्यान मे रखेगी।

श्री ढेबर का कथन

कांग्रेस अध्यक्ष श्री यू० एन० ढेबर ने कहा—"मनुष्य की कोई प्रवृत्ति ऐसी न हो, जो उसे गिराने वाली हो। हमारे उद्देश्य भी शुद्ध हो, साधन भी शुद्ध हो। शुद्ध उद्देश्य को हासिल करने के लिये अशुद्ध साधन का प्रयोग हुआ तो व्यक्ति को तो नुकसान होता ही है, देश को भी उससे नुकसान होता है। गलत रास्ते से कोई अच्छा काम हो नही सकता। यह जरूरी है कि चुनावो मे इस ओर पूरा ध्यान रहे। मै आचार्य श्री को विश्वास दिलाना चाहूँगा कि इस ओर हमारी जो जिम्मेवारी है, उसे तथा बुनियादी बातो को समझते हुए सहयोग करेंगे।"

साम्यवादी नेता का मत

साम्यवादी नेता श्री ए० के० गोपालन ने अपने भाषण में कहा—"यह अत्यन्त आवश्यक है कि चुनावो में पवित्रता और निष्पक्षता रहे। कही ऐसा न हो कि चुनावों मे वोट पाने की गरज से उम्मीदवार इन प्रतिज्ञाओं को ले लें। जो प्रतिज्ञायें ले, वह निभाये भी। रुपयो के लिये वोट देना सचमुच एक कलंक है। ये नियम चुनावो में पवित्रता लाने वाले

हैं। यदि मैं अपनी पार्टी की ओर से चुनाव लड़ूँगा तो इन नियमों के पालन की प्रतिज्ञा करता हूँ। मेरी पार्टी मे यदि कोई विपरीत बात देखे तो मैं कहूँगा—वह हमे बताये, हम उसको रोकने का प्रयत्न करेंगे। मेरा एक सुझाव भी है कि जिस तरह उम्मीदवार व मतदाता के लिये प्रतिज्ञायें रखी गई हैं वैसे ही चुनाव विभाग के अधिकारियो के लिये भी नियम रखे जावें कि वे भी सचाई और नैतिकता का व्यवहार रखेंगे।"

आचार्य कृपलानी का अभिमत

प्रजा समाजवादी नेता आचार्य जे० बी० कृपलानी ने अपने भाषण मे कहा—"जहाँ उम्मीदवार व मतदाता के लिये नियम रखे गये हैं, एक्जीक्यूटिव कमेटी के मेम्बरों के लिये भी नियम रखे जायें, क्योंकि टिकट तो वे ही देने वाले हैं, उसी तरह मंत्रियो के लिये भी नियम रखे जाने चाहियें कि वे सरकारी साधनो का चुनाव मे उपयोग न करें।"

अ० भा० अणुव्रत समिति के मंत्री श्री जयचन्दलाल दफ्तरी ने समागत नेताओं एवं अन्य महानुभावों के प्रति आभार प्रदर्शन किया। श्री छगनलाल शास्त्री ने आज के कार्यक्रम पर प्रकाश डाला।

चुनाव शुद्धि नियम

चुनाव संबंधी नियम परिवर्तन-परिवर्धन आदि के पश्चात् निम्नांकित रूप मे देश में सर्वत्र प्रसारित हुए—

उम्मीदवारो के लिये नियम

(१) रुपये-पैसे व अन्य अवैध प्रलोभन देकर मत ग्रहण नहीं करूँगा।

(२) किसी दल व उम्मीदवार के प्रति मिथ्या, अश्लील व भद्दा प्रचार नहीं करूँगा।

(३) धमकी व अन्य हिंसात्मक उपाय से किसी को मतदान के लिये प्रभावित नहीं करूँगा।

(४) मतगणना में पर्चियाँ हेर-फेर करवाने का प्रयत्न नहीं करूँगा।

(५) प्रतिपक्षी उम्मीदवार और उसके मतदाताओं को प्रलोभन व भय आदि दिखाकर तथा शराब आदि पिलाकर तटस्थ करने का प्रयत्न नहीं करूँगा।

(६) दूसरे उम्मीदवार या दल से अर्थ प्राप्त करने के लिये उम्मीदवार नहीं बनूँगा।

(७) सेवा-भाव से रहित केवल व्यवसाय बुद्धि से उम्मीदवार नहीं बनूँगा।

(८) अनुचित व अवैध उपायों से पार्टी टिकिट लेने का प्रयत्न नहीं करूँगा।

(९) अपने अभिकर्ता (एजेन्ट), समर्थक और कार्यकर्ता को इन व्रतो की भावनाओ का उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दूंगा।

मतदाताओं के लिये नियम

(१) रुपये-पैसे आदि लेकर या लेने का ठहराव कर मतदान नहीं करूँगा।

(२) किसी उम्मीदवार या दल को झूठा भरोसा नहीं दूँगा।

(३) जाली नाम से मतदान नहीं करूँगा।

समर्थकों के लिये नियम

(१) अपने पक्ष या विपक्ष के किसी उम्मीदवार का असत्य प्रचार नहीं करूँगा।

(२) अनैतिक उपक्रमो से दूसरे की सभा को भग करने का प्रयत्न नहीं करूँगा।

(३) उम्मीदवार सबंधी सारे नियमो का पालन करूँगा।

चुनाव-अधिकारियों के लिये नियम

(१) अपने कर्तव्य-पालन मे पक्षपात, प्रलोभन व अन्याय को प्रश्रय नहीं दूँगा।

सत्तारूढ उम्मीदवारों के लिये नियम

(१) राजकीय साधनों तथा अधिकारों का अवैध उपयोग नहीं करूंगा।

आयोजन (१७)

संस्कृति का रूप

२८ दिसम्बर १९५६ को सायंकालीन प्रार्थना के बाद सामूहिक ध्यान का कार्यक्रम रखा गया था। आचार्य प्रवर ने कहा—"आंख मूंद लेना ही ध्यान नहीं है। ध्यान में आत्म-शोधन के लिए चिन्तन होना चाहिये। प्रत्येक को यह सोचना जरूरी है कि समूचे दिन और रात में किसी के साथ प्रतिकूल व्यवहार तो नहीं किया। यदि भूल हुई है, तो उसका प्रायश्चित्त किया या नहीं। उसके साथ साथ आगे उन भूलो को न दुहराने की प्रतिज्ञा या दृढ़ संकल्प भी करना चाहिये। यही यहाँ अपेक्षित है।"

ध्यान का कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ। साधु सब बैठे ही थे। आचार्य श्री ने कहा—"पाँच मिनट का समय दिया जाता है। सब यह सोचें और मुझे बतायें कि संस्कृति क्या है ?" आदेश पाकर सब सोचने लग गये। बारी बारी से एक एक से आचार्य श्री ने पूछना आरम्भ किया। तब सब ने अपने अपने विचार बताये। वे संक्षेप में इस प्रकार हैं :—

१—जीने की कला संस्कृति है।

२—जीवन की आनन्दानुभूति संस्कृति है।

३—विशुद्ध आचार परम्परा संस्कृति है।

४—रूढिगत परम्पराएँ संस्कृति हैं।

५—आत्म-शुद्धि के विचार संस्कृति हैं।

जो विद्वान् आचार्य श्री से वार्तालाप करने आये थे, उन्होंने चर्चा में रस लिया और अपने विचार भी व्यक्त किये। विद्वानों के अनुरोध पर दूसरे दिन भी इस विषय पर चर्चा करने का निश्चय किया गया। दूसरे दिन भी अनेक परिभाषाएँ सामने आईं। आचार्य प्रवर ने विषय को स्पष्ट करते हुए कहा—"यह विषय बड़ा जटिल है। अनेक परिभाषायें की गईं, फिर भी समाधान नहीं हो सका। और विचार किया जाना चाहिये।"

आयोजन (१८

कार्यकर्ताओं का दायित्व

आचार्य प्रवर २९ दिसम्बर १९५६ को सब्जीमण्डी से नया बाजार होकर नई दिल्ली पधारे। 'बारा खंभा रोड' पर विराजना हुआ। दोपहर में श्री एन. उपाध्याय आचार्य श्री के दर्शन करने आये।

आचार्य श्री अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महामन्त्री श्री श्रीमन्नारायण जी अग्रवाल के घर पधारे। वहाँ उनके साथ अत्यन्त आत्मीयता से बातचीत हुई। चुनाव के विषय में उन्होंने कहा—"अब की बार काँग्रेस के अधिवेशन पर जिक्र आया तो मैं अवश्य इसकी चर्चा करूँगा। श्रीमती सुचेता कृपलानी भी वहीं आगईं। लगभग १ घंटे तक अनेक विषयों पर बातें हुईं। उनके आग्रह पर आचार्य श्री ने यहाँ थोड़ी गोचरी भी की।

संसत् सदस्य श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के घर

श्री श्रीमन्नारायण जी के घर से लौटते वक्त नवीन जी का घर बीच में आ गया। उनके आग्रह पर थोड़ी देर आचार्य श्री वहाँ भी विराजे। कई प्रश्नोत्तर भी हुए। कविताएँ भी सुनाईं।

उसके बाद "भारत सेवक समाज" के केन्द्रीय कार्यालय में उसके कार्यकर्ताओं के बीच प्रवचन करने पधारे। मन्त्री श्री चाँदीवाला जी ने आचार्य श्री व साथ मे आये साधुओं का हार्दिक स्वागत किया।

भारत सेवक समाज में

भारत सेवक समाज दिल्ली की ओर से दोपहर में ३ बजे आचार्य श्री के सान्निध्य में एक सभा का आयोजन रखा गया, जिसमें भारत सेवक समाज के विभिन्न क्षेत्रीय संयोजकों तथा प्रमुख कार्यकर्ताओं ने भाग लिया।

प्रारम्भ में श्री छगनलाल शास्त्री ने अणुव्रत आन्दोलन की गतिविधि और चुनावों में अनैतिकता निवारण के लिये आचार्य श्री की ओर से प्रस्तुत किये गये कार्यक्रम पर प्रकाश डाला।

पश्चात् भारत सेवक समाज के अग्रणी श्री ब्रज कृष्ण चाँदीवाला ने कार्यकर्ताओं की ओर से आचार्य श्री का स्वागत किया। आचार्य श्री ने कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करते हुये कहा—

"कार्यकर्ताओं पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है, बहुत बड़ा उद्देश्य उनके सामने है। इसके लिये सबसे पहले उन्हें अपना जीवन बनाना होगा। जब तक जीवन में सत्यनिष्ठा, विश्वास, सादगी और संयतवृत्ति नहीं होगी, तब तक दूसरों को उनसे क्या प्रेरणा मिल सकेगी? आरामतलबी और सुविधावाद कार्यकर्ता के मार्ग मे अवरोध पैदा करने वाले दुस्तर रोड़े हैं जिनसे कार्यकर्ताओं को बचना है। कार्यकर्ताओं को यह अच्छी तरह समझ लेना है कि सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य चरित्रनिर्माण का है। देश के लोगों का चरित्र जब तक समुन्नत नहीं होगा, देश तब तक ऊँचा

नही उठ सकेगा। कितने खेद और आश्चर्य का विषय है, जहाँ एक ओर बड़ी-बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ को सुलझाने मे मानव चिंतित दीखता है, दूसरी ओर उसका अपना जीवन किधर जा रहा है, इसका उसे भान तक नहीं। दीपक तले अँधेरा—कैसी विचित्र बात है।

कार्यकर्ताओ से एक विशेष बात मै और कहना चाहूँगा—पद, प्रतिष्ठा, और नाम की भावना उन में न हो। जहाँ ये भावनाएँ आ जाती हैं, वहाँ कार्यकर्ताओं का जीवन सुस्थिर और आदर्श नहीं रह पाता। उसमे गिरावट आ जाती है। कार्यकर्ता उन बुराइयों से बचें।"

आचार्य श्री के प्रवचन के पश्चात् श्री व्रजकृष्ण चाँदीवाला ने चुनावों से अनैतिकता और अनौचित्य निवारण के लिये आचार्य श्री-द्वारा उद्घोषित नियमो को कार्यकर्ताओं को पढ़कर सुनाया और कहा कि "भारत सेवक समाज की ओर से इन नियमो को हम प्रसारित करेंगे। अपनी शाखाओ मे इन्हें भेजेंगे, जिससे विभिन्न स्थानो पर लोगो को इनसे अवगत कराया जा सके।"

अन्त मे अ० भा० अणुव्रत समिति के मन्त्री श्री जयचंद लाल दफ्तरी ने चरित्र-विकास के लक्ष्य को लेकर विभिन्न संस्थाओ के कार्यकर्ताओ से पारस्परिक समन्वय से काम करने की अपील की तथा इसके लिये अपने व अपने साथियो के सहयोग की भावना प्रकट की।

मैत्री दिवस का विराट समारोह

विश्वशान्ति की ओर एक ठोस कदम

आचार्य श्री के दिल्ली पधारने का लाभ उठाते हुये जो विविध आयोजन किये गये उनमे सब से अधिक महत्त्वपूर्ण आयोजन की व्यवस्था राजधानी के प्रमुख सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक स्थल पर की गयी। विश्ववंद्य महात्मा गांधी की समाधि के कारण राजघाट को सहज ही में अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त हो गया है और देशविदेश से आने वाले प्रायः सभी यात्री तथा राजनीतिज्ञ व कूटनीतिज्ञ उस समाधि के दर्शन करके अपनी पुष्पाञ्जलि अर्पित कर अपने को धन्य मानते हैं। ऐसे पुनीत स्थल पर आज के अन्तर्राष्ट्रीय आयोजन की विशेष व्यवस्था की गयी। यह आयोजन था "मैत्री दिवस" का, जिसका प्रयोजन है वर्ष मे एक बार अपनी समस्त ज्ञात-अज्ञात भूलो तथा अपराधो के लिये एक-दूसरे से क्षमा माँग कर विश्व मैत्री के लिए वातावरण को पवित्र एवं अनुकूल बनाना। सम्भवतः हमारे देश मे महात्मा गाधी की हत्या से अधिक बड़ा कोई दूसरा अपराध मानव समाज के प्रति नहीं किया गया है। इसी कारण इस आयोजन की व्यवस्था राजघाट पर गान्धी जी की समाधि पर की गयी थी। आचार्य श्री की यह मान्यता है कि इस प्रकार मानव अपनी भूलों एवं अपराधो का परिमार्जन करते हुए विश्वशान्ति की स्थापना मे बहुत बडा सहयोग दे सकता है और विश्व की एक महान समस्या के हल करने में अपने कर्तव्य का यत्किञ्चित् पालन कर सकता है। विश्वशान्ति के प्रति उसकी सच्चाई और ईमानदारी का यह एक प्रबल प्रमाण हो सकता है। आचार्य श्री ने राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री तथा अन्य नेताओ एवं विदेशी राजनीतिज्ञों के साथ भी इस सम्बन्ध

मे जो चर्चा वार्ता की थी उसी का परिणाम यह शुभ मंगलमय आयोजन था और राष्ट्रपति ने इसका उद्घाटन करने के लिए अपनी उदार सहमति प्रदान की थी।

३० दिसम्बर १९५६ प्रातः बाराखंभा रोड से चलकर आचार्य श्री दरियागज मे श्री प्रभुदयाल जी डावड़ी वालो के मकान पर थोड़ी देर विराजे। वहाँ से महात्मा गांधी की समाधि राजघाट पर पधारे। फिनलैण्ड के राजदूत मोसिय ह्यूगो वालवन्ना ने वहाँ आचार्य श्री के दर्शन किये। उनसे लोगो ने "मैत्री-दिवस" के उपलक्ष्य में बोलने के लिये कहा। वे सहमत न हुए। परन्तु आचार्य श्री से समारोह की पूरी जानकारी पाकर बोलने के लिए सहमत हो गये।

प्रधानमन्त्री श्री नेहरू ने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी और कृष्णा बहिन को विशेष रूप से आयोजन मे सम्मिलित होने के लिये भेजा था। उन्होने आचार्य श्री से कुछ बातचीत की। थोड़ी ही देर मे राष्ट्रपति जी पधारे। आचार्य श्री व राष्ट्रपति जी साथ-साथ सभास्थल पर आकर विराजे।

करीब ढाई-तीन हजार की उपस्थिति थी। अत्यन्त मनोरम वातावरण में कुछ आप्त वाक्यों का पाठ करने के बाद आचार्य श्री ने अपना स्फूर्तिप्रद भाषण प्रारम्भ किया।

विश्वव्यापी आतंक और उसका उपाय

"राष्ट्रपति जी, भाइयो और बहिनो!

आज हम सब यहाँ मैत्री-दिवस मनाने के लिये एकत्रित हुये हैं। मैत्री की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं, सभी लोग इससे परिचित हैं। मित्र के नाम मे ही स्वयं कितना प्यार भरा हुआ है और मित्र के साथ बात कर हर मनुष्य जैसे स्वर्गीय सुख का अनुभव करता है, वैसा शायद और बातो में कम करता होगा। वास्तव में मैत्री कितनी सुन्दर होती है। पर आज लोग इसे भूलते जा रहे हैं। अतः आवश्यक है कि

हम उन्हें पुनः सचेत करें। इसीलिये आज मैत्री-दिवस समारोह रखा गया है।

आज दुनिया की स्थिति के बारे में कुछ भी कहना आवश्यक नहीं है क्योंकि नये-नये वैज्ञानिक साधनों के कारण संसार के एक क्षेत्र की बात दूसरे क्षेत्र में आसानी से अति शीघ्रतया जानी जा सकती है अतः सभी लोग स्थिति से परिचित हैं ही।

आज लोगो के दिमाग में दो बातें है। पहली—अपने जीवन की सुरक्षा का भय और दूसरी भविष्य की आशंका। इसी कारण आज मनुष्य आतंकित है। राष्ट्रों में भी एक दूसरे के प्रति भय का वातावरण फैला हुआ है।

पंडित नेहरू के विचारो से हमने जाना कि अन्तर्राष्ट्रीय तनाव अब कुछ कम है। परन्तु स्थिति अब भी विषम बनी हुई है। इसका मूल कारण क्या है? इसका मूल है—भय। भय का भूत जब मनुष्य के सिर पर सवार हो जाता है तो मनुष्य अपने को भूल जाता है। उससे उसमें अविश्वास बढ़ता है। उसी के गर्भ में से शीतयुद्ध पैदा होता है और आगे चलकर वह "गर्म युद्ध" के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। विचारों का युद्ध साक्षात् युद्ध का रूप ले लेता है।

मनुष्य युद्ध के परिणामों से परिचित है। अतः वह उससे भयभीत है। कोई यह नहीं चाहता कि युद्ध हो। अतः कई लोग इस विषय पर अपनी अपनी दृष्टि से सोचते हैं, पर मिलता कुछ नहीं। लोग सही कारण सोच नहीं पाते। इसका कारण भी भय है।

मैंने भी इस पर विचार करने का प्रयास किया है, मुझे तो यही लगा कि उसका मूल कारण केवल भय ही है। शस्त्रास्त्रों की तैयारी का मूल कारण भी भय ही है। यदि मनुष्य भयहीन हो तो शस्त्रास्त्रों की तैयारी का कोई प्रश्न पैदा ही नहीं होता। आज सब लोग शांति की बात करते हैं। पर शांति की इन बातो मे भी परस्पर कटाक्ष और आक्षेप होते हैं। यह सर्वथा अवांछनीय है। मैंने सोचा—यह क्या है?

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह भय संसार मे अथवा आम जनता में नहीं है, केवल कुछ व्यक्तियो में है, जो नेता हैं और जिन पर संसार के नीति निर्धारण अथवा उसके निर्माण की जिम्मेवारी है। आम जनता भय को नहीं जानती। वह अपने वर्तमान सुख पर ज्यादा सोचती है। पर उन नेताओ के चिंतन से भय पैदा होता है और बढ़े हुये वैज्ञानिक साधनो के द्वारा उसका प्रचार होने मे देरी नहीं लगती।

भय से भय बढता है, वैर से वैर बढ़ता है। अतः अवैर-अहिंसा के द्वारा ही वैर-हिंसा खत्म हो सकती है। सत्य और अहिंसा, जो भारतीय संस्कृति का मूल है और कोई भी धर्म जिसके बिना नही चल सकता—शांति का रास्ता है। मैं मानता हूँ, सब धर्म एक नहीं हो सकते, सब राजनीति भी एक नहीं हो सकती। अतएव पंचशील के सिद्धांत सामने आये और सहअस्तित्व की भावना का उदय हुआ। पर यह सब तभी कामयाब हो सकता है, जबकि इसकी नींव मे सत्य और अहिंसा हो। जिस प्रकार बिना नींव के मकान नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार बिना भूमिका के सहअस्तित्व भी नहीं ठहर सकता। प्रश्न यह हो सकता है कि वह भूमिका क्या है ? मेरी सम्मति में वह भूमिका है :

सद्भावना, सहिष्णुता और समन्वय।

इन तीन बातों के आधार पर अभय की बड़ी इमारत खड़ी की जा सकती है। पर इन्हें भी कैसे पैदा किया जाए। यद्यपि सहिष्णुता से सद्भावना, सद्भावना से समन्वय और उससे अभय, यह शांति का मार्ग है। इन्हें लाने के लिये और भी बड़े बड़े तरीके हो सकते हैं पर वह सब बड़े आदमियो का काम है। हम अकिंचन और पैदल चलने वाले इसे कैसे सोचें ? उन बड़े-बड़े सोचने वाले आदमियो मे राष्ट्रपति भी एक हैं, जो अभी हमारे बीच मे उपस्थित हैं। हमने सोचा—बड़ी-बड़ी नहीं, छोटी योजना ही अपने हाथ मे लें, जिससे आज के भय भ्रांत संसार का कुछ पथ-प्रदर्शन हो सके। खूब घूमने और अनेको विचारको से बात करने के बाद आखिर एक रास्ता हमे सूझ पड़ा कि कम से कम हम लोगों में इसके

सम्बन्ध में एक भावना को पैदा करें और उसी भावना को लोगों के सामने रखने के लिये 'मैत्रीदिवस' का आयोजन किया जाए। मै यह मानता हूँ कि यह कोई रामबाण दवा नहीं है परन्तु एक रास्ता जरूर है। इसके लिये हम एक दिन तय करें कि जिस दिन मनुष्य कुछ याद करे और कुछ भूले भी। होना तो यह चाहिये कि मनुष्य अपनी प्रतिदिन की दिनचर्या को देखे। जिस प्रकार एक व्यापारी रोज अपना खाता मिलाता है और साधु रोज अपनी भूलो के लिये प्रतिक्रमण करते हैं, उसी प्रकार हर एक अपने प्रतिदिन के जीवन की आलोचना करे। लोगो के लिये कम से कम एक दिन तो ऐसा हो, जिस पर वे वर्ष भर मे हुई अपनी भूलो की क्षमा दूसरो से माँगें और दूसरो को अपनी ओर से क्षमा करें।

मैत्री बड़े सुख का कारण है पर वह तब तक नहीं हो सकती, जब तक कि मनुष्य विगत की अपनी भूलो को भूल जाने के लिये विनम्र और क्षमाशील नही हो जाता, साथ साथ मे दूसरो को स्वयं भूलने का प्रयास नहीं करता।

यह कार्यक्रम ऊपर और नीचे दोनों ओर से होना आवश्यक है। (ऊपर याने बड़े लोगों से और नीचे यानी सामान्य लोगो से) यद्यपि मेरी दृष्टि मे मनुष्य ऊँचा और नीचा कोई नहीं होता, पर आम दृष्टि से यह दोनो ओर से होना आवश्यक है। ऊँचे लोगों के लिये तो यह और भी जरूरी है क्योंकि ऊपर का पानी स्वयं नीचे आता है। बड़े लोगों में यदि क्षमा की भावना पैदा होगी तो छोटे लोग तो उनका अनुकरण अवश्य करेंगे। अतः मैं दोनो ही से कहूँगा कि वे इस बात पर गहराई से सोचें। इसके लिये तीन बातें जरूरी है—

(१) प्रत्येक मनुष्य अपनी ओर से सारे प्राणियो को अभय दान करे।

(२) अपनी भूलों के लिये दूसरो से क्षमा याचना करे।

(३) दूसरो की भूलों को स्वयं क्षमा करे।

मैं मानता हूँ, यह कोई बड़ी बात नहीं है, एक छोटी सी बात है।

पर हमे आदि में छोटे काम से शुरू करना चाहिये। आगे चलकर वह स्वयं वडा वन जाता है। अतः आज हम इसका प्रयोग करें। यह छोटा प्रारभ भी आगे वडा रूप ले सकता है।

आज के लिये दो बातें

अभी अभी राज्य पुनर्गठन को लेकर देश मे जो कटुता फैली, वह किसी से छिपी नहीं है। सामने चुनाव का प्रश्न आ रहा है। उसमें भी कटुता की सभावना हो सकती है। अतः भूत और भविष्य के बीच आज हम मैत्री की ऐसी भावना जगायें, जिससे एक सुन्दर वातावरण बन जाय।

अणुव्रत आंदोलन के द्वारा हम जो कुछ कर रहे हैं, उससे इन तीनों वातो के प्रसार का अच्छा मौका मिलता है।"

विश्वमैत्री का महत्त्व

राष्ट्रपति ने अपने भाषण में कहा—

"आचार्य जी ! भाइयो तथा बहिनों !

सबसे पहले मैं आपको इस मंगल दिवस के आयोजन के लिये वधाई देना चाहता हूँ।

मैं मानता हूँ कि हमारे देश में आज अधिक से अधिक जिस चीज की आवश्यकता है, वह है मैत्री। अतः उसके लिये जो कुछ भी किया जा सके, वह स्वागत करने योग्य है। मै सोचता था कि आपके पत्र-पत्रिकाओ मे जो 'फ्रैटरनिटी' शब्द का प्रयोग हुआ है और दूसरी भाषा मे जिसको हमने मैत्री कहा है, इसमे कोई भेद है या दोनों एक ही हैं। फ्रैटरनिटी का अर्थ है—भ्रातृभाव। वह जन्मजात होता है। क्योंकि एक मनुष्य जन्म से ही दूसरे मनुष्य का भाई है। अतः उनके बीच में जन्म से ही एक दूसरे के साथ भ्रातृभाव होना चाहिये और होता भी है। पर हम सोचते है कि कई बार भाई-भाई मे भी इतना वैमनस्य हो जाता है कि उसका कोई ठिकाना नही रहता। उनके आपस में मिलने को

मैत्रीभाव कहते हैं। अतः हम देखते हैं कि मैत्रीभाव जन्मजात नहीं होता। उसे स्वेच्छापूर्वक लाया जा सकता है। एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के प्रति, एक समाज का दूसरे समाज के प्रति और एक प्राणी का दूसरे प्राणी के प्रति। अतः यह भ्रातृभाव से ज्यादा है और स्वेच्छापूर्वक होने से जब तक कायम रखना चाहें, रखा जा सकता है। जैसे इसका जन्म स्वेच्छा से होता है वैसे ही अंत भी। अतएव यह आवश्यक हो जाता है कि मैत्रीभाव को केवल जन्म ही नहीं पोषण भी दिया जाय। इस के लिये निरंतर प्रयत्न और प्रयास किया जाना चाहिये। आज के कार्यक्रम का महत्त्व स्वयं स्पष्ट है और इसीलिये मैंने इसका स्वागत किया। आशा करता हूँ कि भविष्य मे भी इसे जारी रखा जाए और अधिक बढ़ाया जाये।

आचार्य श्री ने यह ठीक ही कहा कि मनुष्य अपने हृदय में ही भय को पैदा करता और बढाता है। आज जो शस्त्रास्त्र बनाये जा रहे हैं, उनका भी यही कारण है। एक राष्ट्र सोचता है, मेरे पास दूसरे से कम शस्त्र हैं। अतः वह उनके बढ़ाने के प्रयास मे लग जाता है। फिर वह उससे कुछ आगे बढ़ना चाहता है और बढ़ जाता है। इससे एक बात और पैदा होती है कि फिर वह किसी दूसरे को बड़ा देखना नहीं चाहता। इस प्रकार एक दूसरे को दबाने के लिये अनेक राष्ट्र खड़े हो जाते हैं और अशाति पैदा कर देते हैं। इसी कारण जो प्रयत्न आज चल रहे हैं, उनसे लाभ नहीं होता। हमारे देश मे यह कहावत प्रचलित है, कि कीचड़ को कीचड़ से नहीं धोया जा सकता। उसे धोने के लिये तो जल की आवश्यकता होती है। हिंसा को हिंसा से नहीं, अहिंसा से मिटाया जा सकता है। हिंसा को हिंसा से मिटाने की कोशिश की गई तो वह दूसरा कदम भी हिंसा ही हो जाता है। फिर उसे मिटाने के लिये हिंसा की गई तो तीसरा कदम भी हिंसा हो जायगा। इस प्रकार हिंसा का कोई अंत नहीं हो सकता। अगर उसे पहले ही कदम मे रोक दिया जाय तो वहीं पर उसकी जड़ खत्म हो सकती है। इस प्रकार मैत्री भावना हिंसा को

जड से निकाल सकती है। इतिहास मे हम इसके एक नहीं, अनेक उदाहरण देख सकते हैं।

उन्नति एक-मुखी नहीं हो सकती। वह चतुर्मुखी होती है। हमे विद्या और संपत्ति सृजन में ही नहीं, भावना में भी उन्नति करनी चाहिये। आज भारत के लिये एक नवयुग है, क्रांति का युग है, जिसमें हमे हर प्रकार की उन्नति करनी है। उसमे हमारी सद्भावना सबसे अधिक जरूरी है। उसके बिना और किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती। विष को बोकर हम उससे विष ही पायेंगे, अतः हमें उसे जड़ से ही सुधारना है, जिससे आगे हमें सुखद फल मिले।

यह हमारे देश के सौभाग्य के बात है कि धर्माचार्यों के मन में यह भावना पैदा हुई है। सम्प्रदाय से उठकर वे समस्त मानव समाज के लिये काम करते हैं। वैसे वे जो कुछ करे सो करें। पर उसकी जड़ में सद्भावना रखे। यदि यह प्रयास सफल हो गया तो सब अन्य प्रयास भी सफल हो जायेंगे।

आपके आंदोलन का मै हमेशा से समर्थक रहा हूँ और इसके लिये आप अगर मुझे कोई पद देना चाहे, तो मैं समर्थक का पद लेना चाहूँगा।

हमारी पुरानी परंपरा है कि यहाँ देश और विदेश से अनेको मत-धर्म आये। उन्हें देश भर के लोगो ने एक करके रखा। भाषा की दृष्टि से भी एक भारत मे ही उतनी भाषाएँ बोली जाती हैं, जितनी कि सारे यूरोप मे। धर्म के सबंध में भी संसार में जितने धर्म हैं, उनके अनुयायी लाखो की संख्या मे हमारे यहां रहते हैं। इसी प्रकार रहन-सहन और पहनावे की दृष्टि से भी अनेक प्रकार के लोग हमारे देश में बसते हैं। इन सबसे मिलकर हमारी संस्कृति बनी है। सहिष्णुता को हमने हमेशा आदर्श माना है, वह केवल प्रसारों में ही नहीं जीवन मे भी। इसी का फल है कि हमारे देश मे जितना वैचित्र्य है, उतना और किसी दूसरे देश में नहीं है। हिन्दुओं की विधि में केवल इतना नहीं है कि उस

किसी विधान विशेष को ही मान्यता दी है। एक प्रांत और एक जाति मे ही नहीं, एक खानदान मे भी अलग-अलग रिवाज हैं और हिन्दू विधि ने उन सबको मान्यता दी है। यह सहिष्णुता के बिना कैसे संभव हो सकता था। अतः हमारी यह परंपरा आपस में घुल-मिल गई है। आज तो इसके बारे में हम जानने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते। इसीलिये हमारा संसार के प्रति उत्तरदायित्व अधिक हो जाता है कि हम अपनी भावना सब लोगो मे पहुँचाएँ। यह हमारी परंपरा के रूप मे चली आई है। प्रश्न यह है कि आज हम इसको आधुनिक जामा कैसे पहनाएं, जिससे मानव समाज इसे समझे और अपनाए।

महात्मा जी ने यही काम किया था। उन्होंने प्राचीन चीजो को नई भाषा मे रखा। हम लोगों ने, जो पश्चिमी रंग मे रंग गये थे— उसका महत्व समझा और विदेशों मे तो इसमे कई लोग हम से भी अधिक रस लेते हैं। आज उसी बात को जागृत करने का आचार्य जी ने प्रयत्न किया है और कर रहे हैं। मै इस प्रयत्न का स्वागत करता हूँ।

मैत्रीदिन के पीछे उसे परिपुष्ट करने का और भी तौर-तरीका सोचा जाना चाहिये। मुझे विश्वास और आशा है कि इस काम मे अपने को सभी प्रकार के लोगो की सद्भावना मिलेगी क्योकि यह दिल की बात है, जो आज कुछ ढक गई है पर बहुत जल्दी ही उसका ढका जाना दूर हो सकता है और वह बहुत प्रकाश देगी। अन्त मे मैं यही आशा करता हूँ कि आपका यह प्रयास सफल हो।"

इसके बाद फिनलैण्ड के राजदूत मोसिय ह्यूगो वालवन्ना तथा रामकृष्ण मिशन दिल्ली के स्वामी रंगनाथानंद जी ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये। अन्त मे अणुव्रत समिति के मंत्री श्री जयचंद लाल दफ्तरी ने सब को धन्यवाद दिया और बड़े ही उल्लासित वातावरण में आयोजन सानन्द सम्पन्न हुआ।

आयोजन सम्पन्न होने के बाद वहाँ से आचार्य श्री हैदरकुली मे लाला द्वारकादास भगलराम के यहाँ पधारे। आहार के बाद कई घरो में

पधारना हुआ। करीबन ५०० सीढ़ियाँ उतरनी चढ़नी पड़ी। वहाँ से सब्जीमण्डी पधारे।

आयोजन (२०)

संस्कृत गोष्ठी

आचार्य श्री के अभिनन्दन में तारीख १ जनवरी सन् १९५७ को अपरान्ह मे दो बजे अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन की ओर से हिन्दी-विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष डा० नरेन्द्र नाथ चौधरी एम० ए० डी० लिट की अध्यक्षता मे कठोतिया भवन मे एक सभा का आयोजन किया गया, जिसमे दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत प्रोफेसरो, संस्कृत विद्यालयो एवं पाठशालाओ के पंडितों, छात्रो, राजधानी के अन्यान्य विद्वानो, हिन्दी-साहित्यकारो तथा साहित्यानुरागी नागरिकों ने भाग लिया।

अ० भा० सं० सा० सम्मेलन के मंत्री डा० इन्द्रचन्द्र शास्त्री एम० ए०, पी० एच० डी० ने सम्मेलन की ओर से आचार्य श्री के सम्मान में निम्नांकित अभिनन्दन पत्र पढा :—

अणुव्रतान्दोलन सम्प्रवर्तकानां विद्यात्याग तपोनिधीना मत्यन्तोदार चेतसां परमपावन जैनाचार्यप्रवर पूज्यवर श्री तुलसीदास गणि महाभागानां सेवायां सादरं समर्पितम्।

अभिनन्दन पत्रम्

पूज्यचरणाः,

सुरसरस्वतीसमाराधन संलग्नचेतसो वयमद्य तत्रभवतां श्रीमता-

मभिनंदनं विदधाना श्रमन्दमानंद सन्दोहमनुविन्दामः। आर्यावर्तमिम निखिलभूमण्डलमौलिमंडनतामापादयन्त्यस्याध्यात्मिकी परम्परा भवादृशैरेव तपोराशिभिरहर्दिवमुपचीयत इति न कस्याप्यविदितं। आणववारुणाद्यस्त्रजालसंजातमहाप्रयलातंक शंके विनाशजलधराक्रांत इवास्मिन् धरणीतले समीरायते श्रीमतां वाणी। एकतोऽणुव्रतान्दोलन समुत्तोलनेन संयमि जीवनम् अन्यतश्च मैत्रीभावनाप्रसारणेन परस्परोपग्रहमुपदिशन्ती श्रीमतामुपदेशपयस्विनी द्वेषदावानलशान्तये धरणीतलमाप्लावयन्तीव दरीदृश्यते।

मुनिवर्याः

श्रीमतां कठोरं संयमं, निवृत्तिप्रधानानि व्रतानि प्रतिपदं निग्रहन्तीं च दिनचर्यामालोकमालोकं प्राचीनभारतीय संस्कृते रादर्शं प्रत्यक्षमिव समालोकमाना भृशं गौरवमनुभवाम.। सन्यासाश्रम स्थितेनाऽपि लोकोद्धार परायणेन मनस्विना किंक तुं शक्यत इति भवता महान् आदर्श उपस्थितः। दर्शितंच श्रीमंता यल्लोकसेवा निवृत्त्योर्नास्ति कश्चनविरोधः। यदि भारतीय सन्यासिवर्गः श्रीमतां चरण चिन्हानुवर्तेत, भारतं पुनरपि निखिललोकमूर्धन्यतां समासादयेत् इति नास्ति संदेहलवोऽपि।

विद्यानिधयः,

भवादृशैर्मन्त्रद्रष्टृभिर्जीवनस्य यानि रहस्यानि साक्षात्कृतानि दीर्घकालमननेन यानि तत्वानि सदासादितानि, 'सत्यम् शिवं सुदरम्' स्वरूपाया भारतीयसंस्कृतेः प्रसाराय ये य उपाया समालम्बिताः, आर्याणां धर्मतरौ यानि यानि सुरभीणि पुष्पाणि विकासितानि मधुराणि च फलानि समुद्भावितानि, तानि सर्वाणि गीर्वाणवाण्या सन्निवद्धानीव रराजन्ते। सभ्यतायाः समुन्मेषकालादारभ्य अद्यावधि सर्वेषा संस्कृति समुत्थापकानां स्वरोऽनयैव तन्त्र्या जेगीयमानं श्रूयते। भारतस्य सास्कृतिक समुत्थानेन समेहमपि सुख समुच्छ्वसेतेति स्वाभाविकम्। तदर्थं भवादृशा ज्योतिर्धराणां कृपाकटाक्ष मपेक्षंते। श्रीमतां चरण चंचरीकाः—

अखिलभारतीय सस्कृत साहित्य सम्मेलन सदस्या·

ऋषियों का मार्ग

आचार्य प्रवर ने उत्तर मे बोलते हुए कहा—

भारतीय संस्कृति मे वही मार्ग अनुकरणीय है जिस पर ऋषि चले, आत्मद्रष्टाओ के पद-चिन्ह जिस पर पड़े। वह मार्ग है आत्मचेतना और अन्तर जागृति का। यह वह सरणि है, जिस पर भारतीय परम्परा का इतिहास अवस्थित है। चाहे कैसा भी युग क्यों न हो, इस मूल परम्परा का सर्वथा विलोप भारतीयों में हो नहीं सकता। उस पर आवरण पड़ सकता है जैसा कि इस समय पड़ रहा है। इसलिए मैं विद्वानो से कहूँगा कि भारत की अन्तर जागृतिमयी संस्कृति के परिवर्द्धन और परिपोषण के लिये कृत-प्रयत्न होते हुए वे राष्ट्र की अध्यात्म परम्परा को आगे बढ़ाएँ, अपना निजी जीवन उस पर ढालें और औरों को भी इस ओर प्रेरित करें। आप लोगो ने मेरा अभिनन्दन किया। आप जानते हैं, मैं एक अकिंचन व्यक्ति हूँ, पादचारी हूँ, वैभव विलास से सर्वथा शून्य। मेरा कैसा अभिनन्दन है ? मै चाहूँगा कि जन जागृति के जो उदात्त विचार मैं देना चाहता हूँ, जिनको लेकर मैं चल रहा हूँ, उन्हें आप अपने जीवन में उतारें, औरों तक पहुँचाने मे सहयोगी बनें। इसको ही मै सच्चा अभिनन्दन मानूंगा।

साहित्य गोष्ठी का भी आयोजन किया गया था। मुनि श्री नथमल जी, श्री बुद्धमल जी तथा श्री नगराज जी ने उपस्थित विद्वानो द्वारा दिये गये विषयों और समस्याओं पर तत्काल संस्कृत में आशु कविताएँ की। मुनि श्री नथमल जी, पं० चारुदेव शास्त्री एम० ए० एम० ओ० एल०, प्रो० एम० कृष्णमूर्ति, डा० सत्यव्रत, व्याकरणाचार्य एम० ए० डी० लिट्, श्री छगनलाल शास्त्री काव्यतीर्थ, श्री कर्णदेव शास्त्री तथा आचार्य श्यामलाल शास्त्री ने संस्कृत में भाषण दिये।

मुनि श्री दुलीचन्द जी, श्री बुद्धमल जी, कविशिशु तथा बच्चन ने कविता पाठ किया।

साहित्य गोष्ठी

४ जनवरी १९५७ को ६ बजे आचार्य श्री के अभिनन्दन के निमित्त हिन्दी भवन की ओर से १९ बाराखम्भा रोड पर साहित्यकारों एवं कवियों की विशेष गोष्ठी का आयोजन किया गया । जीवन साहित्य के सम्पादक श्री यशपाल जैन ने अभिनन्दन भाषण दिया ।

मुनि श्री नथमल जी, श्री दुलीचन्द जी, श्री बुद्धमल जी, श्री नगराज जी, श्री सागरमल जी, श्री हर्षचन्द जी, श्री मानमल जी, श्री मनोहरलाल जी तथा श्री गोपीनाथ जी अमन, श्री ललित मोहन जोशी, श्री रमेशचन्द, श्री रामेश्वर अशात आदि कवियों ने अपनी कविताएँ प्रस्तुत कीं ।

आचार्य प्रवर ने कवियो एवं साहित्यकारो को उनके महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व से अवगत कराते हुए कहा कि—स्वयं अपने जीवन को आत्मनिर्माण में लगाते हुए जन-जन को अन्तर्मुख बनाने मे वे अपनी प्रतिभा और कल्पना को सत् प्रयुक्त करें । अणुव्रत आन्दोलन आत्मनिर्माण और अन्तर्मुखता का आन्दोलन है, जिस पर उन्हें मनन एवं अनुशीलन करना है ।

अन्त मे हिन्दी भवन की मंत्रिणी श्रीमती सत्यवती मलिक ने आभार प्रदर्शन करते हुए कहा—

मैं यह नहीं समझती थी कि आपके संत इतनी गंभीर एवं हृदयस्पर्शी कवितायें करते हैं । आपके संघ में साहित्य विकास का जो सर्वतोमुखी प्रयास चल रहा है, वह स्तुत्य है । मै उससे बहुत प्रभावित हुई ।

बिदाई समारोह

महत्वशील साधना

७ जनवरी १९५७ को आचार्य श्री दिल्ली से राजस्थान के लिए प्रस्थान करेंगे, इसलिये ६ जनवरी १९५७ की प्रातःकाल काठोतिया भवन मे सैकड़ो भाई बहिनो की उपस्थिति में बिदाई समारोह का आयोजन किया गया। सब के मुख पर खेद-मिश्रित प्रसन्नता दीख रही थी। प्रसन्नता इसलिये थी कि आचार्य प्रवर का दिल्ली प्रवास पूर्ण सफल रहा। देश में ही नहीं विदेशों मे भी नैतिक भावना का काफी प्रसार हुआ। खेद इसीलिये था कि आचार्य श्री उन्हें छोड चले जा रहे हैं। आचार्य श्री का बिदाई सन्देश सुनने के लिये सभी उत्सुक थे। आचार्य श्री ने कहा—

"मै उस साधक, साधना और प्रगति को अधिक महत्वशील मानता हूँ, जो केवल अकेला ही उत्थान-पथ पर न बढता हुआ औरों को भी उस विकास और प्रगति की राह पर बढने की प्रेरणा दे। यही कारण है कि अणुव्रत आंदोलन के रूप मे जन-जन के अन्तर जागरण का कार्य क्रम लिये मै पर्यटन कर रहा हूँ। मुझे प्रसन्नता है कि आंदोलन की भावना दिल्ली के विभिन्न क्षेत्र, वर्ग और समाज के लोगों में व्यापक रूप मे फैली। मै मानता हूँ दिल्ली केवल एक राष्ट्रीय ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र है और मैं यह आवश्यक समझता हूँ कि ऐसे क्षेत्रो मे इस प्रकार के नीतिनिष्ठ और चरित्र विकास के कार्यक्रमो का ज्यादा से ज्यादा फैलाव हो। मैं कहना चाहूँगा कि नैतिक भावना का दिल्ली मे जो प्रसार हुआ है, लोग उसे भूलें नही।

संकीर्ण और ऊँच नीच की भावना ने राष्ट्र का बहुत बिगाड किया

है। अणुव्रत आंदोलन साम्प्रदायिक मतवाद और जातीय कटुता से दूर जीवन-जागरण का प्रशस्त पथ है, जिस पर मानव मात्र को चलने का अधिकार है। यह धर्म का व्यावहारिक रूप है, जिसकी जन-जन में महती आवश्यकता है, क्योंकि धर्म के ऊँचे सिद्धांत जब तक जीवन में नहीं उतरते, तब तक उसका केवल नाम रहने से कुछ बनने का नहीं है।

यहाँ के कार्यक्रमो को पूर्ण सफल बनाने में यहाँ पर स्थित मुनि श्री नगराज जी, मुनि श्री महेन्द्र जी तथा उनके सहयोगी संतो ने बहुत परिश्रम किया, बहुत से व्यक्तियो से संपर्क साधा और आंदोलन की भावना उन्हें समझाई। साथ-साथ यहाँ के स्थानीय कार्यकर्ताओ तथा इस अवसर पर बाहर से आये हुये कार्यकर्त्ताओं ने भी नैतिक भावना के प्रसार में बहुत परिश्रम किया है। इससे दूसरो को भी प्रेरणा लेनी चाहिये। धार्मिक तत्त्वों का प्रचार करना जीवन का भी ध्येय होना चाहिए।

मुनि श्री नगराज जी और मुनि श्री महेन्द्र जी ने भी इस अवसर पर अपने विचार प्रकट किये। श्री मोहनलाल जी कठौतिया, श्री जयचन्दलाल जी दफ्तरी तथा प्रो० एम० कृष्णमूर्ति ने भी अपने श्रद्धा-भक्ति सम्पन्न भाव व्यक्त किए।

आयोजन (२३)

पिलानी में संस्कृत साहित्य गोष्ठी

आकाश प्रातःकाल से ही प्रायः मेघाच्छन्न था। रुक-रुक कर बूंदें पड़ रही थीं। आशंका थी कि कहीं आज के कार्य-क्रम मे विघ्न न आ जाए। आज १८ जनवरी १९५७ का प्रातःकालीन आयोजन बिरला मांटेसरी पब्लिक स्कूल में था। उसके बाद वर्षा जोर से पड़ने लगी।

गोचरी भी पूरी तरह से नहीं हो सकी। अतः ग्यारह बजे का सेन्ट्रल आडिटोरियम हॉल के प्रवचन का कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा। इधर हाल मे विद्या विहार के हजारो छात्र इकट्ठे हो गये थे। जब उन्हें पता चला कि आचार्य श्री आज नहीं आ सकेंगे तो उन्हें निराशा हुई। आचार्य श्री के इधर के कार्यक्रमो से वे परिचित थे अतः प्रवचन सुनने के लिये अति उत्सुक थे। पहले दिन कुहरे के कारण आने में देर हो गई थी। दूसरे दिन वर्षा के कारण प्रवचन नहीं हो सका था। दूसरे कार्यक्रम भी नहीं हो सके थे। लोगो में इतनी उत्कंठा थी कि अगर आचार्य श्री बाहर नहीं जा सकें तो वहाँ उनके स्थान पर ही कुछ कार्यक्रम कर लेना चाहिए। किन्तु वह भी नहीं किया जा सका। अतः उसी दिन तीसरे पहर चार बजे 'संस्कृत साहित्य गोष्ठी' का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। गोष्ठी में बिरला विद्या विहार के संस्कृत प्राध्यापक, छात्र, वेद वेदाग संस्कृत महाविद्यालय के पंडित, छात्र एवं आयुर्वेद कालेज के विद्वान् व विद्यार्थी सोत्साह उपस्थित थे।

सर्व प्रथम मुनि श्री बुलीचन्दजी ने सुमधुर स्वर से एक संस्कृत गीतिका का गान किया। पश्चात् श्री छगनलाल शास्त्री काव्यतीर्थ ने आचार्य प्रवर के निर्देशन में साधु साध्वीगण में चल रही संस्कृत साहित्य के बहुमुखी विकास, अनुशीलन, साहित्य सृजन आदि विविध प्रवृत्तियो पर प्रकाश डाला। वेद वेदांग संस्कृत महाविद्यालय के प्रधान आचार्य श्री अनन्तदेव शास्त्री व्याकरणाचार्य ने आचार्य प्रवर के अभिनन्दन में भाषण किया। वेदवेदाग संस्कृत महाविद्यालय के एक छात्र श्री रामस्वरूप शर्मा ने संस्कृत प्रसार के विषय में अपने विचार प्रकट किये। मुनि श्री सुखलाल जी ने संस्कृत भाषा की उपयोगिता के बारे में बताया। मुनि श्री नथमल जी तथा मुनि श्री बुद्धमल जी ने तत्क्षण प्रदत्त विषयों पर आशु कविता की।

मुनि श्री नथमल जी ने अपने भाषण में बताया—आज जो पंडितों और प्रोफेसरों का भेद है, वह जब तक नहीं मिट जाता तब तक संस्कृत

भाषा प्रगति नहीं कर सकती। पंडित लोग केवल व्याकरण में उलझे रहते हैं और प्रोफेसर लोग व्याकरण की उपेक्षा कर देते हैं। ये दोनों पक्ष उचित नहीं हैं। व्याकरण ही कोई भाषा नहीं है और व्याकरण की उपेक्षा से भी भाषा नहीं बन सकती। अतः मध्यम मार्ग ऐसा होना चाहिये, जिससे यह भेद मिटे और संस्कृत भाषा विकास कर सके। संस्कृत का महत्व केवल इसलिये ही नहीं कि वह लालित्यमयी भाषा है। इसका महत्त्व इसलिये है कि इसके साहित्य में अध्यात्म अनुभूति उचित मात्रा मे प्रस्फुटित हुई है।

मुनि श्री ने अपनी आशु कविता में संस्कृत की गरिमा गाते हुए कहा—आज देवता तो हमारे सामने हैं नहीं, जिनसे हम उनकी वाणी को जान सकें और इधर संस्कृत को लोग देव-भाषा मानते हैं तो यहाँ मैं "कं प्रमाणं मन्ये"—किसको प्रमाण मानूं ?

इतना सुनते ही वहाँ उपस्थित एक संस्कृत पंडित आवेश में आकर बोल उठे—यहाँ आपने "प्रमाणं" शब्द का जो नपुंसक लिंग का है, पुल्लिग 'कम्' विशेषण कैसे कर दिया। मुनि श्री ने उन्हें समझाया कि यह प्रमाण का विशेषण नहीं है। यहाँ मैंने "कं पुरुषं प्रमाणं मन्ये" इस पुरुष शब्द को ध्यान मे रखकर कं विशेषण का प्रयोग किया है। पंडित जी विवाद करने पर उतारू हो गये। कहने लगे—बिना विशेष्य के आपने विशेषण का प्रयोग कैसे किया ? मुनि श्री ने उन्हें समझाया—ऐसा होता है, यह साहित्य का दोष नहीं है। वे कहने लगे पद्य में ऐसा नहीं होता। चर्चा मे कुछ तेजी पैदा हो गई। पंडित जी ने फिर आवेश मे पूछा कि देव कौन होता है ?

मुनि श्री ने कहा—हम तो अपने आगमों पर श्रद्धाशील हैं अतः मानते हैं कि देव भी होते हैं।

उन्होंने कहा—नहीं, यह बात गलत है। देव तो वे ही हैं, जो संस्कृत भाषा बोलते हैं। फिर बहस चल पड़ी। उन्हें समझाया गया कि केवल संस्कृत बोलने वाले ही देव नहीं होते। अगर इसी से देव हो जाते

हो तो हम मनुष्य भी देव हो जायेंगे जो संस्कृत बोलते हैं, पर ऐसा नहीं है। हम मनुष्य हैं, यह स्पष्ट है। मुस्कराते हुये आचार्य श्री ने कहा—यदि सस्कृत मे बोलनेमात्र से ही कोई देव हो जाता हो तब तो विदेशो मे भी अनेक लोग संस्कृत बोलते हैं। क्या वे देव हो गए ?

अबकी बार पडित जी अचकचाये। कहने लगे—नहीं, देव तो भारतवासी ही हो सकते हैं। वे तो अब म्लेच्छ हैं। आचार्य श्री ने कहा तब आप सस्कृत बोलनेमात्र से किसी को देव कैसे मान लेते है ? यदि मानते है तो उन्हें भी आप को देव मानना पड़ेगा। वे कहने लगे—नही, वे संस्कृत बोलते तो हैं पर उनका संस्कृत के प्रति अनुराग और विश्वास नहीं है।

आचार्य श्री—नहीं, यह बात गलत है। अनेक विदेशी विद्वान् सस्कृत से अच्छा अनुराग रखते हैं। यह बात आप कैसे कह सकते हैं कि उनको संस्कृत से अनुराग नहीं है। इस बात पर वे टाल मटोल करने लगे। इधर समय भी काफी हो गया था। मेघ आकाश पर अपना गहरा अधिकार जमाये हुए थे। दिन भी छिप चुका था। आचार्य श्री ने आज के विषय का उपसहार करते हुए गोष्ठी को समाप्त किया। आचार्य श्री ने बहस मे कटुता पैदा नही होने दी।

गोष्ठी के बाद एक संस्कृत प्रोफेसर मिलने आये। वे कहने लगे—हम प्रोफेसरो और पडितो मे यही तो अन्तर है। एक शब्द के लिए उन्होने सारा मजा बिगाड़ दिया। अच्छा प्रकरण चल रहा था। बड़ा आनन्द आ रहा था। शब्द की गलती भी हो सकती है पर वह तुच्छ है। उसमे उलझ जाना उचित नहीं है। पर पंडित लोगो की यह प्रवृत्ति रहती है। आपने तो कोई गलती की भी नहीं थी। पर क्या किया जाए ? एक ओर से ये संस्कृत विकास की ऊँची-ऊँची उड़ानें भरते हैं और उसके लिये इकट्ठे होते हैं, दूसरी ओर आपस मे ऐसी कलह कर लेते हैं। इसी कारण संस्कृत का विकास रुका हुआ है।

दूसरा प्रकरण

प्रवचन (१)

श्रमण संस्कृति का स्वरूप

चेतना के जगत मे हिंसा और अहिंसा का झमेला नहीं है। वहाँ अंतर और बाहर का द्वंद्व नहीं है। स्वभाव ही सब कुछ है। वहाँ पहुँचने पर बाहर का आकर्षण मिट जाता है।

पौद्गलिक जगत् मे चेतन और अचेतन का द्वंद्व है, इसलिये वहाँ हिंसा भी है और अहिंसा भी है। बाहरी आकर्षण हिंसा को लाता है, उसकी मात्रा बढ़ती है तब उसका निषेध होता है। वह अहिंसा है।

अहिंसा का अर्थ है— बाहरी आकर्षण से मुक्ति। बाहरी पदार्थों के प्रति खिचाव होता है, इसीलिये तो मनुष्य संग्रह करता है। संग्रह के लिये शोषण और युद्ध करता है।

अहिंसा और अध्यात्म को अव्यावहारिक मानने वाले वे ही लोग हैं, जो बाहर से अधिक घुले मिले हैं। उनकी दृष्टि मे जीवन के स्थूल पहलू ही अधिक मूल्यवान हैं।

बाहरी आकर्षण हिंसा है। बाहर से आसक्ति, परिग्रह और उसके समर्थन का आग्रह-एकान्तवाद, कठिनाइयो के मूल ये तीन हैं और सारे दोष इनके पत्र-पुष्प हैं।

आज का विश्व विपदाओं के कगार पर खड़ा है। उसे अशान्ति से उबारने के लिये "अनेकान्त दृष्टि" सहारा बन सकती है। बाहरी पदार्थों के बिना जीवन नहीं चल सकता। गृहस्थ जीवन मे उनकी पूर्ण उपेक्षा नहीं की जा सकती, पूरा निषेध नहीं किया जा सकता, यह एक तथ्य है। किन्तु उनके प्रति जो अत्यधिक झुकाव है वही सारी दुविधाएँ पैदा करता है।

अहिंसा आकर्षण की दूरी से नापी जाती है, वह केवल योग्य वस्तुओं

की दूरी से नही नापी जा सकती। मूर्च्छा का ममत्व स्वयं परिग्रह है। वस्तु का संग्रह हो या न हो, ममत्व से जुड़ी हुई वस्तुएँ भी परिग्रह हैं।

भगवान् महावीर ने कहा— हिंसा और परिग्रह दोनो सत्य की उपलब्धि मे बाधा हैं। इन्हे नहीं त्यागने वाला धार्मिक नहीं बन सकता। दुःख के बाहरी उपचार से दु.ख के मूल का विनाश नहीं होता। भगवान् ने कहा— धीर ! तू दुःख के अग्र और मूल दोनो को उखाड़ फेक। (अग्र च मूल च किंमि च धीरे।)

असुख और अशाति में दोनो महा भयकारक हैं। (अगायं अपरिनिव्वाण म अभय)। इनका प्रवाह कर्म मे है। कर्म का प्रवाह मोह मे है। प्रिय और अप्रिय पदार्थो मे मूढ बनने वाला शाति नही पा सकता और सुख भी नहीं पा सकता। सुख इन्द्रिय और मन की अनुभूति है। वह प्रियता की कोटि का तत्व है। शाति आत्मा की समवृत्ति है। सु.ख-दुःख, लाभ-अलाभ, जीवन-मृत्यु, उत्कर्ष-अपकर्ष, आदि आदि उतरती-चढती सभी अवस्थाओ मे वृत्तियो की समता जो है, वह शांति है।

अप्रिय और प्रतिकूल संयोगो मे भी विचार तरंगो की जो अप्रकम्पना है वह शाति है। आत्म-निर्भरता और स्वावलम्बन शांति है। श्रमण संस्कृति का अर्थ है— शांति की सस्कृति। वह सम, शम और श्रम—स्वावलबन या वैयक्तिकता के आधार पर टिकी हुई है। भगवान ने कहा श्रामण्य का सार उपशम है। उपशम जो है वही श्रामण्य है।

'उवसयंसारं सामण्णं'

सम्यक् दृष्टि, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्रकी आराधना जो है वही जैन धर्म है।

अनेकान्त, अनाग्रह और अध्यागम का जो विचार है वही जैन दर्शन है

अहिंसा, अपरिग्रह और अभय की जो साधना है वही जैन दर्शन का मुक्ति मार्ग है।

विश्व मेत्री का मार्ग यही है। वैयक्तिक दुर्लबताओ को जीते बिना

विजय नहीं। विजय के विना शांति और अखंड की उपलब्धि नहीं—जैन धर्म का यही मर्म है।

स्याद्वादो विद्यते यस्मिन्, पक्षपाती न विद्यते।
नास्त्यन्यपीड़नं किञ्चित् जैन धर्मः स उच्यते॥
आसवो भव हेतुः स्यात्, सम्वरो मोक्ष कारणम्।
इतीय मार्हती दृष्टिः सर्व मन्यत् प्रवञ्चनम्॥

आचार्यश्री का यह प्रवचन ३० नवम्बर १९५६ को सप्रू भवन मे जैन गोष्ठी मे दोपहर के समय हुआ। देरी हो जाने के कारण आचार्य श्री ने आहार एक ही समय किया।

जैन गोष्ठी के मन्त्री डा० किशोर ने आचार्य श्री से वहाँ पधारने के लिए निवेदन किया था। वाद मे स्थिति ने कुछ पलटा खाया। अन्य जैन सम्प्रदायो के साधुओ ने या उनके श्रावको ने भी वहाँ आने का आग्रह किया। आचार्य श्री ने कहा—अगर वे आएँ तो मुझे तो वहाँ न जाने या जाने मे कोई आपत्ति नही। अपनी आत्मा का पूरा आलोचन करने के वाद मुझे मेरे एक प्रदेश मे भी कोई दुर्भावना नही लगती, मेरी दृष्टि मे भी सही काम होना चाहिये, चाहे वे करे या हम करें। पर खेद है कि जैन समाज मे, विशेषतया साधुओ मे भी अभी समन्वय की वृत्ति नही आई है।

अत मे वहाँ के कार्यकर्ताओ ने आचार्य श्री की उपस्थिति आवश्यक समझी। उनके निवेदन पर आचार्य श्री वहाँ पधार गये। दिगम्बर आचार्य श्री १०८ देशभूषण जी भी आये थे। काका कालेलकर के उद्घाटन भाषण के वाद आचार्य श्री देशभूषण जी ने मगल प्रवचन किया। फिर आचार्य श्री का श्रमण सस्कृति तथा जैन धर्म के स्वरूप पर सारगर्भित प्रवचन हुआ।

दिन थोडा रह जाने के कारण प्रवचन के वाद आचार्य श्री वापस पधार गये। पीछे से प्रो० एम० कृष्णमूर्ति ने प्रवचन का अग्रेजी मे अनुवाद किया।

प्रतिक्रमण के बाद टी० सी० ओ० के एक आफीसर श्री पुष्कर ओझा दर्शनार्थ आये। आचार्य प्रवर ने उन्हे अणुव्रत आदोलन की जानकारी दी। फिर प्रार्थना के बाद जैन सेमिनार के अध्यक्ष भारत के प्रमुख उद्योगपति श्री साहू शातिप्रसाद जी जैन आचार्य श्री के दर्शनार्थ आये। उहोने जैन साहित्य और समाज के बारे मे काफी चर्चा की।

प्रवचन (२)

धर्म व नीति

दिल्ली मे मै तीन बार आया हूं, पहिले पहल मै जब आया तब अणुव्रत आन्दोलन का पहिला वार्षिक अधिवेशन हुआ था। दूसरी बार मैं यहाँ चातुर्मास करने आया और अब तीसरी बार मैं एक बहुत लम्बी यात्रा तय करके आ रहा हूँ। दिल्ली मे मेरे न आने पर भी हमारे साधुओं ने यहाँ अच्छा कार्य किया है। विभिन्न कार्यक्रमों से अणुव्रत की जानकारी और निष्ठा भी पैदा हुई है। मै चाहता हूँ, हमारा यह क्रम जारी रहना चाहिए। कई लोग कहते हैं कि साधुओं को इस से क्या मतलब ? उन्हें तो जंगल में एकान्तवास और ध्यान करना चाहिए। पर यह सही नहीं है। भगवान महावीर ने कहा है—साधुओं का कार्य है साधना करना। वह जंगल मे भी हो सकती है और लोगों के बीच में भी "साधयति स्वपरकार्याणीति साधुः" साधू वही है जो अपना और दूसरों का भी कार्य साधे। अतः साधु का अपना काम करना भी साधना है और दूसरो के आत्मगुणवर्धक कार्यो मे सहायक होना भी साधना है।

शास्त्रो में चार प्रकार के मनुष्य बतलाये गये है। एक प्रकार के मनुष्य आत्मानुकम्पी—जो अपनी ही चिन्ता करने वाले होते हैं। दूसरे

परानुकम्पी—जो दूसरों की ही चिन्ता करने वाले होते हैं। तीसरे उभयानुकम्पी—जो अपनी भी और दूसरों की भी चिन्ता करने वाले होते हैं। चौथे प्रकार के मनुष्य जो न आत्मानुकम्पी हैं न परानुकम्पी—न अपनी ही चिन्ता करते हैं और न पर की ही। इसमें आज के साधू तीसरे प्रकार के होने चाहिए अर्थात् ये अपना हित भी साधें और दूसरों का भी। अपनी साधना के साथ साथ वे लोगों मे आकर कुल कार्य करें। यह हमारी साधना के सर्वथा अनुकूल है।

आज यह हमारा मुख्य कार्य है—मानवता हीन मानव समाज में मानवता की पुनः प्रतिष्ठा करना। आज मानव ने सबसे बड़ी चीज जो खोई है, वह है—मानवता। इसलिए आज भी सबसे बड़ी आवश्यकता है कि उसे प्राप्त किया जाय। मुझे आश्चर्य होता है कि आज उन छोटी छोटी बातो के लिए भी हमें उपदेश करने पड़ते हैं, जो सहज ही जीवन मे होनी चाहिए। एक मनुष्य दूसरे के साथ विश्वासघात करते नहीं सकुचाता। इससे बढ़कर और क्या बतन होगा। यह वर्तमान युग का जमाने का रंग है। पर हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं। हमें कर्तव्य करना है। और उस खोई हुई मानवता को पुनः प्राप्त करना है। इसी कारण आज नीति की प्रतिष्ठा करना आवश्यक हो गया है। पर यह अध्यात्म की भूमि के बिना टिक नहीं सकती। बहुत से लोग स्वार्थ के लिए नीति का अवलंबन करते हैं। पर यह स्थायी नहीं होता। जब तक स्वार्थ सिद्ध होता है तब तक नीति का अवलम्बन किया जाता है। और स्वार्थ साधना के बन्द होते ही नीति की साधना भी बन्द हो जाती है।

गांधी जी ने एक बार कहा था—अहिंसा मेरा व्यक्तिगत धर्म है। कांग्रेस ने उसे नीति के रूप में स्वीकार किया है। यह उसका धर्म नहीं है। इसी का यह परिणाम है कि आज गांधी जी के चले जाने के बाद कांग्रेस के वे व्यक्ति, जिनसे कुछ आशा थी, अहिंसा को भुला बैठे हैं। अगर कांग्रेस ने इस को धर्म के रूप मे स्वीकार किया होता तो आज अहिंसा को इस प्रकार भुलाया नहीं जाता। पर वह केवल नीति

थी। और वह स्थायी कैसे हो सकती थी ?

व्यवहार शुद्धि के बिना आंतरिक शुद्धि स्थायी नहीं बन सकती। अतएव शास्त्रो में कहा है—"धम्मो शुद्धस्स चिट्ठई" धर्म शुद्ध अन्तः करण मे स्थित होता है। किम्वदन्ती है, सिंहनी के दूध के लिए सोने की थाली आवश्यक है। उसी प्रकार नैतिक व्यवहार के लिए अध्यात्म की भूमिका की नितांत अपेक्षा है, अन्यथा वह टिक नहीं सकता।

यह कहा जा सकता है कि धर्म से आत्मा पवित्र बनती है या आत्मा मे धर्म टिक सकता है ? क्योकि धर्म को आत्म की शुद्धि का साधन माना गया है पर बिना आत्मा को पवित्र किये वह व्यक्ति मे ठहरेगा कैसे ?

अतः अणुव्रत आन्दोलन कहता है कि आत्मा की शुद्धि करो। व्रत शुद्धि के साधन हैं। कुछ व्रत ग्रहण करो। वैसे आत्मशुद्धि और धर्म दो चीजें नहीं हैं। आत्मा की पूर्ण शुद्धि ही धर्म का पूर्ण स्वरूप है।

केवल व्यवहार शुद्धि से दोषो की जड़ नही कटती। अतएव भगवान ने कहा है "अग्रंच मूलंच विभिंच धीरो" धीर पुरुष दोष के अग्र और मूल दोनो का उन्मूलन करें।

जैन दर्शन मे दोष शमन के दो प्रकार बताए गये हैं। पहिला उपशम और दूसरा क्षपक। आठवें गुण स्थान से उठने वाला जीव जो मोह का शम नहीं करता, उपशम करता है। यह उपशम श्रेणी का आश्रय लेता है। उस श्रेणी से ग्यारहवें गुण स्थान तक चला जाता है। पर उसे वापिस नीचे गिरना पड़ता है। पर क्षपक श्रेणी से चढने वाला जीव नीचे नहीं गिरता। वह सिद्धि के उन्नत शिखर पर पहुँच जाता है। उसी प्रकार धर्म से केवल व्यवहार शुद्धि के लिए पालन करने वाले दोषो का पूर्ण शमन नही कर सकते। अवसर आने पर वे दोष पुनः उद्बुद्ध हो जाते हैं। पर आन्तरिक शुद्धि से होने वाली व्यवहार शुद्धि स्थायी और सर्वांग होती है अतः धर्म को केवल व्यवहार शुद्धि के लिए करना रोग का सर्वनाशक उपाय नहीं है।

लोग पूछते है—इतने वर्ष हो गये, अनेकों ऋषि-मुनियों ने अहिंसा का उपदेश किया। पर उसका फल क्या हुआ ? क्या अशांति संसार से मिट गई। पर सोचना है अगर अहिंसा ने कुछ नहीं किया तो हिंसा से भी आखिर कौनसी शान्ति स्थापित हो गई। वह भी तो हजारों वर्षों से चलती आ रही है। पर तत्व यह है कि जितने साधन हिंसा को मिले उन मे से अगर उनका थोड़ा अंश भी अहिंसा को मिल जाता तो न जाने ससार में क्या से क्या हो जाता।

थोड़े बहुत साधन उपलब्ध हैं, पर उनमे भी आज सहयोग नहीं है। जितनी भी अहिंसक शक्तियाँ हैं वे आपस में मिलती नहीं। हिंसक शक्तियाँ विना मिलाए आपस में मिल जाती हैं। जितने साधन आज अहिंसा को प्राप्त हैं, उतनो का समुचित उपयोग हो, तो भी बहुत काम किया जा सकता है। आज उनके मिलने की बड़ी आवश्यकता है।

अहिंसा का आचरण क्यों ?

प्रश्न है, अहिंसा का आचरण क्यों किया जाए ? उत्तर भी सीधा है—अभय वनने के लिए अहिंसा का आचरण करो। यद्यपि अहिंसा मनुष्य को अभय वनाती है, फिर भी सव जगह अभय होना अच्छा नही। इसलिए कहा गया है कि पाप से भय खाओ। जो पाप से डरता हो वही अहिंसा की पूर्ण साधना कर सकता है। शास्त्रो मे कहा है—पाप से डरने वाला ही मृत्यु से मुक्त वनता है। अणुव्रतों की साधना अभय की ओर सफल प्रयास है। कुछ लोग आशका भी करते हैं कि अणुव्रत नया तो है ही नहीं फिर चलने की क्या आवश्यकता हुई। मै पूछता हूँ संसार मे आखिर नया क्या है ? आचार्य—हेमचन्द्र ने भगवान की स्तुति करते हुवे कहा है—

यथा स्थितं वस्तु दिशन्नधीश।
नताहशंकौशलं माश्रितोऽसि।
तुरंग शृंगा ण्युपपादयद्भ्यो-
नमः परेभ्यो नव पंडितेभ्यः॥

सब कुछ अति प्राचीन काल से चला आ रहा है अतः व्रत की परम्परा भी पुरानी है। पर आज के युग में जब संसार अणुव्रत से भय भीत है, अणुव्रत की अत्यधिक आवश्यकता है। अणुव्रत अभय बनाता है। आप अपने मन से भय को निकाल दें तो संसार मे कोई भय है ही नहीं। और यह व्रतो से ही पैदा की जा सकती है।

आज १ दिसम्बर १९५६ को प्रात काल पचमी समिति से निवृत्त होकर आचार्य श्री नार्थ एवेन्यू एम० पी० क्लब पधारे। राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त, श्री सावित्री देवी निगम आदि कई ससत्सदस्य आचार्य श्री को लेने आये। क्लब मे पधारने पर श्री सावित्री देवी निगम ने आचार्य श्री का स्वागत किया और अणुव्रत आन्दोलन की भूरि भूरि प्रशंसा की।

वहाँ उपस्थित ससत्सदस्यो एव प्रमुख नागरिको के वीच आचार्य श्री ने मर्मस्पर्शी प्रवचन दिया।

प्रवचन के उपरान्त क्लब के मत्री श्री केशव अय्यगार ने आचार्य श्री का आभार मानते हुए कहा—आप हमे उपदेश देने पधारे है यह आपकी वडी कृपा है। वहुत से लोग आपके इस सयम मूलक आन्दोलन को महत्त्व नही देते। आज जव मैं लोकसभा की गैलरी मे सदस्यो को आज के कार्यक्रम और अणुव्रत आन्दोलन की जानकारी दे रहा था तो वहुत से सदस्य कहने लगे—भला इस आन्दोलन से क्या होने वाला है। यह तो वालू से तेल निकालने जैसा प्रयास है। आज के युग मे सयम के माध्यम से राष्ट्र की समस्याओ को सुलझाना हास्यास्पद प्रतीत होता है। मैंने उन्हें समझाया कि संयम के माध्यम से ही सही हल निकलने वाला है। लोग भले ही आज इसके महत्व को न समझें। परन्तु यह बुनियादी काम है जिसका महत्व स्वीकार करना ही होगा।

विद्याध्ययन का लक्ष्य

वह ज्ञान अज्ञान है जो जीवन के अन्तरतम को छूता नहीं। वह विद्या अविद्या है जो अन्तर्वृत्तियों मे परिशुद्धि नहीं लाती—ये हमारे भारतीय महर्षियों के वाक्य हैं, जिनमे प्रेरणा भरी है, ओज भरा है। मैं बहुधा कहा करता हूँ कि विद्याध्ययन का लक्ष्य जीविकोपार्जन नहीं है। ऋषियो के शब्दों मे "सा विद्या या विमुक्तये"। उसका लक्ष्य है "विमुक्ति" बुराइयों से छुटकारा, अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थान। पर बड़े खेद का विषय है कि जीवन का यह महान् लक्ष्य आज आँखों से ओझल होता जा रहा है। तभी तो किताबी पढ़ाई के लिहाज से शिक्षा का अधिक प्रचार होने के बावजूद भी अन्तर चेतना की दृष्टि से उसमें कुछ भी विकास नही हो सका है।

हम आये दिन सुनते हैं, अमुक स्थान पर विद्यार्थियों ने उद्दण्डता की, उच्छृङ्खलता की, अनुशासनहीनता बरती। यह सब क्यों सारा वायुमंडल ही कुछ इस प्रकार का बना हुआ है। क्या घर मे, क्या परिवार के इर्द गिर्द, वे ऐसा ही पाते हैं। आज संपूर्ण वातावरण मे एक नया आलोक भरना होगा। विद्यार्थियो को अपने जीवन का सही मूल्य समझना होगा। अभिभावको और अध्यापको को भी यह समझना होगा कि विद्यार्थी राष्ट्र की सब से बड़ी संपत्ति है। उन्हें अभ्युत्थान और जागृति की ओर ले जाना सब का काम है। इसके लिये उन्हें स्वयं को अति जागरूक बनाना होगा।

प्रवचन का उपसंहार करते हुए आचार्य प्रवर ने कहा—आज भौतिकवाद सर्वत्र प्रसार पाता जा रहा है। हिंसा से व्याकुलता और आतुरता आदि अशांतिकारी प्रवृत्तियाँ पनप रही हैं। यही कारण है कि

जीवन का महत्व आज बाहरी दिखावे मे समाता जा रहा है। यदि अंतर जीवन का सच्चा संरक्षण हम चाहते हैं तो इसे रोकना होगा।

इसका सब से अधिक उपयोगी एक यही उपाय है कि बालको को शुरू से अध्यात्म की शिक्षा दी जाय। फलतः वे बहिर्दृष्टि नहीं बनेंगे। बहिर्दृष्टि नहीं बनने का अर्थ है—आत्मोन्मुख बनना। जहाँ आत्मोन्मुखता है, वहाँ बुराइयाँ नहीं आतीं, कालुष्य नहीं पनपता। जीवनवृत्ति परिमार्जित हो, इसके लिये मैं विद्यार्थियो, साथ-साथ अध्यापको एवं अभिभावको से भी कहना चाहूँगा कि वे अणुव्रत आंदोलन के नियमो को देखें, उन्हें आत्मसात् करें। विद्यार्थियों के लिये विशेष रूप मे ये पाँच नियम रखे गये हैं—

(१) मद्यपान नहीं करना।

(२) धूम्रपान नहीं करना।

(३) किसी भी तोड फोड मूलक हिंसात्मक प्रवृत्ति मे भाग नहीं लेना।

(४) अवैधानिक तरीको से परीक्षा मे उत्तीर्ण होने का प्रयास नहीं करना।

(५) रुपये आदि लेने का ठहराव कर वैवाहिक संबंध स्वीकार नहीं करना।

यह प्रवचन ५ दिसम्बर १९५६ की प्रातःकाल नयी दिल्ली की अत्यन्त अनुशासित प्रमुख शिक्षण सस्था माडर्न हायर सेकन्डरी स्कूल मे हुआ। इस विद्यालय मे एक हजार से अधिक छात्र-छात्राये पढती है।

श्रद्धा व आत्मनिष्ठा

"वितिगिच्छा समावण्णेणं अप्पाणेणं णो लहई समाहिं" संशयशील मनुष्य समाधि-शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। संशयशील को दूसरे शब्दों मे हम मिथ्या भी कह सकते हैं। जो श्रद्धाशील होता है, उसे संशय नहीं होता। वह सम्यक्त्वी कहलाता है। इसके बीच भी एक अवस्था होती है 'सासादन सम्यक्त्व', पर उसकी स्थिति बहुत थोडी होती है।

प्राणी का स्वभाव है क्रिया करना। अगर क्रिया करेगा तो वह सम्यग् या मिथ्या अवश्य होगी। गीता में भी कहा है—

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च, संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोस्ति न परो, न सुखं संशयात्मनः॥ गीता ४-४०

अश्रद्धाशील मनुष्य का विनाश हो जाता है।

प्रश्न उठता है आखिर श्रद्धा किसमे रखनी चाहिये। वैसे तो भिन्न भिन्न लोग भिन्न भिन्न प्रतीको मे विश्वास करते है। कोई प्रतिमा मे, कोई अग्नि मे, कोई वृक्ष मे, कोई आकाश में श्रद्धा करता है। इस प्रकार श्रद्धा के स्थान अनेक हो जाते हैं। पर श्रद्धा का आखिर आधार क्या है? यह सही है कि यह भी श्रद्धा ही है। पर वास्तव मे श्रद्धा का मतलब है आस्तिक्य। यही इसका आधार है। आस्तिक्य यानी आत्मा, परमात्मा, देव, भगवान् और अपने आपका विश्वास। जो व्यक्ति अपने आपका "मैं हूँ" यह विश्वास कर लेगा तो वह अपने जैसे ही दूसरो के आस्तिक्य मे भी विश्वास कर लेगा। जैसा मुझे दुःख होता है, वैसा औरों को भी होता है, यह बात भी उसकी समझ मे आ जायगी। अतः वह किसी को भी कष्ट नहीं देगा।

भगवान् पर हमारी श्रद्धा होती है, अतः हम उनका स्मरण करते

हैं। पर उससे हमे क्या मिलने वाला है ? क्या भगवान् हमे कुछ देते हैं ? नही, भगवान् न तो हमे कुछ देते हैं और न हम कुछ उनसे पाते हैं। परन्तु उनके गुणों का स्मरण कर हम अपने आपको तदनुकूल बनाने का प्रयत्न करते हैं। उनमे जो गुण हैं, उन्हे हम भी पा सकते हैं। इस प्रकार श्रद्धा के द्वारा हम अपना चौमुखी विकास कर सकते हैं। बहुधा श्रद्धेय का नाम लेकर निकल जाने पर कार्यसिद्धि होती है। इसमे श्रद्धेय की अपेक्षा स्वयं की निष्ठा का चमत्कार ही अधिक है।

इसी प्रकार कोई भी आन्दोलन विना निष्ठा के सफल नहीं हो सकता। भला, जिसमें स्वयं की श्रद्धा नहीं, उसमे दूसरों की निष्ठा कैसे हो सकती है। अगर आन्दोलन मे हमारी निष्ठा हुई तो आज भले ही उसकी आवाज को कोई न सुने, पर एक दिन अवश्य हमारी बात सुनी जायगी। भिक्षु स्वामी ने प्रारम्भ में जब तेरापंथ की नींव डाली, तब उनके पास कौन सुनने आता था ? वे अपने साधुओं को लेकर बैठ जाते और कहते "आओ प्रवचन करें"। साधु कहते—महाराज ! आपका प्रवचन सुनने के लिये कोई श्रावक तो है ही नहीं, आप किसको सुनायेंगे ? वे कहते, तुम्हे सुनायेगे। एक बार नही, अनेक बार भिक्षु स्वामी ने ऐसा किया था और उसी दृढ निष्ठा का फल है कि आज उनकी बात सुनने वाले लोगों की भीड़ नहीं समाती। गाँधी जी भी कहा करते थे—"अगर तुम्हारी बात सुनने वाला कोई नहीं है तो तुम जंगल में जाकर निष्ठा-पूर्वक अपनी बात जोर जोर से कहो। वह अवश्य फल लायेगी।"

जब अणुव्रत आन्दोलन शुरू हुआ तो कौन जानता था कि वह इतना व्यापक बन जायगा। इतना ही नहीं, हमारे निकट रहने वाले लोग भी इसकी खिल्लियाँ उड़ाया करते थे। पर हमारी निष्ठा बलवती थी। उसका ही यह परिणाम है कि आन्दोलन प्रतिदिन आगे बढ़ रहा है। यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि हमने आज तक जितना किया है, उससे कई गुना ज्यादा और करना है। और इसके लिये मै कार्यकर्ताओं से कहूँगा कि वे निष्ठापूर्वक काम करते रहें। अगर कार्यकर्ताओं ने निष्ठा-

पूर्वक काम किया तो मेरा विश्वास है कि एक दिन ऐसा आयगा, जबकि सारा संसार हमारे कार्य को देखेगा।

आप अपने आपको कभी तुच्छ न समझें। साथ-साथ अभिमान भी न करें। यह कभी न सोचें कि हम क्या कर सकते हैं ? हमारी आत्मा में अनन्त शक्ति है, उसे विकसित करते चलें, सब कुछ सम्भव है।

४ दिसम्बर १९५६ की प्रात काल ठहरने के स्थान पर यह पहला प्रवचन था।

प्रथम प्रहर मे पचमी से लौटते सयय आचार्य प्रवर थोडी देर 'डालमियाँ' की कोठी पर ठहरे। श्रीमती दिनेशनन्दिनी डालमियाँ ने श्रद्धापूर्वक सम्मान किया। धर्म प्रचार व प्रसार के विपय मे बातचीत हुई। स्थान पर वापस आने के बाद श्रीमती मदालसा देवी (धर्मपत्नी श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल) से थोडी देर बातचीत करने के बाद प्रवचन प्रारम्भ हुआ।

प्रवचन के बाद कई व्यक्तियो ने आचार्य श्री से भेंट की। इधर हाँसी नगर के कई प्रतिष्ठित व्यक्ति 'मर्यादा महोत्सव' की अर्ज करने श्री चरणो मे उपस्थित हुए।

प्रवचन (५)

मानवधर्म

देहली में आये नौ दिन हो जाने के बाद भी इस बस्ती में मै आज पहली ही बार आया हूँ। यहाँ की खटपट में तो मनुष्य की आवाज ही नहीं सुनाई देती। इसीलिये आप लोग बोलने के लिये भौतिक साधन (लाउड स्पीकर) का उपयोग कर रहे हैं। यदि आप प्रकृति मे रहते

तो इन भौतिक साधनो की कोई आवश्यकता नहीं होती। भारतीय संस्कृति मे प्राकृतिक जीवन को महत्व दिया जाता रहा है और इसीलिये हमे तो प्रकृति मे ही रहना है। अतः लाउडस्पीकर का उपयोग नहीं करते। केवल बोलने में ही नहीं, हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति में प्रकृति का ही सहारा है और यही तो साधुत्व है। साधुत्व कोई वेष थोड़े ही है। प्रकृति में रहना ही वास्तव मे साधना है और इसीलिये भारत में आज भी साधुओं की आवाज सुनी जाती है। हम अपनी साधना की दो बातें आपको भी सुना दें। साधना से हमे जो फल मिला है, उसे स्वार्थी बनकर अकेले ही नहीं खाये, दूसरे लोगों मे भी बाँटें।

एक बात मै आपसे पूछना चाहता हूँ—आप जो संसार मे आनन्द मान रहे हैं, उसका आधार क्या है ? हो सकता है, आपके पास जीवन है, पर आप सोचिये, इसका क्या भरोसा है। एक कवि ने कहा है—

आयुर्वायुतर त्तरंगतरलं लग्नापदः सम्पदः,
सर्वेऽपीन्द्रिय गोचराश्च चटुलाः संध्याभ्र रागादिवत्।
मित्रस्त्रीस्वजनादिसंगमसुखं स्वप्नेन्द्रजालोपमं,
तत्किं वस्तु भवे भवे दिह मुदामालम्बनं यत् सताम्॥

यह आयु तो वायु की चंचल लहरों के समान अस्थिर है। देखिये, कल की ही घटना है—एक भाई मेरे पास आता है और कहता है कि डा० अम्बेडकर ने कहा है कि मैं आचार्य श्री से मिलना चाहता हूँ और आध घंटे बाद ही दूसरा भाई आता है और कहता है कि डा० अम्बेडकर तो चल बसे। तो इस प्रकार के अस्थिर जीवन का भरोसा कर आप आनन्द मना रहे है। इसमे क्या बुद्धिमानी है ? इसी प्रकार जितनी भी धन सम्पत्ति है, उसके पीछे विपत्तियाँ लगी हुई हैं। इन्द्रियों के जितने विषय हैं, वे भी इन्द्रजाल के समान हैं। इनमें आनन्द मानकर क्या आप सचमुच ही धोखा नही खाते हैं ? आप जो संसार में सुख मान रहे हैं, आखिर वह है क्या ? हाँ यदि कोई वास्तविक सुख है तो हमे भी बताइये। हम भी उससे वंचित क्यों रहें ? पर हजारो मील घूम आने के बाद और लाखों

लोगो से मिलकर भी मैंने तो इन सबमें कुछ भी सुख नहीं पाया। आप सोचते होंगे—धनवानो, करोड़पतियो को संसार मे बड़ा सुख है। पर आप सच मानिये, उनकी स्थिति आज बड़ी चिन्तनीय है। उनको न तो सुख से खाने का समय है और न सोने का। मन में वे भी समझते हैं मगर फिर भी अपने को आनन्द मे मानते हैं। बात कड़ी अवश्य है, पर सही है कि आज के लोगो की स्थिति ठीक उस कुत्ते जैसी है, जो भूखा रहकर भी केवल शाब्दिक सम्मान पाकर अपने को धन्य मानता है।

कथा इस प्रकार है—किसी धोबी के पास एक पालतू कुत्ता था। उसका नाम था 'सताना'। वह जब घर से घाट पर जाता तो धोबी, जो घाट पर रहता था, समझता—शायद वह घर से ही रोटी खाकर आया है और घर आता तो उसकी पत्नियाँ (धोबी के दो पत्नियाँ थी) समझतीं—धोबी ने इसको रोटी डालदी होगी। इस प्रकार दोनों ही तरफ से उसे भूखा रहना पड़ता। वह थककर एकदम कृश हो गया। उसकी यह दशा देखकर दूसरे कुत्ते उससे कहने लगे—जब तुम्हें रोटी नहीं मिलती तो तुम यहाँ क्यों रहते हो? वह कहने लगता—भाई! यह तो सही है पर एक बात है, धोबी के दो पत्नियाँ हैं। वे जब आपस मे लड़ती हैं तो एक कहती है—मैं क्यो "तू सताने की औरत" इस प्रकार रोटी नहीं मिलने पर भी दो स्त्रियों का मैं पति कहलाता हूँ। क्या यह कम गौरव की बात है?

इसी प्रकार आज लोग धन से सुख नहीं पाते पर उसकी प्रतिष्ठा से अपने को धन्य मानते हैं। यह है आज के लोगो की स्थिति। पर हमें प्रतिष्ठा का मूल्य बदलना होगा। प्रतिष्ठा धन की न होकर त्याग की होनी चाहिए। आज लोग जीने का स्तर ऊँचा होने के माने मानते हैं—भौतिक समृद्धियो का ज्यादा से ज्यादा होना। पर जीवन के स्तर के माने इससे भिन्न है। उसके ऊँचे होने के माने हैं—जिसका जीवन ज्यादा सत्यमय हो, अहिंसामय हो। आपको सोचना है कि आपको जीने का स्तर ऊँचा करना है वा जीवन का स्तर? हाँ, यह अवश्य है कि जीवन

के स्तर को ऊँचा उठाने में आपको अनेक कठिनाइयो का सामना करना पड़ेगा, पर आप उनसे घबराये नहीं। उसका आनन्द भी अपूर्व होगा। जीने के स्तर और जीवन के स्तर के भेद को आप उदाहरण से समझिये। यह जैन आगमों की घटना है—

इसुकार नामक राज की रानी अपने महलों के ऊपरी भाग मे बैठी हुई थी। उसने देखा—शहर मे सब जगह धूल उड़ रही है। पूछने पर पता लगा कि उनके पुरोहित—कुटुम्ब के सारे प्राणी अपनी समग्र धनराशि को छोड़कर दीक्षा लेने जा रहे हैं और राजा उस अपार धनराशि को अपने खजाने में मँगवा रहा है। वह तत्क्षण राजसभा में आई और राजा से कहने लगी—

"वता सी पुरिसो रायं, न सो होइ पसंसि ओ।
भाहणेण परिच्चत्तं, धणं आदा उमिच्छसि॥"

राजन्! वमन को खाने वाला व्यक्ति कभी प्रशंसित नहीं होता। ब्राह्मण (पुरोहित) द्वारा परित्यक्त धन को आप लोग लेना चाहते हैं?

रानी के इस उद्बोधन से राजा की आँखे खुल गईं। वह धन के द्वारा जीने के स्तर को उन्नत बनाना चाहता था पर रानी ने उसे जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने की प्रेरणा दी और आखिर मे वह और रानी दोनो ही साधु-जीवन मे प्रव्रजित हो गये।

इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि मानव धर्म का क्या मतलब होता है। आप अपने जीवन के स्तर को ऊँचा उठाये, यही मानव धर्म है।

९ दिसम्बर १९५६ की प्रात काल इस प्रवचन का आयोजन पहाडगंज मे वहाँ के निवासियो के विशेष अनुरोध पर किया गया था। प्रवचन से पहले मुनि श्री बुद्धमल जी और संसत्सदस्य काका श्री नरहरि विष्णु गाडगील ने भी अपने विचार प्रकट किये;

प्रवचन (६)

सच्ची प्रार्थना व उपासना

"परमात्मा की उपासना जीवन का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य है । प्रार्थना, स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन आदि आदि उपासना के प्रकार हैं। लोग परमात्मा की उपासना करते हैं, आत्म-विकास के लिये नहीं, किन्तु भौतिक अभिसिद्धियो के लिये। परमात्मा को वे अपनी इच्छापूर्ति का साधन मानकर उनसे भौतिक सिद्धियाँ चाहते हैं। यह वंचना है, ईश्वर के साथ धोखा है। उपासना आत्मिक गुणों को विकसित करने के लिये करनी चाहिये। परमात्मा किसी को दुखी या सुखी नहीं बनाता । हम अपने पुरुषार्थ से ही सब कुछ पाते हैं। पुरुषार्थ से ईश्वर बन सकते हैं, यह हमें नहीं भूलना चाहिये।

आज लोग भूत-ग्रस्त हैं। कहा भी है—"चेतः प्रेतहतो जहाति न भवप्रेमानुबन्धं मम"—चित्त मे भूत का वास है। लोग स्वतः को भूलकर पीढ़ियो की बातें करते हैं, क्या यह पागलपन नहीं है। आकाश को अपने बाहों मे पकड़ने का प्रयास करना बचपन नहीं तो क्या है ? अपने हितों को गौणकर पीढियो के हितों की बातें सोचना भूल है।

एक दिन एक योगी बादशाह सिकन्दर के पास आया। सिकन्दर ने उसका यथोचित सम्मान किया। योगी ने पूछा—राजन् ! तुम क्या करना चाहते हो ?

सिकन्दर ने कहा—मैं एक एक कर सारे देशो को जीतूंगा। विश्व मे अपना साम्राज्य कायम करूँगा। धन-कुबेर बन कर मै विश्व की समस्त सुख-सुविधाओ के बीच जीवन के प्रत्येक क्षण को अपूर्व आनन्द व्यतीत करूँगा। इतना कर लेने के बाद राज्य के झंझटो से छूट कर आराम करूँगा

यह सुन योगी कुछ मुस्कराया। मुस्कराहट में छिपे रहस्य को सिकन्दर समझ न सका। उसने पूछा—योगिराज ! क्या मेरी बातों से आपको आश्चर्य हुआ है ? आप जानते हैं—बादशाह सिकन्दर जो कहता है, उसे पूरा भी करता है। मेरे भाग्य ने मुझे साथ दिया है। मैं जो चाहता हूँ, वही होता है। आप अपनी मुस्कराहट का रहस्य मुझे समझाये।

योगी ने कहा—मैं जानता हूँ, आप अपनी महत्वाकांक्षाओ को पूर्ण करने मे समर्थ हैं, पर आपकी नादानी पर मुझे हँसी आती है कि जो कार्य आप बाद मे करना चाहते हैं, वह अभी क्यो नही कर लेते। रहस्य सम्राट की समझ मे आ गया।

वर्तमान मे लोगो की यही दशा है। सिकन्दर जैसे मनोविचार प्रायः सुनते रहते हैं। क्या यह पागलपन नहीं है ? इससे छुटकारा पाने का एकमात्र साधन है—परमात्मा की उपासना।

आत्मा की उपासना परमात्मा की उपासना है। उपासना मे श्रद्धा और हृदय होना चाहिये। जहाँ दिखावा होता है, वहाँ वचना होती है। ऐसी उपासना फल नहीं लाती।

हम प्रवचन करते हैं या आप उसे सुनते हैं, यह भी साधना या उपासना का ही एक अंग है।

लोग अज्ञानवश कई बार यह पूछ बैठते हैं कि साधु उपदेश देने घर घर क्यो जाते हैं ? प्रश्न ठीक है। हम भिक्षा लेने घर घर जाते हैं तो उपदेश देने के लिये या जन-जीवन मे नैतिक उत्थान के लिये घर घर जाये तो अनुचित कैसे हो सकता है ?

साधु समता के प्रतीक हैं। सभी वर्ग व जाति के प्राणी उनके लिये समान हैं। उनका उपदेश किसी देश या राष्ट्र विशेष के लिये नही होता। आचाराग सूत्र मे कहा है—"जहा पुण्णस्स कत्थई तहा तुच्छस्स कत्थई, जहा तुच्छस्स कत्थई तहा पुण्णस्स कत्थई" साधु जिस प्रकार धन-कुबेरों को या भाग्यशाली व्यक्तियो को उपदेश करते हैं, उसी प्रकार टूटी-फूटी

झोपड़ियों में रहने वाले निर्धनों को भी उपदेश देते हैं। यह समता की उत्कृष्ट साधना है।

अर्जुन ने भगवान कृष्ण से पूछा—योग क्या है ? कृष्ण ने कहा—"समत्वं योग उच्यते-समता का आचरण योग है।" आगे उन्होंने बताया—"योगः कर्मसु कौशलम्"—अपने कर्मों में कुशलता योग है।" व्यक्ति खाता है, पीता है, उठता है, बैठता है, चलता है, बोलता है, इन सभी कर्मों मे अपनी मर्यादा को जानने व तदनुकूल बर्ताव करने वाला वास्तव में योगी है। केवल खाना या न खाना ही योग नहीं है; किन्तु खाकर या भूखा रहकर भी अपने में विकारों को न आने देना योग है। "समो निन्दा पसंसासु तहा माणाव माणओ"—यह योग की कसौटी है।

योग उपासना का सर्वश्रेष्ठ साधन है। स्वरूप का चिन्तन योग की विशिष्ट क्रिया है। प्रत्येक को यह सोचना चाहिये—"कोह कस्त्वं कुत आयातः"—मै कौन हूँ, तुम कौन हो, कहाँ से आये हो ?" इसका चिन्तन पवित्रता लाता है। परन्तु आज के लोग यह नहीं सोचते। वे ईश्वर, स्वर्ग, नरक की बातों मे उलझ कर अपने आपको भूल से रहे हैं। इसी आशय को स्पष्ट करते हुये तेरा पंथ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु ने कहा—आपरी भाषा रो आप अजाण छै, काचरी ओरी में श्वान जेम"—एक काच की कोठरी है। चारों ओर काच ही काच लगे हुये हैं। कुत्ते को उस कमरे मे छोड़ दिया तो अपनी परछाईं देखकर यह भूल जाता है कि काच में जो प्रतिविम्ब पड़ रहा है, वह मै ही हूँ। वह यह सोचता है कि वह कोई दूसरा कुत्ता है। यह सोचकर वह उस पर झपटता है। कई बार प्रयत्न करने पर भी वह उसे नहीं पकड़ सकता और खुद लहूलुहान हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्य को अपने आपका ध्यान नहीं है। वह अपने मूल स्वरूप को भूलकर इधर-उधर भटक रहा है।

:. १० दिसम्बर १९५६ की प्रात काल यह प्रवचन नयी दिल्ली मे १६, बारा खम्भा रोड पर निवास स्थान पर हुआ।

जीवन की साधना

प्रातःकालीन प्रवचन मे आचार्य श्री ने कहा—'सूत्रो में कहा गया है—"आणाऐ मामग धम्मं" आज्ञा मे मेरा धर्म है। प्रश्न होता है कि क्या 'आज्ञा' और 'मेरा धर्म' ये दो तत्व हैं या एक ही तत्व के दो पहलू ? इसका समाधान है कि दोनों एक है, दो नही।

साधक साधना करता है। साधना का आधार आज्ञा है, वही उसका धर्म है। जहाँ आज्ञा है वहाँ "मेरा धर्म" (आत्म धर्म) है और जहाँ "मेरा धर्म" है वहीं आज्ञा है, ऐसा अन्वय बनता है।

आज्ञा हम किसे मानें ? इसका समाधान करते हुये कहा है—"अर्हदुपदेश आज्ञा"—वीतराग के आत्म-शुद्धि-उपायभूत प्रवचन को आज्ञा कहते हैं।

साधक ने भगवान् से पूछा—प्रभो साधना क्या है ? भगवान ने कहा—"जयं चरे जयं चिट्ठेयं मासे जय सये। जयं भुंजं तो भासंतो, पाव कम्मं न बंधई।" (दशवैकालिक सूत्र–४) यत्ना से चलो, यत्ना से बैठो, यत्नापूर्वक शयन करो, यत्ना से बोलो, आहार-विहार तथा विचार यत्ना पूर्वक करो—यही साधना है।"

खाते, पीते, चलते सब हैं, किन्तु खाने, पीने व चलने की कला नहीं जानते। कला के बिना साधना नहीं आती। साधना के बिना आनन्द नहीं आता।

शरीर धर्म का साधन है। खाये बिना शरीर नहीं चलता। जीवन-निर्वाह के लिये भोजन आवश्यक है। मोक्ष की साधना भी शरीर के अभाव मे नहीं होती। तो क्या खाना मात्र साधना है ? नहीं, भोजन करना साधना है भी और नहीं भी।

जो भोजन केवल शरीर पुष्टि के लिये किया जाता है, वह साधना

नहीं। संयम की पुष्टि के लिये खाना साधना है। इसीलिये खाना चाहिये और नहीं भी। शरीर जब तक मोक्ष साधना में साधक बने, तब तक भोजन करना साधना है और जब शरीर साधक नहीं बनता तब शरीर छोड़ना ही उत्कृष्ट साधना है। घोर तपस्वी मुनि सुमतिचन्द्र जी का ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने है।

अभी दो महीने की बात है। मुनि सुमतिचन्द्र जी मेरे पास आये। हाथ जोड़कर कहने लगे—"गुरुदेव मैं कई महीनो से तपस्या कर रहा हूँ। तपस्या से जो आनन्द और समाधि का अनुभव होता है, वह वाणी का विषय नहीं बन सकता, केवल अनुभवगम्य है। मै यह चाहता था कि अन्तिम समय तक इसी प्रकार तपस्या करता रहूँ और जीवन का आनन्द लूटता रहूँ। किन्तु कुछ दिनो से भावना बदली है। इसका भी कारण है। जिस शरीर को मै साधना मे लगाये रखने के लिये कुछ आहार देता हूँ, वह उसेपचाता नहीं, खाते ही बाहर फेंक देता है। यह देख मुझे ग्लानि हो गई है। अब मैं चाहता हूँ कि जब शरीर भी मेरा साथ छोड़ रहा है तो क्यो नही मै इससे पहले सम्हल कर अपना कल्याण करूँ। भोजन मुझे नहीं भाता। साधना में शरीर बाधक बन रहा है। मैं इसे छोड़ना चाहता हूँ। कृपा कर आप मेरी मदद करें" अस्तु मुनि सुमतिचन्द्रजी ने वीरत्व दिखाया, वह इस आणविक युग को चुनौती है। किस प्रकार एक वीर साधक अपने बाधक तत्वो से लोहा ले सकता है, यह हमे इस ज्वलन्त घटना से सीखना है।

खाने के तीन उद्देश्य हैं

(१) स्वाद के लिये खाना, (२)जीने के लिये खाना और (३) संयम निर्वाह के लिये खाना। स्वाद के लिये खाना अनैतिक है, जीने के लिये खाना आवश्यकता है और संयम के लिये खाना साधना है, तपस्या है। इसलिये प्रत्येक ग्रन्थ पात्र-दान की महिमा बताता है। दान देने वाला धर्मी तभी बनता है, जबकि लेने वाले का संयम पुष्ट होता हो। दी जाने

वाली वस्तु शुद्ध हो, देने वाला शुद्ध हो, तथा लेने वाला संयमी हो—यही पात्र-दान है ।

अपने हिस्से का देना साधुओं की साधना का उपष्टम्भ होता है। जैसे तैसे देना धर्म नहीं, अशुद्ध देना धर्म है। न देने से शुद्ध देना ज्यादा हानिकारक है।

साधुओं के भोजन तथा तपस्या साधना के दो प्रकार हैं—भोजन संयम पुष्टि का कारण बनता है और तपस्या विशेष निर्जरा के हेतु। साधु नगर में रहे या अरण्य मे, साधना ही उसका जीवन है। अरण्यवास मे मौन रहना भी एक साधना का प्रकार है और नगर मे रहकर उपदेश देना भी साधना का ही प्रकार है। मेरा अनुभव है कि अरण्यवास की साधना से भी नगर मे रहकर पवित्र रहना अति कठिन है। सभी संयोगो मे मन को स्थिर रखना बहुत कठिन है। आज स्थूलिभद्र बनने की आवश्यकता नहीं। आज आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति आदर्शो को निभाये। वास्तव मे वह कठोर ब्रह्मचारी है, जो अपने घर मे रहकर भी ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करे। किन्तु सब कोई गृहस्थाश्रम मे रहकर ही ब्रह्मचर्य का पालन करे, यह कोई आवश्यक नहीं। आत्म-साधना के प्रत्येक प्रकार मे वीतराग की आज्ञा है। प्रश्न हो सकता है कि यदि वीतराग विपरीत आज्ञा दे दे तो साधक को क्या करना चाहिये ? इसका समाधान यह है कि व्यक्ति झूठ बोलता नहीं, बोला जाता है। असत्य के मूल भूत कारण हैं—क्रोध, लोभ, भय और हास्य। इन्हीं के कारण व्यक्ति असत्य बोलता है। वीतराग मे इनका अभाव होता है। उसमे इतनी पवित्रता आ जाती है कि असत्य का आचरण होता ही नहीं, इसीलिये उसकी वाणी आदर्श बनाती है।

शास्त्रों में कहा है—वीतराग की वाणी में संदेह करने वाला मिथ्यात्व को प्राप्त होता है। संदेहशील बन जाता है, इसीलिये श्रद्धा को दृढ करने के लिये यह मंत्र उपयोगी होगा कि—"तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहिं पवेइयं"—यही सत्य है ज वीतराग द्वारा कहा गया है।

श्रद्धा से व्यक्ति कितना ऊँचा हो जाता है, यह आचार्य भिक्षु की जीवनी से स्पष्ट हो जाता है। स्वामी जी के लिये जिनवाणी ही सब कुछ थी। उनकी प्रत्येक रचना मे, कथा मे जिनवाणी की पुट है। यही श्रद्धा उनकी जीवन-घटनाओं के कण कण से बोल रही है।

१२ दिसम्बर १९५६ का प्रात.कालीन प्रवचन।

प्रवचन (८)

वीरता की कसौटी

"पणया वीरा महावीहीं"—महापथ पर चलने वाले वीर होते है। शारीरिक बल वीरता का लक्षण नहीं, वह तो पशु में भी होता है। वीरता की कसौटी है—आत्मबल। यदि यह मानदण्ड न मानें तो डाकू, आततायी, सिंह बैल, कसाई आदि भी वीर की कोटि मे आजाते हैं। वे शारीरिक शक्ति की दृष्टि से बलवान हो सकते हैं, किन्तु वीर नहीं। जब शारीरिक बल के साथ सहिष्णुता का गुण जुड़ता है, तब वीरता आ जाती है।

भगवान महावीर अनन्त बली थे। अपनी कनिष्ठिका से मेरु को कंपित कर देने की शक्ति उनमें थी। उनके शरीर का संहनन "वज्र ऋषभ नाराच" था। संस्थान समचतुरस था। इतने पर भी वे महावीर नहीं कहलाए। जब वे संसार को छोड अकिंचन बने, दु.सह परिषहों को समभाव से सहने की जब उनमे क्षमता आई, तब देवो ने उन्हें "महावीर" कहा। केवल शरीर के बल की अपेक्षा से बनते तो कभी के वीर बन जाते।

कष्टो को समभाव से सहना वीरता है। कष्ट सहन का अर्थ केवल शारीरिक कष्ट सहन से ही नहीं, किन्तु मानसिक संक्लेष को धैर्यपूर्वक

सहना भी है। मानसिक संक्लेश के समय मनके संतुलन को खो देना पहले दर्जे की कायरता है। इसीलिए कहा है—

"सहनशील बन वीर बनेंगे, विश्वमैत्री का सबक सुनेंगे।
पशु बल को प्रश्रय नहीं देंगे, 'तुलसी धार्मिकता पनपायेंस',

सहनशील बनना वीरताकी ओर बढ़ना है। आचार्य भिक्षु ने हमारे सामने सहनशीलता का महान आदर्श रखा। आज हम उसी आदर्श पर चलते हैं इसीलिए हमे विरोध विनोद सा लगता है। हमारी सफलता का मूल यही है। यदि विरोधो को हम धैर्यपूर्वक नहीं सहते तो कभी के खत्म हो गए होते। हमारे विरोधी बन्धुओ ने हमारे प्रति क्या नहीं किया। यदि मै विरोध का इतिहास बताऊँ, तो काफी समय लग जायेगा। थोड़े में ही समझें कि विरोध हुआ है और आज भी होता है उससे घबराना नही चाहिए।

वीर का तीसरा गुण है—परमार्थ-वृत्ति। स्वार्थी को भय रहता है। भय कायरता है।

फलित यह हुआ कि (१) शारीरिक बल (२) सहनशीलता (३) पारमार्थिकता—इन तीनों के योग से व्यक्ति वीर बनता है और इन्हीं से साध्य की प्राप्ति होती है।

कुमार गजसुकुमाल "महा पथ" की ओर जाना चाहते थे। मन संसार से ऊब चुका था। दीक्षा ग्रहण कर भगवान् अरिष्टनेमि के पास आये। आज्ञा ले श्मशान की ओर चल पड़े। भीषण परिषह सामने आए। समता से सहन कर नश्वर शरीर को छोड़ चल बसे। यह विशेष साधना थी। महाव्रतो का पालन था। संयत अवस्था मे भी एक विशेष पड़िमा का ग्रहण था।

आज इतनी कठोर साधना होती नहीं। अणुव्रतो की साधना भी इसी ओर सही कदम है। व्रतो की साधना कष्टमय होती है। अपनी वृत्तियो का निग्रह करना पड़ता है। किन्तु यह सीधा मार्ग है।

१८ दिसम्बर सन् १९५६ की प्रात काल नया बाज़ार मे।

धर्म का रूप

धर्म के दो प्रकार हैं—(१) आचारात्मक धर्म (२) विचारात्मक धर्म। दोनो की पूर्णता ही जीवन को चमक दे सकती है।

विचारात्मक धर्म के लक्षण हैं—

(१) विचारो मे आग्रह हीनता

(२) दूसरो के विचार जानने में सहिष्णुता

(३) भावों मे पवित्रता

आचारात्मक धर्म के लक्षण हैं—

(१) आचार उच्च, निर्मल व पवित्र हो।

(२) व्यवहार शुद्ध हो।

(३) सत्य में निष्ठा हो, अहिंसा की साधना हो।

जो व्यक्ति कथनी और करनी में समान रहता है, वही सच्चा साधक है। जैन धर्म साधना का मार्ग है। इसका तत्व ज्ञान गम्भीर गहन है। फिर भी समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

१६ दिसम्बर १६५६ को इस प्रवचन के लिये आचार्य श्री सुबह को नया बाज़ार से मिनर्वा विशेष रूप से पधारे। प्रवचन के प्रारम्भ में आचार्य श्री ने सरल शब्दो मे नयवाद, प्रमाणवाद, तथा स्याद्वाद का सुन्दर विवेचन किया। प्रवचन के बाद श्रीमती सुचेता कृपलानी एम० पी० से बहुत देर तक चर्चा वार्ता हुई।

प्रवचन (१०)

मेधावी कौन ?

आचाराग सूत्र मे एक प्रसंग आता है—शिष्य पूछता है—मेधावी कौन ? आजकल साधारणतया जो पढ़ालिखा है, वही मेधावी माना जाता है, किन्तु यह अर्थ सही नहीं है। सस्कृत कोष मे "मेधा" बुद्धि का पर्याय-वाची शब्द है। किन्तु आगे भेद-प्रभेदो में ऐसा कहा गया है कि—सा मेधा धारणक्षमा—वही बुद्धि मेधा है जो धारण करने मे समर्थ है। सुनकर धारण करने वाला मेधावी है। यही इसकी सही परिभाषा है।

यह कोई बात नही कि पढ़े-लिखे ही मेधावी होते हैं, किन्तु आज तो पढे लिखे भी ठोठ (अबुद्धिशील) बहुत मिलते है। उनमें पढ़ाई सिर्फ भार स्वरूप होती है। जैसे कहा—"यथा खरश्चन्दन भारवाही, भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य"—जिस प्रकार गधे को चन्दन का बोझ भी बोझ स्वरूप ही लगता है, वह उसका आनन्द नहीं ले सकता। उसी प्रकार "पढ़े-लिखे" भी पढाई को भार स्वरूप ही लादे फिरते हैं, विद्या का आनन्द नहीं लूट सकते।

विद्या किसको दी जाय ? इसका भी विवेक रखना आवश्यक है। जैसे-तैसे या जिस किसी को दी जाने वाली विद्या फल नहीं लाती। उपनिषदो में एक सुन्दर प्रसंग आया है :—

एक बार विद्या ब्राह्मण के पास आई और उससे प्रार्थना करने लगी—हे भू-देव मेरी रक्षा करे। मै आपकी निधि हूँ। मुझे ऐसे व्यक्ति को कभी न दे जो (१) मत्सरी-ईर्ष्यालु है, (२) कुटिल है और (३) प्रमादी है। कारण कि इनके पास जाने से मेरा वीर्य-बल नष्ट हो जाता है। वे मेरा दुरुपयोग करते हैं। मत्सरी सदा छिद्रान्वेषी बना रहता है। ऋजुता के बिना विद्या फल नहीं लाती। कुटिल और मायावी अपने लक्ष्य मे सफल

नहीं होते। वे "विद्या विवादाय" को मानकर चलते हैं। इससे उनमे अभिमान आ जाता है। अभिमान ज्ञान का अजीर्ण है। वह अहित के लिये होता है। प्रमादी विद्या का ठीक प्रयोग नही कर सकता। उपयुक्त प्रयोग के अभाव में विद्या की कार्यजा शक्ति नष्ट हो जाती है। अतः मुझे आप ऐसे व्यक्ति को दे जो ईर्ष्या से रहित है, जो ऋजु है और जो अप्रमादी है, ताकि मै कुछ क्रियाशील बन सकूँ, मेरा वीर्य प्रकट हो सके।

यह कितना सुन्दर प्रसंग है। विद्या के साथ उपर्युक्त गुण आते हैं। तब व्यक्ति मेधावी कहलाता है। जैन सूत्रो मे मेधावी की परिभाषा करते हुये कहा है—"सड्ढी आणाए मेधावी"—जो आज्ञा में श्रद्धावान् है, वह मेधावी है। यहाँ आज्ञा और श्रद्धा ये दो बातें कही गई हैं। इन्हें समझना अत्यावश्यक है।

आप्तवाणी या आप्तोपदेश को आज्ञा कहा गया है। जिस उपदेश या प्रवचन से आत्म-साक्षात्कार की ओर प्रवृत्ति होती है, वह आज्ञा है। आज्ञा की भी अपनी सीमा है। प्रत्येक व्यक्ति की आज्ञा, आज्ञा नहीं होती। उन्हीं की वाणी या उपदेश आज्ञा है, जो आप्त हैं। आप्त की व्याख्या करते हुए कहा—"जहा वाई तहा कारी"—जो यथार्थवादी है तथा तदनुसार करने वाला है, वही आप्त है। तीर्थंकर, गणधर, चवदह पूर्वधर, मनः पर्यवज्ञानी तथा विशिष्ट अवधिज्ञानी आप्त कहे जाते हैं। वे कहीं स्खलित होते ही नहीं, ऐसा मैं नहीं कहता। स्खलित होने पर भी वे अपनी भूल समझ जाते हैं तथा उसका प्रायश्चित्त कर शुद्ध बन जाते जाते हैं। अतः वे आप्त ही हैं।

श्रद्धा और तर्क दो हैं। श्रद्धा मे तर्क नहीं होना चाहिये। तर्क दिमागी द्वन्द्व है। उससे सत्य तक नहीं पहुँचा जा सकता। वह तो केवल उलझाने में समर्थ है। जहाँ तर्क केवल जिज्ञासा के रूप में होता है, वहाँ श्रद्धा को उससे बल मिलता है, विकास होता है। "तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहिं पवेइय"—यह श्रद्धा का उत्कर्ष है। इसमें तर्क नहीं होता। तर्क आते ही श्रद्धा डगमगा जाती है।

मेधावी वह है, जिसकी रग-रग मे श्रद्धा के कण उछलते हैं। तर्क उसे उलझा नहीं सकता, आशंका उसे डिगा नही सकती।

२१ दिसम्बर १९५६ की प्रातःकाल काठोतिया भवन सब्जीमण्डी मे प्रवचन।

प्रवचन (११)

आत्मगवेषणा का महत्व

मनुष्य भौतिक गवेषणा मे कितना भी क्यो न बढ़ जाय, वह जीवन के सही लक्ष्य की पूर्ति की दिशा में कुछ नही कर सकेगा, जब तक कि वह आत्म-गवेषणा की ओर उन्मुख नहीं होगा। जैसा भारतीय महर्षियों ने कहा है—जिसने आत्मा को नहीं जाना, अपने आप की परख नहीं की, उसने कुछ नही जाना। सब कुछ जानकर भी वह अज्ञानी है। भारतीय तत्त्व-दर्शन मे उस विद्या को अविद्या कहा है, उस ज्ञान को अज्ञान कहा है, जहाँ आत्मा को पवित्र बना संयम की ओर नही लगाया जाता। इसीलिये मै आपलोगों से कहना चाहूँगा कि आप अपने में अन्तर्मुखी दृष्टि पैदा करें। उससे पराङ्मुख होने की न सोचें। केवल बहिर्पक्ष मे रचे-पचे रहने से कुछ नहीं बनेगा।

आज स्कूलो, कालेजो, युनीवर्सिटियो की दिनो दिन वृद्धि हो रही है। विभिन्न विषयो पर बड़े-बड़े गवेषणा-केन्द्र काम कर रहे हैं, पर आत्म-गवेषणा की ओर उपेक्षा सी हो रही है। यह भूल है। इसीलिये सत्य, शौर्य, शील और नीति आदि मानवीय गुण बढने के बजाय घट रहे हैं। वह जीवन क्या जीवन कहा जाय, जो असत्य, चौर्य और अशील

से जर्जर है। वह कैसा जीवन है ? वह तो केवल हाड़-मांस का लोथडा है।

२६ दिसम्बर १६५६ की दोपहर को ३ बजे आचार्य श्री के इस प्रवचन की व्यवस्था श्रीरामइण्डस्ट्रियल रिसर्च इन्स्टीट्यूट मे विशेष रूप से की गयी थी।

इन्स्टीट्यूट का पुस्तकालय भवन अधिकारियो व कार्यकर्ताओ से खचाखच भरा था। आचार्य श्री के पधारने पर इन्स्टीट्यूट के डाइरेक्टर डा० टी० एन० दारूवाला का स्वागत भाषण हुआ।

कार्यकर्ताओ के अनुरोध पर आचार्य श्री ने गवेषणाशाला के कई स्थानों का निरीक्षण किया। लोहे के काट से बनी हुई रुई भी देखी और कुछ जाँच कर साथ भी लाये।

प्रवचन (१२)

आत्मविस्मृति का दुष्परिणाम

आचार्य श्री ने अपने प्रवचन में कहा—किसी के प्रति शत्रुभाव न रखना, किसी का बुरा न चाहना और न अपनी ओर से किसी के प्रति प्रतिकूल आचरण करना अहिंसा है। यह मैत्री और बन्धुत्व का मूल है। अणुबम और उद्जनबम की विभीषिका से संत्रस्त मानव के लिये यही एक मात्र त्राण है। अहिंसा कायरों का नहीं, वीरो का धर्म है। इसके लिये बहुत बड़े आत्मबल और धीरज की अपेक्षा है। हिंसा और प्रतिशोध के दुर्भावो से अभिशप्त मानवता के लिये यही वह मार्ग है, जो उसे शान्ति की राह पर ले जा सकता है। अणुव्रत आन्दोलन

यही तो सिखाता है कि किसी के प्रति आक्रांता मत बनो, निरपराध को मत सताओ, अर्थ लिप्सा और लोभ के भयावह तूफानों मे अपना संतुलन न विगाड़ो। धन जीवन का साध्य नहीं हैं। उसके पीछे सत्य-निष्ठा और सदाचरण को मत छोड़ो।

आज के मानव की सबसे बड़ी भूख यह है कि वह नई-नई बातों को जानने, खोजने और समझने की कोशिश करता है, पर वह अपने आपको भूल जाता है। आत्मा अनन्त शक्तियो और सुखो का स्रोत है, जिसे पहचानने की वह जरा भी चिन्ता नहीं करता।

अणुव्रत आन्दोलन व्यक्ति को आत्मोन्मुख बनाना चाहता है। उसका अर्थ है—जीवन मे समाई बहिर्मुखता का परिहार और अन्तर्मुखता का संचार। यदि ऐसा हुआ तो अर्थ-लोलुपता और महत्वाकांक्षा से जन्य काला बाजार, धोखा, विश्वासघात और रिश्वत जैसी अनैतिक और अनाचार मयी प्रवृत्तियाँ स्वतः उन्मूलित हो जाएँगी। मै पुनः आप लोगो से यही कहना चाहूँगा कि अणुव्रत आन्दोलन जन-जन को आत्मोन्मुख बनाने का आन्दोलन है।

अन्त मे आपने चुनावों मे अनैतिकता और अनुचित प्रवृत्तियों के परिहार के लिये उद्‌बोधित नियमो की विस्तृत व्याख्या की।"

५ जनवरी १९५७ को प्रातःकालीन प्रवचन सदर बाजार मे हुआ। आहार-पानी से निवृत्त हो आचार्य श्री दोपहर मे १ बजे ओल्ड सैक्रेटरीएट के विशाल भवन मे पधारे, जहाँ कि प्रवचन की विशेष व्यवस्था की गई थी। दिल्ली राज्य के चीफ कमिश्नर श्री ए० डी० पंडित ने आचार्य श्री का स्वागत किया। आचार्य प्रवर चीफ कमिश्नर के साथ असेम्बली हॉल मे पधारे। चीफ कमिश्नर श्री ए० डी० पंडित ने आचार्य श्री का अभिनन्दन करते हुये कहा—

जीवन-व्यवहार की छोटी-छोटी बातों पर हमे गौर करना होगा। उनमे ईमानदारी और सचाई का बहुत बड़ा मूल्य है। यही वे बातें हैं, जिनसे मनुष्य का चरित्र ऊँचा उठता है। आचार्य श्री तुलसी द्वारा

प्रवर्तित एवं संचालित अणुव्रत आन्दोलन जीवन-व्यवहार मे शुद्धि और चरित्र मे ऊंचापन लाना चाहता है। पूजा आदि परम्पराओ का पालन मात्र धर्म नहीं है। धर्म का अर्थ है—नैतिक आचरण। आज जहां हमारे देश मे पंचवर्षीय योजना के रूप मे सामाजिक प्रगति का काम चल रहा है, वहां नैतिक प्रगति की भी बहुत बड़ी जरूरत है। उसके बिना हमारा काम पूरा नहीं होगा। किसी भी देश में नीतिमान् और चरित्रवान् लोगों की आवश्यकता होती ही है। हम अपना चरित्र सुधारेंगे तो आर्थिक सुधार पर भी इसका असर पडेगा। आचार्य जी बहुत बड़ा काम कर रहे हैं, उनके कार्य मे हमे सहयोग देना चाहिये।

प्रवचन के बाद प्रो० एम० कृष्णमूर्ति ने अंग्रेजी मे अणुव्रत आन्दोलन का संक्षिप्त परिचय दिया। श्री गोपीनाथ अमन, अध्यक्ष दिल्ली राज्य सलाहकार समिति के द्वारा आभार प्रदर्शन करने के बाद आज का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

प्रवचन (पिलानी में) (१२)

ऋषि प्रधान देश

लाखो योद्धाओं को जीतना सहज है पर अपनी एक आत्मा पर विजय पाना मुश्किल है। जिसने अपनी आत्मा को जीत लिया है अथवा भवभ्रमण मे डालने वाले रागद्वेष आदि आत्म-शत्रुओ को जिसने क्षीण कर दिया है, वह वास्तव में विश्व विजेता है। वह चाहे जिन, विष्णु या बुद्ध किसी भी नाम से कहलाए, उस परम पुनीत आत्मा को हमारा नमस्कार है।

पिलानी मे आने का मेरा यह पहला ही अवसर है। जब मै राज-

स्थान मे पर्यटन करता था तो सुना करता था कि पिलानी विद्या का एक बहुत बड़ा केन्द्र है। बहुत से श्रावक मुझे यहाँ आने को प्रेरित भी करते थे। पर मैं ना आ सका। अब की बार दिल्ली से लौटते हुए मैने सोचा कि पिलानी भी जाना चाहिये और इसलिये थोडा चक्कर खाकर भी यहाँ आना तय कर लिया। आज पिलानी मे आकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, जैसी कि विद्या केन्द्रो मे जाकर मुझे हमेशा हुआ करती है।

इस प्रथम प्रसंग पर अधिक न कहकर केवल इतना ही कहना चाहूँगा कि भारतीय संस्कृति अपने ढंग की अनूठी है, यहाँ आत्म-साधना और त्याग का महत्व रहा है। इसलिये जहाँ एक ओर इसे कृषि प्रधान देश कहा जाता है वहाँ मैं इसको ऋषि प्रधान देश कहता हूँ। यह ऋषियो, ज्ञानियो, और तपःपूत साधको का देश रहा है परन्तु खेद का विषय है कि आज तप—जीवन शोधन की परंपरा शिथिल होती जा रही हैं। जीवन दायिनी ऋषिवाणी आज ह्रासोन्मुख है। फलतः जीवन सदाचरण और सत् चर्या से सूना हुआ जा रहा है। सांस्कृतिक परपराएँ डगमगा रही हैं। आज भारतीयो को जगाना है। अपने अस्त-व्यस्त चारित्र्य जीवन और डगमगाती सांस्कृतिक परंपराओ को सहारा देना है। वह सहारा एक मात्र धर्म है। मै उसे संप्रदाय, जाति और वर्ग भेद से नहीं बाँधता। मेरी निगाह मे धर्म वह है जो विश्व मैत्री और विश्व बंधुत्व की सुदृढ़ भित्ति पर अवलंबित है, जो सत्य और अहिंसा के विशाल खभो पर टिका है, जो निर्धन, धनवान और सबल, दुर्बल के भेद से अछूता है। जो शांति का स्रोत और करुणा का निकेतन है। मै चाहूँगा, आज का भारतीय उस व्यापक और विश्व जनीन धर्म से अपने को अनुप्राणित करे। विद्यार्थी जीवन से ही इन्हीं सद्वृत्तियो की ओर झुकाव हो तो कितना अच्छा हो। विद्यार्थियो मे विनय, विवेक और आचार की मै बहुत बड़ी आवश्यकता समझता हूँ। मुझे आशा है विद्यार्थी इस ओर आगे बढ़ेंगे।"

यह प्रवचन पिलानी के बिडला कालेज मे सबसे पहला था। दिल्ली से सरदार शहर को लौटते हुए आचार्य श्री १६ जनवरी १९५७ को

दोपहर १२ बजे 'मोखा' से ४ मील का विहार करके राजस्थान के सुप्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र पिलानी पधारे।

मार्ग में सेठ जुगलकिशोर जी बिडला तथा बिडला विद्या विहार के कुलपति श्री शुकदेव जी पाडे आदि कई सज्जन एक मील के करीब अगवानी तथा अभिनन्दन करने आये। यहाँ सबसे पहला कार्य-क्रम बिड़ला हाई स्कूल में 'स्वागत समारोह' तथा विद्यार्थी सम्मेलन का सम्मिलित आयोजन था। विशाल हॉल विद्यार्थियों और नागरिकों से भरा था। आचार्य श्री के हॉल में पधारने पर सबने बड़ी शांति से प्रणाम और अभिवादन किया।

सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला ने अतिविनम्र और श्रद्धायुक्त शब्दों में आचार्य श्री का अभिनन्दन किया।

मुनि श्री नगराजजी ने छात्रों को आचार्य श्री का तथा उनके सान्निध्य में चलने वाले कार्यक्रमों का परिचय दिया। उसके बाद आचार्य श्री का प्रभावशाली प्रवचन हुआ।

प्रवचन (१४)

विद्यार्थी जीवन का महत्व

भववीजाङ्कुर जनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥

मेरी प्रसन्नता की सीमा नहीं रहती, जब मैं अपने को विद्यार्थियों के बीच पाता हूँ। आज इन छोटे-छोटे खिले हुए फूलों को सम्मुख देखकर सचमुच मुझे बहुत हर्ष है। हम लोग शोधक हैं, हमें गन्दगी पसन्द नहीं, हम सफाई चाहते हैं। अक्सर ऐसा होता है कि हमें कीचड़ से भरे हुए

वस्त्र धोने पडते हैं। अच्छा हो कि वे उस रूप मे मैले ही न किये जाएँ। हमे मूल रूप मे ही मिलें और हम उन्हें संस्कारित कर दें। मलिन को पुनः शुद्ध करने मे बड़ी कठिनाई होती है और उन्हें सुधारने में बहुत सा समय खर्च हो जाता है। किन्तु हम देखते हैं, बच्चो के अभिभावक इस विषय में सतर्क नहीं रहते। मुझे खुशी है कि प्रस्तुत संस्था में बालको को नैतिक दृष्टि से अच्छे साँचे मे ढाला जा रहा है। बच्चों के शात वातावरण को देखकर मुझे लगा कि वे काफी संयत बनाये जा रहे है। राजस्थानी कहावत है—"गाँव की साख भरे वाडा", गांव कैसा है, इसकी साक्षी ग्रामोपकंठ मे बने बाड़े ही दे देते हैं।

मै मानता हूँ कि प्रत्येक को विद्यार्थी बने रहना चाहिये। जो विद्यार्थी बना रहेगा, वह हर जगह कुछ न कुछ पा सकेगा, क्योकि उसके अर्जन का रास्ता सदा खुला रहता है। विद्यार्थी रहने का अर्थ है—कुछ न कुछ प्राप्त करने की अवस्था मे रहना। इस दृष्टि से हम स्वयं विद्यार्थी हैं और रहना भी चाहते हैं।

मैं मानता हूँ संस्कार भरने की दृष्टि से बाल्य-अवस्था से बढकर कोई अन्य अवस्था नहीं। इसमे जो संस्कार भरे जाते हैं, वे गहरे जम जाते हैं। पर खेद है कि आज जो विद्यार्थियो को संस्कार मिल रहे हैं, वे अच्छे नहीं हैं। आज वे नास्तिकता के वातावरण मे पल रहे हैं, जहाँ उन्हें आत्मा, परमात्मा, धर्म और सद्व्यवहार की कोई शिक्षा नहीं मिलती। प्रत्युत इनसे विरोधी तत्त्व उनके जीवन मे भरे जाते है। भौतिकता आज चरम सीमा पर है और भोग उसमे अधिकाधिक फँसते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में छात्रो मे भी उसका आकर्षण स्वतः आ जाता है और छात्र अपने लक्ष्य को पाने मे सफल नही होते। आज शिक्षा-केन्द्रों मे भी इस बात की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। मै समझता हूँ धर्म के मौलिक आदर्श यदि छात्रो के जीवन मे आ जाएँ तो उनकी नींव पक्की हो जाती है। आजीवन वे चरित्र निष्ठ और उदार बने रहते हैं।

धर्म इस्लाम, जैन, ईसाई और हिन्दू नहीं। ये तो धर्म के तरीके हैं।

धर्म का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है "धारणात् धर्म उच्यते" जो धारण करने वाला है वह धर्म है, और प्रवृत्ति लभ्य अर्थ है —आत्मा की शुद्धि का साधन। जिससे आत्मा अपनी शुद्धावस्था को पाती है, वह धर्म है। जैसे शरीर को आभूषित करने के लिये सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहने जाते हैं वैसे ही जीवन को अलंकृत करने के लिये धर्म का आचरण आवश्यक है।

धर्म का स्वरूप है—अहिंसा, सत्य और उदारता। इस धर्म का संबन्ध किसी जाति, वर्ग और संप्रदाय से नहीं, इसका सीधा संबन्ध जीवन और आत्मा से है। जीवन को परिमार्जित करने के लिये ही इसका उपयोग होता है। जीवन जब मंज जाता है, आत्मा के समस्त बंधन टूट जाते हैं तो आत्मा—परमात्मा मे कुछ भेद नहीं रहता।

सबसे पहली बात—मै कौन हूँ और मेरा क्या कर्त्तव्य है—यह व्यक्ति को भान रहे। यह ज्ञान उसे नहीं रहता तो वह कर्त्तव्योन्मुख कैसे हो सकता है? इस प्रसंग को स्पष्ट करने के लिये एक कहानी सुनादूँ, क्योंकि सामने बाल मंडली जो है।

एक शेर के बच्चे की माँ मर गई। उसके लिये बडी दुविधा हुई। जंगल मे उसका कौन सहायक? विधिवश एक ग्वाला उधर से निकला। उसने बच्चे को देखा और उठा लिया। बकरियो का दूध पिला पिला कर उसे पाला। जगल मे बकरियो के साथ वह भी घास चरने लगा। उसे यह ज्ञान तक न रहा कि मैं शेर हूँ।

अकस्मात् एक दिन एक शेर आया। उसकी आवाज सुनकर सारी बकरियाँ भागने लगीं। वह भी भागा। मगर पीछे मुडकर जब उसने उस शेर को देखा, तब सोचा—अरे! यह तो मेरे जैसा ही है। क्या मैं ऐसी आवाज नहीं कर सकता। फौरन वह अपने आपको पहचान गया। इसी प्रकार अपने स्वरूप को पहचानने की आवश्यकता है।

अभिभावको और अध्यापकों को चाहिए कि वे बच्चे को शिक्षा पुस्तको से नहीं, अपने जीवन व्यवहार से दें। जीवन व्यवहार की शिक्षा स्थायी होती है।

आज छात्रो मे जो उद्दंडता और अनुशासन हीनता बढ़ रही है, वह खतरनाक है। छात्रो को हर एक छोटी-छोटी बात पर भी विशेष ध्यान रखना चाहिये

कांग्रेस के महामन्त्री श्री श्रीमन्नारायण जी ने अणुव्रत गोष्ठी मे कहा था कि मुझे अणुव्रत आन्दोलन की इसी बात ने आकृष्ट किया है कि इसके नियम छोटे-छोटे दैनंदिन व्यवहारो को विशेष महत्व देते हैं तथा उन्हें सुधारने का आग्रह रखते हैं।

जैन धर्म मे जीवन शुद्धि की छोटी-छोटी चीजो को भी विशेष महत्व दिया गया है। साधक पूछता है—

कहं चरे कहं चिट्ठे, कहं मासे कहं सए।
कहं भुंजंतो आसंतो, पाव कम्मं न बंधई॥

प्रभो ! बतलाएँ, मैं कैसे चलूँ, कैसे स्थिर रहूँ, कैसे बैठूँ और कैसे सोऊँ ? कैसे भोजन करते और बोलते हुए के मेरे पाप कर्म न बँधें ? गुरु उसे विधि बताते हुए कहते हैं—

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो आसन्तो, पावकम्मं न बंधई॥

अर्थात् यत्नपूर्वक चल, स्थिर रह, बैठ और सो। यत्नपूर्वक खाते हुए और बोलते हुए के पाप कर्म नहीं बंधते। क्योकि उससे किसी को भी कष्ट नहीं होता।

भारतीय संस्कृति का मूलमन्त्र है—"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"—जिन चीजो से अपने को दुःख होता है, वे दूसरो के लिये भी न की जाएँ। अणुव्रत आन्दोलन की यही प्रेरणा है। ये नियम बच्चे, तरुण और वृद्ध सभी के लिये समान रूप से आवश्यक हैं। चाहे कोई भी हो, जीवन में सीमा आवश्यक होती है। अणुव्रत नियम जीवन मे सीमा निर्धारण करते हैं।

अध्यापकों का दायित्व

अध्यापको को लक्ष्य करके आचार्य श्री ने कहा—

"अध्यापक शिक्षा के अधिकारी हैं और वे शिक्षा देते हैं पर मैं समझता हूँ वे शिक्षाएँ उनके जीवन में ओत-प्रोत होनी चाहिये। ऐसा होने पर आपको कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, छात्र स्वयं आपके जीवन से शिक्षा ग्रहण करेंगे। इसलिये मैं चाहता हूँ, अध्यापक अणुव्रतो के साँचे मे ढलें। जो आप विद्यार्थियो से चाहते हैं, पहले वह स्वयं करें। अपने को संयत बनाये बिना और खुद का दमन—नियंत्रण किये बिना न हम दूसरो को कुछ सिखा सकते हैं और न स्वयं ही सुखी बन सकते हैं।"

प्रश्नोत्तर

प्रवचन के बाद कुछ प्रश्नोत्तर भी हुये। विद्यार्थियो ने विविध प्रश्न किये, जिनका आचार्य प्रवर ने सरल एव बोधगम्य भाषा मे समाधान किया।

प्रश्न—आत्मा परमात्मा मे फर्क नही तो भय कैसा ?

उत्तर—परमात्मा सर्व द्रष्टा है। उससे कोई कार्य छुपा नही रहता। अत. हम बुरा कार्य न करे, यह भावना रखना ही डर है और यहाँ हिंसात्मक भय से मतलब नही।

प्रश्न—आप क्या करते हैं ?

उत्तर—एक वाक्य मे इसका यही उत्तर है कि हम साधना करते हैं और विस्तार मे पढना, लिखना, उपदेश देना, स्वाध्याय करना आदि अनेक संयमानुकूल प्रवृत्तियाँ करते हैं।

प्रश्न—आप क्या खाना खाते हैं ?

उत्तर—हम सात्विक भोजन करते है, मादक खाना नही खाते, कच्चे फल नही लेते। मास नही खाते।

प्रश्न—ब्रह्मचर्य को आप अणुव्रत कहते हैं तो महाव्रत किसे कहेंगे ?

उत्तर—ब्रह्मचर्य का सपूर्ण पालन महाव्रत है और उसके अश का पालन अणुव्रत कहलाता है।

प्रश्न—आपके मन मे जैन धर्म का प्रसार करने की इच्छा कैसे उठी ?

उत्तर—मेरे पूर्वज जैन धर्मावलम्बी रहे है। मै भी गृहस्थावास मे उसे ही मानता रहा हूँ। कुछ पूर्व सस्कारो की और कुछ यहाँ की प्रेरणा मिली। फलस्वरूप मै जैन धर्म का परिव्राजक और प्रचारक बन गया।

इस प्रवचन की व्यवस्था १६ जनवरी सन् १९५७ को विडला माटेसरी पब्लिक स्कूल मे विशेष रूप मे की गयी थी।

प्रवचन के बाद मुख्याध्यापक श्री राधारमण पाठक ने आचार्य श्री के प्रति आभार प्रदर्शन किया। विद्यार्थियो द्वारा समवेत स्वर मे गाये गये सामूहिक गान से कार्य-क्रम समाप्त हुआ।

प्रवचन (१५)

विद्यार्थी-भावना का महत्त्व

सब से पहले मुझे आप से क्षमा याचना करनी है। वह इसलिये कि मेरा कार्यक्रम सूचना के अनुसार नहीं हो पाया। परसो धुंध कुहरो के कारण मै नहीं पहुँच सका। कल वर्षा ने रोक लिया। आप सोचें—हम कितने कमजोर है। साधारण से साधारण चीजें हमे रोक देती है। जहाँ आपको बडे बडे दम भी नही रोक सकते, वहाँ मामूली से मामूली चींटिया और वर्षा की बूंदें भी हमे रोक देती हैं। पर इसके माने आप यह न समझें कि हम वस्तुत. कमजोर है। भारतीय संस्कृति मे यह बात नहीं है।

पाप भीरुता, कायरता या दुर्बलता नहीं, वह तो आत्मबल का प्रतीक है। अतः अपनी चारित्र्य चर्या के भौतिक नियमों को सुरक्षित रखने की दृष्टि से ही मैं दो दिन तक नहीं आ सका। कल आप लोग मेरा प्रवचन सुनने को आये और निराश लौटे, इसका मुझे दु.ख है। कल मुझे अपने स्थान पर बैठे बैठे कभी प्रकृति पर रोष आता था, कभी यह पद याद आता था कि—"श्रेयांसि बहुविघ्नानि"—कल्याण कार्यों में अनेक विघ्न आ ही जाते हैं। पर मनुष्य उनसे परास्त न हो, वह उल्टा उनको हटाता चले, यही सबसे सुंदर बात है।

मैंने जो क्षमा याचना की बात कही सो तो जैन दर्शन का आदर्श है—

"खामेमि सव्व जीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे" अतः इस दृष्टि से मैं अगर आपसे क्षमा याचना करूँ तो उचित ही है। मैं बहुत दिनो से सोच रहा था कि पिलानी विद्या केन्द्र मे मैं आऊं। बहुत से लोगो ने मुझ से यहाँ आने का आग्रह भी किया पर हम पैदल चलने वालो के लिये यह इतना सहज नहीं होता, अतः ऐसा नहीं हो सका। श्री जुगलकिशोरजी बिड़ला ने भी मुझे यहाँ आने के लिये कहा था। अब मैं यहाँ आप लोगों के बीच हूँ। विद्यार्थियो मे रहकर मुझे एक स्वर्गीय सुख का अनुभव हुआ करता है। यह मेरी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इसका कारण भी है—आप विद्यार्थी हैं और मैं भी विद्यार्थी हूँ। आप मुझे कहेंगे, आप आचार्य हैं, महात्मा हैं। पर मै आप से सच कहता हूँ—मै तो जीवन-भर विद्यार्थी ही रहना चाहता हूँ और यह मानता भी हूँ कि मनुष्य को जीवन भर विद्यार्थी ही रहना चाहिये।

भर्तृहरि ने एक जगह कहा है—

"यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्।"

यह ऋषि वाणी है और अनुभूति की वाणी है। इसका मतलब है, मनुष्य जब तक अल्पज्ञ होता है, तब तक वह अपने आपको महान् मानता है। वही फिर ज्यों-ज्यों ज्ञान को प्राप्त करता जाता है, त्यों-त्यों स्वयं ही

यह समझ सकता है कि वह कितना अल्पज्ञ है। अतः मैं तो अपने आपमें जीवन-भर विद्यार्थी रहने की आवश्यकता अनुभव करता हूँ।

मुझे जीवनभर विद्यार्थी रहने की शिक्षा मिली है। और आज भी जब मै अपने साधु साध्वियो को पढ़ाता हूँ तो उसमें भी मुझे बड़ी नई चीजें मिल जाती हैं। वास्तव में मै इनसे बहुत सी शिक्षाएँ पाता हूँ। अध्यापकगण शायद इसका अनुभव ज्यादा कर सकते है।

मुझे स्मरण होता है जब मैं अपने पूर्वाचार्य श्री कालूगणी जी के पास पढा करता था, कभी कभी उनकी कुछ बाते मेरी समझ मे नहीं आती थीं। वे मुझे बार बार बताते पर तो भी मै समझ नहीं पाता था, जब मै आज उन्ही बातो को दूसरों को पढ़ाता हूँ तो मुझे बहुत से अनुभव होते हैं। इसलिये मै बहुधा कहा करता हूँ कि वास्तव मे प्रोफेसर ही छात्र होते है और छात्र प्रोफेसर।

आप यह सुनकर खुश होंगे कि आज तो महाराज ने अच्छा कहा— हम विद्यार्थियों को भी प्रोफेसर बना दिया और प्रोफेसरो को छात्र। मुझे लगता है अध्यापकगण वास्तव मे अपने को छात्र अनुभव करेंगे।

इन चार-पाँच वर्षो में मैं अनेक विद्यार्थियो के संपर्क मे आया हूँ। वैसे आप भी छात्र हैं और मैं भी छात्र हूँ। तब आप और मै तो एक ही हैं। मैं आपको क्या बताऊँ। आप सोचते होगे, मैं बड़े-बड़े नेताओ से मिलकर आया हूँ, आपको कुछ नई बात सुनाऊँगा। पर मेरे पास ऐसा नया तो कुछ भी नही है, जो आपको सुना सकूँ और सोचता हूँ कि नया कुछ होगा ही नहीं। आचार्य हेमचन्द्र ने भगवान महावीर की स्तुति करते हुए लिखा है—

यथास्थित वस्तु दिशन्नधीश !
नताहृशं कौशल मा श्रितोऽसि।
तुरङ्ग शृङ्गाण्युपपादयद्भ्यो,
नम. परेभ्यो नव पंडितेभ्यः ॥

भगवन् आप तो वस्तु का जैसा स्वरूप है, वैसा विवेचन करते हैं।

अतः आप में उन अन्य दर्शनीय नये पंडितों जैसा कौशल कहाँ जो घोड़े के भी सींग होने का निरूपण कर डालने की क्षमता रखते हैं ?

यह व्याज स्तुति है। मेरा तो यह मत है कि नया ससार मे कुछ होता ही नहीं। अतः अच्छा हो, हम उन पुराने तत्वों की अवगति कर लें।

सबसे पहले हमें इस बात पर सोचना है कि हमारा जीवन क्या है ? वह इधर और उधर से रहित नहीं है, क्योंकि वह धारावाही प्रवाह है। इससे यह स्वीकार करना पड़ता है कि हमारा पूर्व जन्म था और पुनर्जन्म भी ग्रहण करना पड़ेगा। अगर हम आगे और पीछे दोनों तरफ नहीं देखेंगे तो यथेष्ट विकास नहीं कर पायेगे। इसे ही मैं आस्तिकवाद कहता हूँ। यानी आत्मा-परमात्मा, धर्म कर्म की केवल विवेचना ही नहीं, मान्यता भी हो, यही आस्तिकवाद है। अतः सबसे पहले मैं आपको यह कहना चाहूँगा कि आप आत्मा के प्रभाव मे विश्राम कर गुमराह न हो जावें, केवल तर्क में ही अपने आपको न भूल जाइये।

ऋषियों ने हमें तीन बातें बताई हैं—श्रद्धा, ज्ञान और चरित्र। इसीलिये शास्त्रों में कहा गया है—अगर सम्यक् श्रद्धा न हो तो ज्ञान होते हुए भी आदमी अज्ञानी हो जाता है। श्रद्धायुक्त आदमी ही ज्ञानी है। तीसरी चीज है—चरित्र यानी सदाचरण। इसीलिये कहा गया है—सम्यग्ज्ञान दर्शन चरित्राणि मोक्ष मार्गः।

आज मेरी समझ मे सबसे बड़ी जो कमी है वह है श्रद्धा की। उसके बिना मनुष्य को अपने आपको पहचानने की ताकत नहीं मिल सकती। दर्शन और विज्ञान में यही फर्क है। दर्शन हजारों वर्षों से चला आ रहा है पर उसके चिंतन मे हमेशा आध्यात्मिकता का अंकुर रहता है। इससे दार्शनिकों ने गहरे चिन्तन के बाद सत्य और अहिंसा के तत्व संसार को दिये हैं। वैज्ञानिकों ने भी गहरा अनुशीलन किया और इसके फलस्वरूप उन्होंने संसार को एटमबम और हाइड्रोजन बम दिये। समुद्र-मंथन में अमृत भी निकला और विष भी। अमृत से संसार का भला हुआ और

विष से वह हत हो गया। इसी प्रकार दार्शनिकों के मंथन से सत्य और अहिंसा निकली और वैज्ञानिकों के मंथन से बम।

इसीलिये आज उन्हीं वैज्ञानिकों का जिन्होंने बम तैयार किये हैं, कहना है कि जब तक इन पर आध्यात्मिकता का अंकुश नहीं होगा, तब तक वास्तविक शांति स्थापित नहीं हो हो सकती।

आज सबसे पहले हमे यह सोचना है—हमारा लक्ष्य क्या है ? कुछ लोग तो इस विषय पर सोचने का कष्ट नहीं करते और कुछ लोग सोचते हैं—वे अपनी पारिवारिक दुविधाओं को हटाना ही अपना लक्ष्य मानते हैं। पर यह मूल मे भूल है। विद्या का यह लक्ष्य कदापि नहीं हो सकता। उसका लक्ष्य तो है—अपने आपको सुसंस्कृत बनाना। इसीलिये कहा गया है—अहंसु विज्जा चरणं पमोक्खं, साविद्या या विमुत्तये" यानी विद्या का लक्ष्य है मुक्तिपाना। मुक्ति का अर्थ है वास्तविक शांति। यदि शिक्षा से वास्तविक शांति नहीं मिली तो अपना पेट तो कीड़े मकोड़े भी भर लेते हैं। उसके लिये इतना शिर-स्फोटन क्यों ? पर विद्या का वास्तविक लक्ष्य है—स्थायी शांति।

विद्या अर्जन का सही अर्थ है—जिस शिक्षा को पुस्तकों मे से प्राप्त किया, उसे किताबों में ही नहीं, अपने जीवन मे उतारा जाए। कदम-कदम पर वह जीवन में व्यापक बने। इसीलिये तो जिस वाक्य को अन्य विद्यार्थियों ने पाँच मिनट में याद कर लिया था, उसे धर्मपुत्र युधिष्ठिर महीनों में भी याद नहीं कर पाये। वह वाक्य था "क्रोधं मा कुरु" अर्थात् क्रोध मत करो। उसे सबने याद कर लिया, दुर्योधन ने भी याद कर लिया, पर धर्मपुत्र याद नही कर पाये। अध्यापक ने पूछा क्या सब ने याद कर लिया ? सबने कहा—हाँ कर लिया। पर धर्मपुत्र बोला गुरुदेव ! आपने पहला वाक्य बताया था—"सत्यं वद" अर्थात् सत्य बोलो, वह तो याद हो गया है, पर "क्रोधं मा कुरु"—यह याद नहीं हो पाया है। अध्यापक को गुस्सा आ गया। आप जानते हैं, पहले की अध्ययन-प्रणाली दूसरी थी और अध्ययन का मानदंड भी दूसरा था।

पहले अध्यापक छात्रों की मरम्मत भी कर देते थे, पर आज युग बदल गया है। उल्टे विद्यार्थी अध्यापकों की मरम्मत कर देते हैं। अतः अध्यापकों को डर रखना पड़ता है, कहीं विद्यार्थी उनका अपमान न कर दें। इसीलिये वे विद्यार्थियों को कुछ कहते भी नहीं। अस्तु !—हाँ तो अध्यापक ने गुस्से में आकर धर्मपुत्र के जोर से एक चाँटा लगा दिया। इतना होना था कि धर्मपुत्र खुशी से उछल पड़े और कहने लगे—अच्छा, याद हो गया-याद हो गया।

अध्यापक विस्मय में पड़ गये। उन्होंने धर्मपुत्र से इसका कारण पूछा। धर्मपुत्र कहने लगे—मैं याद होना उसको मानता हूँ, जितना मैं अपने जीवन में उतार लेता हूँ। अन्यथा पढ़ने मात्र से मैं किसी बात का याद हो जाना नहीं मानता। मैंने इसका अभ्यास तो किया था पर आज मार पड़ने पर मैंने यह जान लिया कि वास्तव में वह पाठ मुझे याद हो गया है।

आज के हमारे विद्यार्थियों ने अनेकों डिग्रियाँ प्राप्त कर ली हैं पर क्या उन्होंने यह पाठ पढ़ा है ? क्या प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वे गुस्सा नहीं करते ? सावना यही है कि जो कुछ पढा जाए, उसे जीवन में उतारा जाए। धर्म शास्त्रों में अनेकों अच्छी बातें लिखी पड़ी हैं, पर आज आवश्यकता है उनको जीवन में उतारने की। यदि ऐसा नहीं हुआ तो पढ़े और अनपढे में कोई अंतर नहीं है। शास्त्रों मे पूछा गया है—पंडित कौन ? वहाँ उत्तर है—जिसका जीवन संयत है, वही पंडित है। अतः आज ऐसा वातावरण बनाने की आवश्यकता है।

नेता लोग भी चिंतित हैं। वास्तव मे हैं या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता पर देखने में तो वे बड़े चिंतित लगते हैं। वे कहते हैं—आज की शिक्षा प्रणाली सुन्दर नहीं है पर हम इसे सुधार भी नहीं कह सकते। तो मैं कहा करता हूँ—आखिर इसे सुधारने के लिये क्या कोई ब्रह्मा भी आयेंगे ? पर यह सही है कि वे चिंतित हैं। उनके पास कोई उपाय नहीं ? इसका कारण क्या है ? स्पष्ट है—वातावरण उनके अनुकूल नहीं

है। वे जो सुधार करना चाहते हैं, वह कर नहीं पा रहे हैं।

आज थोडी सी बात हुई कि विद्यार्थी हड़ताल, लूटपाट और आगजनी करने में भी नहीं सकुचाते। यह देख कर बड़ा दुःख होता है। जिस बुनियाद को हम बनाने जा रहे हैं उ समे कितनी खराबी है।

मै मानता हूँ आपकी कोई माग हो सकती है, पर बड़े बड़े विरोध भी जब समझौते से सुलझाये जा सकते हैं तो छोटी छोटी बातों के लिये ऐसे घृणित काम कर बैठना क्या सचमुच लज्जा की बात नहीं है ? देश के प्रातीय पुनर्गठन के बारे में विद्यार्थियो ने जो जो कुछ किया, क्या यह शर्म की बात नही है ? मैने जहाँ तक सुना है, विद्यार्थियों ने उस समय उपद्रवो मे बहुत बड़ा भाग लिया था। हो सकता है, उनको प्रोत्साहित करने में किन्हीं अवांछित तत्वों का हाथ रहा हो, पर यह सही है कि विद्यार्थियो ने इसमे अपनी असहिष्णुता का परिचय दिया था। कम से कम हमारे भारतीय विद्यार्थियो के लिये यह कदापि उचित नहीं कहा जा सकता।

अणुव्रत आंदोलन

अनेकात का सिद्धांत उन्हे हर परिस्थिति में समझौते की शिक्षा देता है। अणुव्रत आंदोलन भी यही बात बताता है। देश में आज आर्थिक, सामाजिक राजनैतिक आदि अनेको आंदोलन चलते है। आज कल चुनाव का भी आंदोलन चल रहा है पर अणुव्रत आंदोलन आध्यात्मिक विकास और नैतिक सुधार का आंदोलन है। भारत में सुधार होगा तो वह हृदय परिवर्तन से ही संभव है, बल प्रयोगो से नहीं हो सकता। अणुव्रत जन-जन मे यही भावना भरना चाहता है। वह किसी धर्म विशेष का आंदोलन नहीं है। क्योकि यदि वह किसी धर्म विशेष का—किसी एक धर्म का हो जाता है तो दूसरे उसे स्वीकार करने मे संकोच करेगे। वास्तव में तो धर्मो में कोई भेद होता ही नहीं। जैन जिन्हे पाँच महाव्रत कहते हैं, वैदिक उन्हें पाँच यज्ञ कहते हैं और बौद्ध इन्हें पंचशील कहते हैं। बात एक ही है। अणुव्रत आंदोलन उन सबका—छोटे छोटे व्रतों का संग्रह है।

आप पूछेंगे, आप अहिंसा की बातें तो करते हैं पर देश पर आक्रमण हुआ तो आप की अहिंसा क्या काम आयगी। पर मैं आप से कहूँगा—आप इसे गौर से पढ़ें। अणुव्रत आप को यह नहीं कहता कि आप देश, समाज और परिवार की रक्षा करना छोड़ दें। क्योंकि यह महाव्रत का मार्ग है, अणुव्रत का मार्ग है किसी पर आक्रमण नहीं करना। यह न तो महाव्रत का मार्ग है और न अणुव्रत का। महाव्रत सारे लोगो के लिये कठिन पड़ता है और अव्रत तो विनाश का मार्ग है ही। अतः इन दोनों का मध्यम मार्ग है—अणुव्रत। इसके बिना जनता का जीवन स्तर ऊँचा नहीं उठ सकता।

यह एक प्रश्न गांधी जी के सामने भी रखा जाता था और मेरे सामने भी आया करता है कि अगर सारे संन्यासी बन जायेंगे, ब्रह्मचारी बन जायेंगे तो यह सृष्टि कैसे चलेगी मैं आपसे कहूँगा—आप उसकी चिन्ता न करें। खुद अणुव्रती तो बनें। यह संन्यास का मार्ग तो नहीं है। इस प्रकार व्यक्ति-व्यक्ति के सुधार की यह योजना आप के सामने है। जीवन में इसे उतारें। हमको इसी रूप मे आप के सहयोग की उपेक्षा है।

अंत में मैं आप से यह भी कह देना चाहता हूँ कि यहाँ आकर मैंने आप पर कोई एहसान नहीं किया है। यह तो मेरी अपनी साधना है और इसीलिये अगर आपने मेरी बात को शांति से सुना है तो आपने भी मेरा कोई एहसान नहीं किया है। आपकी भी यह साधना ही होनी चाहिए।

प्रस्तुत समारोह मे डा० श्री कन्हैयालाल सहल एम० ए०, पी० एच० डी० तथा श्री छगनलाल शास्त्री ने भी अपने विचार प्रकट किये।

प्रवचन के लिये निर्धारित पिछले समयो मे कुहरे तथा वर्षा के कारण आचार्य श्री का ऑडिटोरियल हाल मे पधारना नही हो सका था। दो दिन बाद १९ जनवरी १९५७ को आकाश साफ हुआ। सब के मन मे उल्लास था। विद्या विहार के कालेजो तथा अन्यान्य शिक्षण संस्थाओ के छात्रो की प्रबल इच्छा थी कि आज तो आचार्य श्री को प्रवचन के लिए

यहाँ पधारना ही चाहिए, क्योकि पिछले दो दिन कोहरे और वर्षा के कारण कोई आयोजन तथा कार्यक्रम नही हो सका था। आचार्य श्री प्रात काल ही शिव गगा स्थित अतिथि निवास मे पधार गये थे। वहाँ से सेन्ट्रल ऑडिटोरियल हाल मे प्रवचन करने पधारे। हॉल विद्यार्थियो और अध्यापको से खचाखच भरा था। दृश्य बडा ही मनोरम था। बिरला विद्या विहार के कुलपति श्री शुकदेव पाडे ने आचार्य श्री के अभिनन्दन मे स्वागत भाषण दिया। उसके बाद प्रवचन हुआ।

प्रवचन (१६

नैतिकता और जीवन का व्यवहार

इन बालिकाओ का यह खिला हुआ जीवन उस नन्हे से वट बीज जैसा है जो आगे चलकर विशाल वृक्ष के रूप में प्रस्फुटित हो जाता है। परन्तु उस बीज को यथेष्ट वायु, जल, खाद आदि न मिलें तो वह मुरझा जाता है। यही बात बालक बालिकाओं के लिए है। यदि इस गौरवमयी संपत्ति के संरक्षण, संवर्द्धन और विकास की उपयुक्त व्यवस्था नहीं होती तो ये खिले हुए फूल विकास पाने के बदले झुलस जाते हैं अध्यापक तथा अध्यापिकाओं का यह सबसे पहला और आवश्यक कार्य है कि वे बालक बालिकाओं के जीवन में अनुशासन, शील, मैत्री और आत्मविश्वास आदि सुसंस्कार भरने को सतत जागरूक रहें। इस के लिए उनके अपने जीवन की प्रसंस्कारिता सबसे पहले आवश्यक है। उनका जीवन छात्र छात्राओ के लिये एक खुली किताब होना चाहिए, जिससे वे उनसे जीवन निर्माण की मूर्त एवं सक्रिय प्रेरणा ले सकें।

लोग अनैतिक और अशुद्ध वृत्तियों की ओर धड़ाधड़ बढ़ते जा रहे हैं। इसकी मुझे इतनी चिन्ता नहीं, जितनी यह देखकर कि लोगों की यह निष्ठा और आस्था बनती जा रही है कि नैतिकता, सच्चाई और अहिंसा से व्यावहारिक जीवन में काम नहीं चल सकता। यह नास्तिकता है। जीवन तत्व की विस्मृति है। बालिकाओं में ऐसी भावनाएं न जमने पावें ऐसा प्रयास अध्यापिकाओं को करना है। बहिनों से विशेषतः कहा करता हूँ कि वे अपने को पुरुषों से हीन न समझें। अपने को हीन समझना आत्म शक्ति को कुण्ठित करना है। वास्तव में उनमें वह अदम्य उत्साह और अपरिमित शक्ति है जो विकास के पथ पर आगे बढ़ने में उन्हें बड़ी प्रेरणा दे सकती है।

आचार्य श्री का यह प्रवचन १६ जनवरी ५७ को दोपहर में दो बजे बिड़ला विद्या विहार के अन्तर्गत बालिका विद्यापीठ में छात्राओं एवं अध्यापिकाओं के बीच में हुआ।

विद्यापीठ की सहायक अध्यापिका श्रीमती प्रेम सरीन ने आचार्य श्री के स्वागत में भाषण दिया।

अन्त में विद्यापीठ की प्रधानाध्यापिका श्रीमती कौल ने आभार प्रदर्शन किया।

अध्यापकों का दायित्व

कहते हुए बड़ा खेद होता है कि आज राष्ट्र में नैतिकता का दुर्भिक्ष आता जा रहा है। ईमानदारी, विश्वास और मैत्री की परम्पराएँ टूटती जा रही है। इस नैतिक दिवालियेपन से जन जीवन आज खोखला हुआ जा रहा है। यदि अनीति और अनाचार के इस चालू प्रवाह को रोका नहीं गया तो कहीं ऐसा नहो कि अनैतिकता का यह भयावह दानव मानव को निगल जाय। इन टूटती हुई नैतिक और चारित्रिक शृंखलाओ को सहारा मिले, लोक जीवन मे सत्य निष्ठा और ईमानदारी का समावेश हो, इसके लिए, अणुव्रत आन्दोलन के रूप में चारित्रिक उद्‌बोधन का काम हम चला रहे हैं। प्राध्यापक, लेखक, शिक्षा शास्त्री जैसे बौद्धिक क्षेत्र के लोग राष्ट्र का मस्तिष्क हैं। राष्ट्र के जीवन को तथा कथित वितथ विकास के बदले सही विकास और अभ्युत्थान के मार्ग पर लेजाने का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व उन पर है। इसलिए मैं चाहूँगा चारित्रिक जागृति के लक्ष को लेकर चल रहे अणुव्रत आन्दोलन के बहुमुखी कार्यो मे वे सहयोगी बनें। दूसरे लोगों तक पहुँचाया जाए, इससे पहले यह आवश्यक होता है कि व्यक्ति स्वयं अपने जीवन को आदर्शो के अनुकूल बनायें। अध्यापकों से मै कहना चाहूँगा—वे सत्य निष्ठा, प्रामाणिकता और निर्भयता–इन तीन बातो को अपने जीवन में उतारें, यदि वे ऐसा कर पाए तो उनका स्वयं का अपना जीवन तो सही मानें मे प्रगतिशील बनेगा ही, राष्ट्र के सहस्त्रों नौनिहाल, जिनके जीवन निर्माण का कार्य उनके हाथों में सौंपा गया है, उन्हें भी वे उन्नतिपथ की ओर ले जा सकेंगे। राष्ट्र के समक्ष वे मूर्त आदर्श उपस्थित कर सकेंगे।

यह प्रवचन १६ जनवरी १६५७ को विडला विहार के इंजीनीयरिंग कालेज के हाल मे समस्त अध्यापको तथा छात्रो के सम्मुख हुआ।

इजीनियरिंग कालेज के वाइस प्रिंसीपल श्री शाह ने आचार्य श्री का प्राध्यापको की ओर से अभिनन्दन किया।

अन्त मे इजीनियरिंग कालेज के प्रिंसीपल श्री लक्ष्मी नारायण ने आचार्य श्री के प्रति आभार प्रकट किया।

प्रवचन (१८)

जैन दर्शन तथा अनेकांतवाद

जैन दर्शन का चिंतन अनेकांतवाद पर आधारित है, जो विश्व की समस्त विचार धाराओ में समन्वय और सामंजस्य का पथ प्रदर्शन करता है। वह बताता है—एक ही वस्तु को अनेको अपेक्षाओ अथवा दृष्टियो से परखा जा सकता है। क्योकि अनेकों अपेक्षाओ को जन्म देते हैं तो उसके निरूपण मे भी आपेक्षिक अनेक-विधता का आना सहज है। यह अनेक विधता संशयोत्पादक नहीं है। यह तो वस्तु के बहुमुखी स्वरूप की निरूपक है। हाथी के विविध अग प्रत्यंगों को लेकर अपने-अपने द्वारा अनुभूत अंग विशेष को हाथी कह कर लड़ने वाले उन अन्धो की कहानी सुप्रसिद्ध है, जिनको किसी नेत्रवान् ने उसी हाथी के भिन्न-भिन्न अंगो का अनुभव कराकर बताया था कि जिसे वे हाथी कह रहे हैं, वह तो उसका एक-एक अंग है। हाथी उन सब अंगों का समवाय है। जैन दर्शन यही तो बताता है कि वस्तु के एक पहलू को

लेकर दुराग्रही मत बनो, लड़ो नहीं, उसे एकातिक तथ्य मत समझो। दूसरी अपेक्षाओ से भी वह परखा जा सकता है और उस परखसे निकलने वाला निष्कर्ष पहले से भिन्न भी हो सकता है क्योकि यह अपेक्षा या दृष्टि पहले से भिन्न है। जैसे एक व्यक्ति किसी का पिता है, पर साथ ही साथ वह किसी का पुत्र भी तो है, भाई भी तो हो सकता है, पति भी तो हो सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उसमे पितृत्व, पुत्रत्व, भ्रातृत्व एवं पतित्व आदि अनेको धर्म हैं। यही जैन दर्शन का स्याद्वाद है, जो विश्व की उलझी समस्याओं के हल का अन्यतम साधन है।

जहाँ विचार क्षेत्र मे अनेकातवाद भी जैन दर्शन की महत्वपूर्ण देन है, वहाँ आचार के क्षेत्र मे अहिंसा की साधना का सफल मार्ग जैन दर्शन ने दिया। उसने बताया कि किसी को मारना, सताना, उत्पीड़ित करना, कष्ट देना वीरता नहीं है, सच्ची वीरता है हिंसक आघातो का आत्मबल के साथ मुकाबला करना। प्रहार करने की क्षमता के होते हुये भी उसका प्रयोग न कर अहिंसक प्रतिकार के लिये डटा रहना।"

१६ जनवरी १६५७ को रात को ६॥। बजे शिवगगा कोठी मे विडला विद्याविहार जैन एसोसियेशन की ओर से "जैन दर्शन के सबध मे आचार्य श्री का यह महत्वपूर्ण प्रवचन हुआ। अनेको जैन प्रोफेसर एव छात्र तथा जैन दर्शन मे रुचि रखने वाले अन्य प्रोफेसर, विद्यार्थी एव नागरिक भी उपस्थित थे। प्रवचन के अनन्तर जैन तत्त्वो पर काफी देर तक प्रश्नोत्तरो के रूप मे अत्यन्त मनोरजक एव शिक्षाप्रद विचार विनिमय हुआ।

नैतिक निर्माण और जीवन शुद्धि

चुनावों में अनैतिकता और अनुचित आचरण न रहे, इस पर प्रकाश डालते हुये आचार्य श्री ने कहा—"राष्ट्र में प्रचलित नई राजनीतिक एवं सामाजिक परंपराओं और व्यवस्थाओं में जन-जन का जीवन अधिकाधिक शुद्ध, सात्विक और उजला रह सके, इसके लिये अणुव्रत आंदोलन एक चारित्र्यमूलक आलोक देता हुआ सतत प्रयत्नशील है ताकि व्यक्ति प्रखर गति से बहते युग-प्रवाह में तिनके की तरह न बह एक सुदृढ़ स्तंभ की नाईं मजबूत बन चारित्रिक आदर्शों पर स्थिर भाव से टिका रह सके। अणुव्रत आंदोलन का एक-मात्र लक्ष्य यह है कि विभिन्न जीवन व्यवहारों में गुजरता मानव अपने को सच्चरित्रता पर अडिग रख सके। इसी दृष्टि से चुनावों को लक्षित कर इस आंदोलन के अंतर्गत हमने एक अहिंसा सत्यमूलक नियमावली राष्ट्र के कोटि-कोटि मतदाताओं और सहस्रों उम्मीदवारों के समक्ष प्रस्तुत की है।

कुछ दिनों के बाद राष्ट्र में आम चुनाव आ रहे हैं, जिनकी आज सर्वत्र सरगर्मी नजर आ रही है। जिस प्रकार अपने सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं मे व्यक्ति नगण्य स्वार्थों में पड़ पतनोन्मुख बनता है, उसी तरह चुनावों में भी बहुत प्रकार की वीभत्स और जघन्य वृत्तियाँ बरती जाती हैं। यह सचमुच मानवता के लिये भयानक अभिशाप और घृणास्पद कलङ्क है। मैं चाहूँगा, किसी भी कीमत पर व्यक्ति मानवीय आदर्शों से न गिरे। आसन्न चुनाव-कार्य को लक्षित कर मैं राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक से कहूँगा, वह सत्य और नैतिकता से विचलित न हो, अनैतिकता, और अनाचरण का सर्वतोभावेन परिहार करे।

यदि हम व्यक्ति के सामाजिक पतन के इतिहास के पन्ने उलटें

तो पायेंगे कि एक समय था, जब कि इंसान ने चद चाँदी के टुकड़ों के मोल अपनी लड़कियों को बेचा। समय आगे बढ़ा, वह लड़कों को बेचने लगा। पर आज तो स्थिति यहाँ तक बदतर हो गई है कि पैसो के हाथ वह अपने आप को भी बेच डालता है। पैसे लेकर किसी के पक्ष में अपना मत देना अपने आप को बेचना नही तो और क्या है ? क्या यह पतन की पराकाष्ठा नहीं है। रुपये पैसे व अन्य अवैध प्रलोभन देकर, हिंसात्मक प्रभाव दिखाकर, भय धमकी एवं अश्लील आलोचना का सहारा लेकर मत पाने का प्रयास करना, पैसे के लालच मे आकर मत देने को तत्पर होना, जाली नाम से मत देना मानवता के लिये निःसदेह एक अमिट कालिमा है। ऐसा करने वाले अपने मानवीय स्वत्व को ठोकरो से रौंदते हैं। जागृत मानवीय चेतनशील नागरिक ऐसा कर अपने जीवन की चादर को पाप की स्याही से काली न बनायें। यह आत्मिक पतन है, जो मानव को जीवन शुद्धि के एवं सत्चर्या के मार्ग से पराङ्मुख बना अवनति की ओर ले जाता है।

ता० २० जनवरी १९५७ को दोपहर के १ वजे पिलानी के नागरिको की ओर से बाजार मे नागरिको की एक विशाल सभा का आयोजन किया गया, जिसमे आचार्य श्री ने उन्हे नैतिक निर्माण और जीवन शुद्धि का उक्त सन्देश दिया।

प्रवचन के बाद सैकडो नागरिको ने चुनावो मे अनैतिक और अनौचित्यपूर्ण व्यवहार न करने की प्रतिज्ञा की। अन्य कई प्रकार की दूषित वृत्तियाँ छोडने का भी लोगो ने संकल्प किया।

तीसरा प्रकरण

मन्थन

श्रीलंका निवासी बौद्धभिक्षु के साथ

जैन धर्म और बौद्ध धर्म

२६ नवम्बर १६५६ को बौद्ध गोष्ठी की समाप्ति के बाद आचार्य श्री यंग मेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन हाल से १६ नम्बर बाराखंभा रोड (नई दिल्ली) श्री रामकिशनदास द्वारकादास रंगवाले के मकान पर पधारे।

दोपहर में लंका निवासी बौद्ध भिक्षु 'नारद थेरो' आचार्य श्री से मिलने आये। शिष्टाचारमूलक वार्तालाप के पश्चात् उन्होंने आचार्य श्री से पूछा—

जैन धर्म और बौद्ध धर्म में क्या अन्तर है ?

आचार्य-श्री—बौद्ध तो प्रत्येक चीज को क्षणिक मानते हैं, जैन उसे स्थिर भी मानते हैं। बौद्ध कहते हैं—

"यत् सत् तत् क्षणिकम्, यथा जलधर. सन्तश्च भावा इमे।" पर जैन कहते हैं कि पदार्थ क्षणिक हैं पर वे परिणामी नित्य भी हैं। पानी बिल्कुल ही नष्ट नहीं हो जाता। उसके पर्याय का नाश होता है पर उसका द्रव्यत्व कभी नष्ट नहीं होता। वैसे ही प्रत्येक वस्तु पदार्थ का पर्याय बदलता है पर मूल द्रव्य स्थायी रहता है।

नारद थेरो—क्या पानी पदार्थ है ?

आचार्य-श्री—नहीं, पानी मूलपदार्थ नहीं है। मूल पदार्थ दो ही हैं—जीव और अजीव। वे सदा शाश्वत रहते हैं। उनमें कभी मूलतः परिवर्तन नहीं होता। जीव का परिवर्तन भी होता है, जैसे मनुष्य, पशु,

पक्षी, आदि। पर वास्तव मे वह जीव का परिवर्तन नहीं है, पर्यायो का परिवर्तन है। इसी प्रकार अजीव में भी पर्यायों का परिवर्तन होता है। बौद्ध लोग परमाणु को नित्य नहीं मानते। उनकी दृष्टि में हर चीज क्षणिक है पर हम परमाणु को नित्य मानते हैं।

नारदथेरो—जैन ईश्वर को मानते हैं या नही ?

आचार्य-श्री—हाँ, मानते है; पर वे उसे सृष्टि का कर्ता-हर्ता नहीं मानते। आत्मा ही परमात्मा ईश्वर है। जब तक वह कर्म बल से लिप्त है, तब तक आत्मा है और कर्मो से छूटते ही ईश्वर बन जाता है।

नारदथेरो—आत्मा क्या है ?

आचार्य-श्री—आत्मा एक स्वतन्त्र ज्योतिर्मय शाश्वतचेतनामयतत्त्व है।

नारद थेरो—क्या शरीर और मन से भिन्न अलग तत्त्व आत्मा है ?

आचार्य-श्री—हाँ, मन भी इन्द्रिय रूप ही है और आत्मा इन्द्रियों से भिन्न चेतना तत्त्व है। शरीर तो उस पर आवरण है, जैसे दीपक पर कोई ढक्कन।

नारद थेरो—वह आवरण क्या है ?

आचार्य-श्री—सूक्ष्म शरीर।

नारदथेरो—सूक्ष्म शरीर क्या है ?

आचार्य-श्री—कर्म-जड़।

नारद थेरो—कर्म क्या है ?

आचार्य-श्री—परमाणु पिण्ड, जो आत्मा की प्रवृत्ति से आकर उससे चिपक जाते हैं, उन्हे कर्म कहते हैं।

नारद थेरो—क्या कर्म क्रिया हैं ?

आचार्य-श्री—नहीं, वे क्रिया नही हैं। वे तो क्रिया के द्वारा आत्मा से चिपक जाने वाले परमाणु पिण्ड हैं।

नारद थेरो—वे दोनों बुरे होते हैं या भले ?

आचार्य-श्री—दोनो ही प्रकार के होते हैं। यद्यपि भले कर्म भी अन्ततः त्याज्य हैं पर वे पौद्गलिक दृष्टि से दुःखदायी नहीं होते।

दो जापानी विद्वानों के साथ

श्री नारद थेरो के जाते ही दो जापानी विद्वान् पता लगाते-लगाते आ पहुँचे। उन्हे प्रधानमन्त्री नेहरू ने भारत आने का निमंत्रण दिया था और इसीलिये वे बौद्ध गोष्ठी मे सम्मिलित होने के लिए आये थे। एक बार वे पहले भी भारत आचुके थे। जब उन्हें आचार्य-श्री के सम्बन्ध में यह बताया गया कि आप तेरापंथ के आचार्य हैं तो वे बड़े खुश हुये और बोले—हम आपके साधुओ से पहले भी मिले थे। उन जापानी विद्वानों के नाम थे—हाजीमे नाकामुरा और सोसन मियो मोटो। वे संस्कृत के भी विद्वान् थे।

आचार्य श्री ने उन्हें अपना परिचय देते हुये बताया कि हम किसी भी सवारी का प्रयोग नहीं करते, तो उन्होने कहा—आप मोटर मे तो चढ़ते होंगे ? जब आचार्य प्रवर ने बताया कि नहीं, हम मोटर में भी नहीं बैठते। यह सुनकर जापानी विद्वान् बड़े आश्चर्यान्वित हुये और बड़े विस्मय के साथ इस बात को दुहराया कि अच्छा, आप मोटर में भी नहीं बैठते। आचार्य-श्री ने कहा हाँ, इसीलिये हम अभी राजस्थान से ग्यारह दिन मे दोसौ मील पैदल चलकर यहाँ आये हैं।

उन्होंने पूछा—तब आप इंग्लैण्ड कैसे जा सकते हैं ?

आचार्य-श्री ने कहा—हम वायुयान आदि का भी उपयोग नहीं करते, हम तो सड़क के रास्ते से ही चलते हैं। यही कारण है कि विदेशों में जैन धर्म का प्रचार नहीं हो सका।

प्रश्न—क्या कृषि मे हिंसा है और क्या आप उसका निषेध भी करते हैं ?

उत्तर—हाँ, कृषि में हिंसा है पर हम उसका निषेध या विधान

नहीं करते। बहुत सारे जैन भी कृषि करते हैं पर उसमे हिंसा ही समझते हैं। भगवान् महावीर के प्रमुख श्रावको मे कई श्रावक कृषिकार हुये हैं।

फिर आचार्य-श्री ने तेरा पंथ का परिचय दिया और दयादान सम्बन्धी मान्यताओ को तीन दृष्टान्तो द्वारा विशद रूप मे समझाया। दया दान की व्याख्या उन्हें बहुत ही वास्तविक जँची। साधु साध्वियों के हाथ की बनी चीजें दिखाई गई तो वे बड़े प्रसन्न हुये और फिर कभी मिलने का वायदा कर चले गये।

मन्थन (३)

राष्ट्रकवि के साथ

साहित्य साधना पर वार्ता

१ दिसम्बर १९५६ को ससद् क्लब मे पधारने पर राष्ट्र कवि श्री मैथिली शरण गुप्त ने आचार्य-श्री से अपने घर पधारने के लिये निवेदन किया, अतः आचार्य प्रवर क्लब के कार्यक्रम के उपरान्त वहाँ पधारे और २५-३० मिनट तक बड़ा सरस वार्तालाप हुआ।

श्री मैथिलीशरण जी ने कहा—मेरी बहुत दिनो से अभिलाषा थी कि आपके दर्शन करूँ। आज दर्शन पाकर, मेरी कामना पूर्ण हुई। वैसे मे आपके प्रयत्नो से समय-समय पर आपके सन्तों द्वारा परिचित होता रहा हूँ, उनके सत्प्रयत्नो मे यथाशक्ति सहयोग देता रहा हूँ किन्तु आपसे साक्षात्कार आज ही हो पाया है।

साहित्य साधना के सम्बन्ध मे चर्चा चलने पर उन्होने कहा—मैने भारत के सभी सन्तो के प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित की हैं। मैने 'साकेत'

लिखा है, यशोधरा की रचना की है। भगवान् महावीर को मैं अपनी श्रद्धाजलि भेंट करना चाहता था पर मुझे उनके विषय मे यथार्थ जानकारी प्राप्त नहीं हुई। जहाँ भी कही देखा श्वेताम्बर-दिगम्बर का झमेला दिखाई दिया। इसीलिये मैंने कुछ नहीं लिखा। आप इसके सही अधिकारी हैं। आप मेरा पथ प्रदर्शन कीजिये और यथार्थ जानकारी देकर मेरी सहायता कीजिये।

अपनी नव निर्मित कृति 'राजा प्रजा' का प्रूफ दिखाया और कहा, मुझे आपका अभी का प्रवचन बहुत मनोहर और वास्तविक लगा। मैं 'राजा-प्रजा' मे इसके भाव के कुछ पद्य अवश्य दूंगा। मुझे यह कथन बहुत ही यथार्थ लगा कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना अवलोकन शुरू कर दे तो दूसरों की आलोचना और दंड विधान की गुंजाइश ही न रह जाय।

आचार्य प्रवर ने कहा—हम व्यक्ति सुधार पर जोर देते हैं, क्योंकि व्यक्तियों के समूह के सिवाय राष्ट्र कुछ है नहीं। हमारे यहाँ आत्मसाधना और जनोपकारी कार्यों के साथ उसकी पूरक अन्य साधनायें भी चलती हैं। साहित्य साधना मे भी सन्तो की प्रगति है। कई संत आशु-कवि हैं। किसी भी विषय पर तत्काल सस्कृत मे पद्यो की रचना कर सकते हैं। संसदसदस्य श्री राधाकुमुद मुखर्जी ने आशु कविता के लिये "तृष्णा-दमन' विषय दिया जिस पर मुनि श्री नथमल जी ने कविता की। राष्ट्र-कवि ने आचार्य-श्री को अपनी कृति "साकेत" भेंट की।

श्रीमती सावित्री देवी निगम के साथ

मानवता के नियम

संसत्सदस्या श्री मती सावित्री देवी निगम ने भी संसद्क्लब में (१ दिसम्बर १९५६ को) आचार्य श्री से अपने यहाँ पधारने का निवेदन किया था। आचार्य-श्री राष्ट्रकवि के स्थान से उनके यहाँ पधारे। कुछ देर वहाँ ठहरे। आचार्य श्री के विराजने की तजवीज छत पर थी। सारे भाई-बहिन वहाँ ही बैठे। कई विषयों पर वार्तालाप हुआ।

आचार्य श्री—क्या आपने अणुव्रतो के नियम देखे है ?

श्रीमती निगम—हाँ, महाराज ! उनसे परिचित हूँ। वे तो मानवता के नियम हैं। मुझे उनमे निष्ठा है। यत्र-तत्र चलने वाले ऐसे रचनात्मक सुधार कार्यो में मेरी रुचि रहती है। मैं भारत सेवक समाज मे भी कार्य करती हूँ तथा ग्रामो मे भी कुछ केन्द्र खोल रखे हैं। पर मै इन सबसे प्रथम स्थान अणुव्रत आन्दोलन को देती हूँ।

आचार्य-श्री—हाँ, आपको इसे प्रथम स्थान देना ही चाहिये, क्योकि यह सुधार का आन्दोलन अपने ढंग का एक है। प्रत्येक कार्य मे यह आन्दोलन संयम को महत्व देता है। इसके वर्गीय कार्यक्रम बड़े अच्छे,ढंग से चले हैं और चल रहे हैं। हजारो छात्रो ने इससे नैतिक प्रेरणा पाई है। सैकड़ो व्यापारियो ने कूट तोल-माप व मिलावट न करने की प्रतिज्ञा ली है। अनेको मजदूरों ने नशा न करने का नियम लिया है।

सावित्री देवी—हाँ, आपके कार्यक्रमो ने जनता के विचारो को मोड़ा है। आज नेता व साधारण लोग भी नैतिकता की चर्चा करते हैं। इसमे अणुव्रत आन्दोलन ने काफी मदद की है। यह आन्दोलन की

सफलता है। इसमें सन्देह क्या है कि वह भावना फैलेगी और लोग इसे स्वीकार करेंगे। ये व्रत (नियम) जीवन के प्रत्येक पहलू को छूते हैं। अभी यहाँ मद्य निवेध सप्ताह चला था। उसमे आन्दोलन ने बहुत मदद दी है। मैं इसकी सफलता चाहती हूँ

आचार्य-श्री—आपने अणुव्रती बनने के बारे में क्या सोचा है ?

सावित्री देवी—मुझे तो इसमे कोई अड़चन नहीं है। मैं अपने आपको इसके लिये प्रस्तुत करती हूँ। मेरा नाम कृपया अणुव्रतियो की सूची में लिखलें।

उनके आग्रह पर आचार्य-श्री ने उनके यहाँ कुछ भिक्षा भी ग्रहण की।

मध्यान्ह में आचार्य-श्री वाई० एम० सी० ए० पधार गये, जहाँ साहू शान्तिप्रसाद जी जैन, श्री अगरचन्द जी नाहटा आदि कई व्यक्ति संपर्क में आये (जैन आगमकोश और अनुवाद की बात सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुये।)

यूनेस्को के प्रेस प्रतिनिधि श्री एलविरा ने आचार्य प्रवर के दर्शन किये।

श्री एलविरा के साथ

व्रतों की निषेधात्मक मर्यादा

यूनेस्को के प्रेस प्रतिनिधि श्री एलविरा के साथ १ दिसम्बर १९५६ को आचार्य-श्री की महत्वपूर्ण चर्चा हुई।

आचार्य-श्री—क्या आपने अणुव्रत आन्दोलन के नियम देखे हैं ?

एलविरा—हाँ, मैंने उनको देखा है। वे मुझे अधिकतर निषेधात्मक प्रतीत हुए, ऐसा क्यों है ?

आचार्य-श्री—इयत्ता के लिये निषेध आवश्यक है, "यह करो वह करो"—इसकी कोई सीमा नही है।

एलविरा—बाइबिल मे भी अधिकांश नियम नकारात्मक हैं पर उसमे यह भी कहा गया है कि अपने पड़ोसी से प्रेम करो।

आचार्य-श्री—ऐसा उल्लेख तो इसमें भी है कि आपस में मैत्री रखो पर यह नियम नहीं हो सकता, यह तो उपदेश हो सकता है।

एलविरा—भारत के लोग अहिंसा मे विश्वास व श्रद्धा रखते हैं और अपने जीवन को उस आदर्श तक ले जाना चाहते हैं, क्योकि आप जैसे प्रेरक यहाँ विद्यमान हैं। क्या इसका प्रचार पाश्चात्य देशो में भी हो सकता है ?

आचार्य-श्री—क्यों नही, पर इसके लिये आप लोगो का नैतिक सहयोग अपेक्षित है।

एलविरा—मै तो आपकी सेवा में प्रस्तुत हूँ। मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा अगर मै इसमे कुछ कार्य कर सकूँ। तत्पश्चात् आचार्य प्रवर ने उनको तेरापंथ और जैन आचार विचार परंपरा के सम्बन्ध में जानकारी दी।

दलाई लामा के साथ

श्रमण संस्कृति की दो धाराओं का मिलन

२ दिसम्बर १९५६ को राष्ट्रपति भवन में अणुव्रतों के सम्बन्ध में सम्मेलन होने के बाद जब राष्ट्रपति जी और आचार्य-श्री दोनों उठकर चलने लगे तब आचार्य-श्री ने पूछा—दलाई लामा यहाँ आने वाले थे, क्या वे आ गये हैं?

राष्ट्रपति जी ने पूछा—क्या आपको उनसे मिलना है? मैं जाता हूँ, ऊपर से आपको खबर करवा दूँगा। ऊपर जाकर उन्होंने अपने सेक्रेटरी से कहलवाया कि आचार्य-श्री ऊपर पधारें। ऊपर जाते ही जिस कमरे में दलाई लामा और पंचेन लामा खड़े थे, पं० नेहरू भी उस समय उनसे बातें कर रहे थे। आचार्य-श्री को देखकर पंडित जी लामा से बातें करते करते झट से उनको भी आचार्य-श्री के पास ले आये और उनके दुभाषिये के द्वारा आचार्य-श्री का परिचय उनको दिया। उसने तिब्बती भाषा में उसका अनुवाद कर लामाओं को बताया।

नजदीक आने पर आचार्य-श्री ने कहा—राष्ट्रपति भवन में आज श्रमण संस्कृति की दो धाराएँ-जैन और बौद्ध का मिलन हो रहा है, इसकी हमें बड़ी खुशी है।

पंचन लामा ने कहा—हम शायद आपसे कहीं मिले हैं?

आचार्य-श्री ने कहा—नहीं, मिले तो नहीं हैं, शायद आपने कहीं हमारा फोटो देखा होगा।

उन्होंने कहा—हाँ, हाँ।

मुनि श्री-नगराज जी ने कहा—कुछ साहित्य और आचार्य-श्री का परिचय आपको भेजा गया था, वह आपने देखा होगा।

फिर आचार्य श्री ने नेहरू जी से कहा—

पंडित जी आप इन्हें बतलाइये—हम जैन साधु पैदल ही चलते हैं और अभी-अभी दो सौ मील की पैदल यात्रा ग्यारह दिनो में पूरी करके आ रहे हैं।

पडित जी ने कहा—मैंने इन्हें अभी-अभी यही बताया था। इस प्रकार थोड़ी देर का यह संगम बड़ा ही रोचक और प्रेरणा-दायक रहा।

मन्थन (७)

बौद्ध भिक्षुओं के साथ
विश्व शान्ति साधन की खोज

श्री लंका से बुद्ध जयंती पर आये हुए बौद्ध भिक्षुओं ने ५ दिसंबर १९५६ को प्रातः वाराखम्भा रोड २२ नम्बर पर आचार्य-श्री से भेंट की। आसन ग्रहण करने के बाद प्रतिनिधि मंडल के प्रधान महा-स्थविर 'धर्मेश्वर' ने कहा—आप और हम लोग दो नहीं है। श्रमण संस्कृति की दृष्टि से एक ही हैं।

आचार्य-श्री—हाँ दोनो श्रमण परपरा की दो धाराएँ है।

धर्मेश्वर—सिलोन मे ३० हजार भिक्षु हैं। उनमे से प्रति हजार पर एक प्रतिनिधि के रूप मे ३० भिक्षु आये हैं। बहुत सुन्दर हुआ कि दोनों धाराओ का संगम हुआ। हमे मिल जुल कर एक अच्छी योजना तैयार करनी चाहिये। यह एक अवसर है। वर्तमान दुनिया बुरी तरह से क्षुब्ध है, वह शांति की टोह मे है। हम जो सच्चा मार्ग बनायेंगे, उसका सारी दुनिया मे प्रचार होगा। हम उस योजना को लेकर अमेरिका, जापान,

चीन, तिब्बत आदि मे घूमेंगे। इस प्रकार वह विश्व के लिये शांति का साधन बन सकेगी।

आचार्य-श्री—हाँ, हमारा तो इस प्रकार की योजनाओं के लिये चिन्तन चलता ही रहता है। हमें समन्वय मे ही सफलता दीखती है। अणुव्रत आन्दोलन के नियमो के प्रारंभ में तद्विषयक जैन-बौद्ध और वैदिक तीनो धर्मो के समन्वयात्मक पद्य हमने दिये हैं। इसके बाद कुछ और प्रश्नोत्तर हुए।

आचार्य-श्री—हाँ, आप मे और तिब्बत के दलाई लामा मे क्या भेद है?

धर्मेश्वर—हम भी भिक्षु हैं और वे भी; किन्तु हम ऊष्ण देश के हैं और वे शीत देश के। अत. स्थानीय परिस्थितियो के अनुसार अपना अपना आचार व्यवहार चलता है।

आचार्य-श्री—दलाई लामा बुद्ध का अवतार माने जाते हैं, यह कहाँ तक सत्य है?

धर्मेश्वर—यह कुछ नहीं, यह तो केवल तिब्बती जनता की श्रद्धा है इसलिये वहाँ के वे परमेश्वर हैं। हो सकता है सिलोन में कोई बौद्ध इन्हें जानता भी न हो।

आचार्य-श्री—आप महायान के अनुयायी हैं या हीनयान के?

धर्मेश्वर—सिलोन मे सियम निकाय और अमर निकाय है। महायान या हीनयान अलग कुछ नहीं। हमारा साहित्य पाली मे है अतः अल्प है। इधर भारतीय बौद्ध विद्वानों ने जब संस्कृत मे प्रचुर साहित्य लिखा, तब उन्होंने मूल पाली साहित्य को ही प्रमाणित मानने वालो को हीनयान और अपने आपको महायान कहना प्रारंभ किया, किन्तु इसे हम स्वीकार नहीं करते।

आगंतुक भिक्षुओ मे से भिक्षु "ज्ञान श्री" आगे आये और कहने लगे—हमारे यहाँ कुछ नियम पालने वाले और गेरुएँ रग के वस्त्रधारी को भिक्षु कहते हैं। हमने आप जैसे साधु कभी देखे नहीं; आज ही

देखने का अवसर मिला है। हमे सब कुछ नया-नया लगता हैं। आपका वाह्य आकार प्रकार भी और आचरण भी। अतः हम छोटी-बड़ी सभी बातें पूछना चाहते हैं। क्या आपकी आज्ञा है ? आप क्रोध तो नही करेंगे ?

आचार्य-श्री—क्रोध कैसा ? हमे तो इससे प्रसन्नता अनुभव होगी। आनद से पूछिये।

ज्ञान श्री—अच्छा फरमाइये, यह आपके मुँह पर पट्टी क्यो लगी हुई है ?

आचार्य-श्री—यह अहिंसा के लिये है। जब हम बोलते हैं तब जो तेज व गर्म हवा निकलती है, उससे हिंसा होती है।

ज्ञान श्री—तब श्वासोच्छास मे भी सूक्ष्म जंतु मरते होगे ?

आचार्य-श्री—नहीं, ऐसा नहीं है। जैनागमो के अनुसार बोलने से जो हवा मुँह से निकलती है, उसकी बाहर की हवा से टक्कर होती है, तब वायु के जीव मरते हैं। श्वासोच्छास सहज हवा है, उससे वायु के जीव नहीं मरते, दूसरे सूक्ष्म जीवो की तो बात ही कहाँ ?

ज्ञान श्री—आप भिक्षु है या साधु ?

आचार्य-श्री—हमारी मूल परंपरा मे हमे निर्ग्रन्थ या श्रमण कहा जाता है। वैसे श्रमण, निर्ग्रन्थ, भिक्षु, साधु पर्यायवाची नाम है।

ज्ञान-श्री—श्रमण का क्या मतलब है ?

आचार्य-श्री—आध्यात्मिक श्रम करने वाला अर्थात् तपस्या करने वाला श्रमण कहलाता है।

ज्ञान-श्री—तपस्या किसे कहते हैं ?

आचार्य-श्री—तपस्या उस अनुष्ठान को कहते हैं, जिससे आत्मा के बन्धन टूटते हैं। वह दो प्रकार की है—बाह्य और आभ्यंतर। उपवास, आदि बाह्य तपस्या है और स्वाध्याय आदि आभ्यंतर।

ज्ञान श्री—बन्धन किसे कहते हैं ?

आचार्य-श्री—हमारी शुभाशुभ प्रवृत्ति से ही शुभ अशुभ परमाणु

पिंड आकृष्ट होते हैं और प्रवृत्ति के अनुरूप प्रवर्तित हो आत्मा के साथ चिपक जाते हैं, आत्म चेतना को आवृत्त कर लेते हैं, उस आवरण को बन्धन कहते हैं।

ज्ञान श्री—बन्धन को दूर क्यों किया जाता है? उससे क्या क्षति है?

आचार्य-श्री—उससे हमारा आत्म विकास रुकता है।

ज्ञान श्री—इस वाक्य में दो शब्द आये हैं—'हमारा' और 'आत्मा', तो क्या ये दो हैं?

आचार्य-श्री—नहीं, उपचार से ऐसा कह दिया गया, वास्तव मे मैं और आत्मा एक है।

ज्ञान श्री—'मैं' यह शरीर का वाचक है या आत्मा का?

आचार्य-श्री—यह आत्मवाचक है।

ज्ञान श्री—तो यह आपका शरीर किससे प्रचलित है?

आचार्य-श्री—आत्मा के द्वारा।

ज्ञान श्री—तो आत्मा एक पृथक् चीज है, शरीर एक पृथक् चीज है?

आचार्य-श्री—हाँ।

ज्ञान श्री—शरीर का संचालक जैसे आत्मा है, वैसे कोई आत्मा का भी चालक है?

आचार्य-श्री—नहीं, आत्मा अनादि है, वह स्व चलित है, इसका कोई करने वाला नहीं।

ज्ञान श्री—आत्मा अनादि है, यह आप किस बल पर जानते हैं?

आचार्य-श्री—दो आधारों पर—(१) आगम (गणिपिटक) और (२) अनुभव के आधार पर।

ज्ञान श्री—आगम किसे कहते हैं?

आचार्य-श्री—आप के जैसे त्रिपिटक हैं वैसे ही हमारे यहाँ गणिपिटक हैं, उन्हें आगम कहते हैं अर्थात् महावीर वाणी आगम है।

इस प्रकार लगभग घंटाभर पारस्परिक तात्त्विक विचार विमर्श हुआ। अंत मे उन्होंने जैन दर्शन को विशेषतः जानने की जिज्ञासा व्यक्त की।

मन्थन (८)

'मारल रिआर्मेमेन्ट' के प्रतिनिधियों के साथ

हृदय परिवर्तन का माध्यम

५ दिसंबर १६५६ की रात्रि मे मॉरल रिआर्मेमेट (नैतिक पुनरुत्थान के विदेशी आंदोलन) के तीन सदस्य मि० डब्ल्यू० इ० पार्टर, मि० जी० एफ० स्टीफ़ेन्स, मि० जे० एस० हडसन तथा उसमे दिलचस्पी रखने वाले संसत्सदस्य श्री राजाराम शास्त्री आचार्य-श्री के दर्शन करने आये।

मॉरल रिआर्मामेट के सदस्यो मे से एक ने बताया कि उनका आंदोलन हृदय परिवर्तन के माध्यम से काम करता है। अपनी कहानी सुनाते हुए उन्होने कहा—कि मै शाति का उपदेश करता था, पर अपने घर में काफी अशाति का राज्य था। एक दिन मेरे मन मे विचार उठा कि मै जब इतना अशांत रहता हूँ तथा पिताजी की अशाति का कारण बना हुआ हूँ तब मेरे द्वारा दिये गये शाति के उपदेश का क्या असर हो सकता है? तभी मैं अपनी सारी शक्ति बटोर कर पिताजी से क्षमा माँगने के लिये तैयार हुआ। क्षमा माँगने पर पिताजी ने कहा इस क्षमा माँगने का

अर्थ तो तब निकल सकेगा जब तुम इस नम्र भावना को स्थायित्व दे सको। मैंने उनके शब्द शिरोधार्य किये। तब से हमारा व्यवहार मधुर हो गया और शांति रहने लगी।

शास्त्री जी ने कहा—एक बार मै चुनाव मे जीता था तो लोगों ने बड़ी बड़ी सभायें करके मेरा अभिनन्दन किया, फूल मालाओं से लादा, चरणो मे पड़े। मेरे मन मे विचार आया, लोग इतना करते हैं, क्या मैं इसके योग्य हूँ? तभी मुझे लगा मैंने चुनाव मे न जाने क्या-क्या किया है। अब भी लोगों से कुछ और कहता हूँ और कर गुजरता हूँ कुछ और ही। इस प्रकार विचार करते-करते मै आत्मोन्मुख बना। उन्हीं दिनों में मॉरलरिआर्मामेंट के इन कार्यकर्त्ताओ से मेरी भेंट हुई और मै इधर झुका। अब इसका प्रचारक बन गया हूँ।

आचार्य-श्री—हम भी यही कहते हैं कि किसी भी बात का प्रचार करना तभी सार्थक हो सकता है जब वह जीवन में पूर्णतया उतर जाय। आपको जिज्ञासा होगी कि हम अणुव्रतो का प्रचार करते हैं, तो क्या हम अणुव्रती हैं? हमारे यहाँ दो धाराएँ चलती हैं, महाव्रत और अणुव्रत। हम लोग महाव्रती हैं, पैदल चलते हैं, किसी भी सवारी का उपयोग नहीं करते। हमारे पास एक भी पैसा नहीं, जमीन, मठ, मंदिर नहीं। यहाँ तक कि हमारे पास भोजन का भी कोई प्रबन्ध नहीं। हमारी भोजन-व्यवस्था भिक्षावृत्ति से चलती है, हम किसी एक घर का खाना नहीं लेते, बिना किसी भेद भाव के अनेक घरो में जाते हैं और थोड़ा-थोड़ा लेकर अपनी आवश्यकता को पूर्ण कर लेते हैं। यह चर्या महाव्रतियों की है।

अणुव्रती वे हैं जो इनको आंशिक रूप मे पालते हैं। हम अणुव्रतो का सब वर्गों में, सब जातियो में प्रचार करते हैं। हम लोग हृदय परिवर्तन पर ही जोर देते हैं। आप लोग (मो० रि० संस्थापक) 'वुकमैन' से कहिये कि वे जो हृदय परिवर्तन के माध्यम से काम करते हैं, उसे स्थायित्व देने के लिये उसके लिये कुछ नियम भी आवश्यक है। अणुव्रत

आंदोलन और मॉरल रिआर्मामेंट दोनो मिलकर कुछ करें तो नैतिक जागृति का अच्छा काम हो सकता है।

एक कार्यकर्ता—यह इसकी शुरूआत समझनी चाहिये।

आचार्य-श्री—आप के इस प्रचार के विषय मे कुछ आक्षेप भी सुनने को मिले हैं।

एक कार्यकर्ता—हो सकता है कि लोग इसकी नैतिक चुनौती सहन न कर सके हो।

आचार्य-श्री—हाँ, ऐसा भी हो सकता है, पर मैंने साधारण आदमियो से नहीं अच्छे लोगों से सुना है। कुछ लोगो का कहना है कि इसका प्रचार जो नाटकों और नृत्यो द्वारा किया जाता है, उसका प्रभाव जनता पर अच्छा नहीं पड़ता। कुछ व्यक्ति इसे राजनैतिक चाल समझते है तो कुछ ईसाई बनाने का तरीका मात्र मानते हैं। इसमे उनकी कोई श्रद्धा नहीं, उल्टा इसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

एक कार्यकर्ता—आचार्य-श्री सब चीजों का सब तरह ध्यान रखते हैं। आपने इसका कितनी गहराई से अध्ययन किया है।

आचार्य-श्री—आप की जो आलोचना की जाती है उसको यद्यपि मै पूर्णतया ठीक नहीं मानता पर इस विषय मे आप को काफी सतर्क रहना चाहिये। क्या आंदोलन के सदस्यो के लिये आवश्यक है कि वे मांस न खायें, नशा न करें ?

कार्यकर्ता—ऐसा कोई नियम नहीं है। पर हम मद्य निषेध की चेतावनी जरूर दे देते हैं।

आचार्य-श्री—क्या सदस्यो का रजिस्टर है ?

कार्यकर्ता—नहीं।

आचार्य-श्री—भारत में इसका प्रचार कहाँ कहाँ हुआ है।

कार्यकर्ता—बंबई, पूना, कलकत्ता आदि बड़े-बडे शहरो मे तथा कहीं-कहीं गाँवो मे भी इसका कार्य चालू है।

'इंडियन एक्सप्रेस' के समाचार सम्पादक के साथ

धन-धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं

ता० ६ दिसंबर १९५६ को १९ बाराखंभा रोड पर "इंडियन एक्सप्रेस" के समाचार सम्पादक श्री चमनलाल सूरी आचार्य-श्री के दर्शनार्थ आये। आते ही उन्होंने पूछा—आचार्य जी आप यहाँ कहाँ से आये हैं और क्यों आये हैं ?

आचार्य प्रवर ने अपना उद्देश्य समझाते हुये आंदोलन की बात बताई और कहा, अणुव्रत आंदोलन को आज राष्ट्र की पूर्ण मान्यता प्राप्त है और जन-जन मे इसकी चर्चा है।

सूरी—दिल्ली नगर मे इसकी कैसी प्रगति है ?

आ० —यहाँ इसका अच्छा कार्य चल रहा है, लोगो ने इसकी भावना समझी है और यथाशक्ति इसको जीवन मे उतारने का प्रयत्न किया है। थोड़े ही दिन पहले यहाँ 'विद्यार्थी अणुव्रत पक्ष' चला था, जिसमे अनेक छात्रों ने नशा न करने की तथा नैतिक जीवन बिताने की प्रतिज्ञा ली थी। उससे पहले व्यापारियो में भी इस प्रकार का कार्यक्रम चल चुका है। उसमे मिलावट न करने की, कम तोल माप न करने की प्रतिज्ञाएँ रखी गई थीं और उन्होने उनका स्वागत किया था। इस प्रकार हम जन साधारण में विचार क्रांति पैदा करने का प्रयास कर रहे हैं। हमारे प्रचार का माध्यम अणुव्रत-आंदोलन है। किन्तु इसके प्रसार में जितना सहयोग अपेक्षित है, उतना नहीं मिल रहा है।

सूरी—कई बार कई समाचार पत्रों में आंदोलन की चर्चा पढ़ते हैं

किन्तु मैं भी यह मानता हूँ कि हम पत्रकार इसमे विशेष हाथ नहीं वटा रहे हैं।

आचार्य-श्री—यह पत्रकारो की गलती है। मैं आप से यह कहूँगा कि आप इस आदोलन की भावना को सही-सही समझने का प्रयास करें। फिर आप को जैसा लगे, उसे हमे वतायें। केवल इससे दूर रह कर आप एक वहुत वडे कर्तव्य से वंचित रह जाते हैं। मैं आप से यह नहीं कहता कि आप जवर्दस्ती इसके प्रसार में समय लगावें। किन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि यदि आप नैतिकता का प्रचार अपने जीवन का एक कर्तव्य मानते हैं तो फिर उससे क्यो पीछे रहते हैं ?

मन्थन (१०)

श्री मोरारजी देसाई के साथ

अनशन आत्मशुद्धि

ता० ६ दिसम्बर १९५६ को प्रातःकाल पंचमी समिति से निवृत्त हो अपने प्रायः सभी साधुओ सहित आचार्य प्रवर केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री श्री मोरार जी देसाई की कोठी पर पधारे। पीछे की तरफ के वरामदे में आचार्य-श्री एक छोटे से पट्टे पर आसीन हुए। मोरार जी भाई आए और वन्दना कर नीचे विछे आसन पर वैठ गये। प्रायः एक घण्टे तक अति मधुर सवाद हुआ। लगभग ४०-५० भाई वहिन साथ में थे।

शिष्टाचार की वातो के वाद आचार्य-श्री ने कहा—इस वार आपने जो अनशन किया, उसमे आप पानी के अतिरिक्त क्या लेते थे ?

मो०—पानी में कुछ नींबू का रस मिला दिया जाता था, वही मैं लेता था।

आ०—आपने उसमे क्या अनुभव किया ?

मो०—मुझे विशेष शान्ति का अनुभव हुआ। मानसिक द्वन्द्व नष्ट हो गये। अनशन मे मेरी यह भावना बलवती बनी कि हिंसा कभी हिंसा से नहीं मरती, अहिंसा से ही उसको मिटाया जा सकता है। वही हुआ। मुझ से कुछ लोगो ने कहा, "शरीर निर्बल हो रहा है, अनशन तोड दीजिए"। पर मैंने कहा—मेरा प्रण जब पूरा होगा, तभी इस विषय मे सोचा जायगा। शारीरिक अस्वस्थता मुझे जरूर सताती थी पर उससे मेरा मनोबल शिथिल नहीं पडा, प्रत्युत बढ़ा। भौतिक पदार्थ प्राप्ति के लिये जो अनशन करते हैं वह ठीक नहीं। आत्मशान्ति के लिए ही उसका उपयोग होना चाहिए।

आ०—हाँ, यह ठीक है। जीवन का या जीवन के अंशों का उत्सर्ग आत्म शान्ति के लिए ही होता है, बाह्य शान्ति तो स्वतः सध जाती है। अभी थोड़े दिन पहले सरदार शहर में हमारे एक साधु श्री सुमतिचन्द जी ने आत्म साधना के लिए आजीवन अनशन किया था। उनकी सारी घटना आचार्य-श्री ने उन्हें सजीव शब्दो मे कह सुनाई। श्री मोरारजी भाई रोमांचित हो उठे। बीच बीच मे कई जिज्ञासायें भी कीं—वार्त्तालाप का अच्छा असर रहा।

अणुव्रत आन्दोलन की बात चलने पर मोरारजी भाई ने कहा—अच्छा है आप प्रेरणा दे रहे हैं। आपका यही कर्तव्य है और आप उसे पूरी तरह निभा रहे हैं। आपके इन प्रयत्नों से लोग लाभ उठायें या नहीं यह उनकी इच्छा है। व्यक्ति स्वय ही अपना सुधार कर सकता है। दूसरे केवल प्रेरणा दे सकते हैं, सुधार नही सकते। आप अपना कार्य करते रहें।

आ०—अब आप पर और अधिक वजन आ गया है।

मो०—हा, मैं तो इस झमेले से निकलना चाहता था। लेकिन

विधिवश और ज्यादा फंस जाता हूँ। जितनी ही असंग्रह की भावना करता हूँ उतना ही संग्रह के कामो मे ढकेल दिया जाता हूँ।

बीच मे संतो ने कहा—"कांग्रेस के कोषाध्यक्ष भी आप ही हैं"

मो०—हाँ ऐसा ही कुछ योग है। मुझे इसमे कुछ रस नहीं आता। मेरी रुचि का विषय है अध्यात्मवाद। उसमे रस आता है।

आ०—सुना है केन्द्र मे दीक्षा और बालदीक्षा विषयक कोई बिल आने वाला है।

मो०—हाँ ऐसी कुछ चर्चा तो है।

आ०—किन्तु इस प्रकार के बिल अध्यात्मवाद के प्रतिकूल पड़ेंगे। यह धर्म के मामलो मे हस्तक्षेप है। इस विषय मे आप लोगो को सोचना चाहिये। बम्बई असेम्बली में जब बालदीक्षा के विरोध मे बिल आया था तब आपने जो कुछ कहा था उसका अच्छा असर रहा। लोगो को उस विषय मे सोचने का मौका मिला था।

मो०—मैं तो इस बार भी चूकनेवाला नहीं हूँ, वैसे ही बोलूंगा। डटकर बिल का विरोध करूँगा। पर हूँ अकेला। नैतिक शक्ति अकेली भी बहुत बड़ी चीज है ऐसा मेरा विश्वास है।

समय काफी हो गया था। आचार्य-श्री को दूसरी जगह पधारना था। वार्ता को वहीं समाप्त किया। श्री मोरार जी भाई ने वन्दना की। आचार्य-श्री ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया।

राजर्षि टंडनजी के यहाँ

आचार्य-श्री श्री मोरार जी देसाई के यहाँ से राजर्षि श्री पुरुषोत्तम दास जी टंडन के निवास स्थान पर पधारे। टंडन जी बीमार थे इसलिये अणुव्रत गोष्ठी मे आने की इच्छा होते भी न आ सके। अपनी बीमारी के कारण उन्होने कहा था—मै आचार्य-श्री से मिलना तो जरूर चाहता हूँ पर मै तो अशक्त हूँ। वहाँ जा नहीं सकता। आचार्य-श्री यहाँ आवेंगे तो उन्हें बहुत कष्ट होगा। अतः उन्हें यहाँ आने का निवेदन कैसे करूँ।

आचार्य प्रवर उनके श्रद्धाशील मानस की भावना को जानकर उनके घर पधारे। वहाँ पहुँचते ही भदंत आनन्द कोसल्यायन (बौद्ध विद्वान) अन्दर से निकल ही रहे थे, आचार्य-श्री से उनकी मुलाकात हुई। कुछ थोड़ी सी बातचीत भी हुई। टंडन जी ने लेटे लेटे ही हाथ जोड़ प्रसन्नता प्रगट की।

टंडन जी बहुत ही अशक्त थे। बोलने मे कष्ट होता था। फिर भी उन्होंने कम्पित स्वर मे कहा—"आप मे बौद्धिक चिंतन है, आप समाज का मूल-ग्राह से उद्धार कर सकते हैं, आपमे यह सामर्थ्य है"।

आचार्य श्री ने उन्हें 'मंगल पाठ' सुनाया। श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़े वे उसे सुनते रहे।

९-१० मील के विहार के बाद आचार्य श्री ११½ बज वापिस निवास स्थान पर लौट आये।

मन्थन (११)

विदेशी मुमुक्षुओं के साथ

जैनागम शब्द कोष पर चर्चा

७ दिसम्बर १९५६ की रात्रि मे जर्मनी के तीन विद्वान श्री अलफ्रेड वायर, फ्रेड वाल्टर लाइफर, वार्न हाई हाइवेच और अमेरिका की एक महिला आचार्य-श्री से मिले।

आचार्य प्रवर ने उनको तेरापंथ व जैन मुनियों के संबन्ध में विस्तृत जानकारी दी। 'तेरापंथ' का अर्थ सुन वे अतीव प्रसन्न हुए।

आचार्य ने कहा—"हमारे यहाँ अनेक भाषाओं का अध्ययन

चलता है। "जैनागम शब्द कोष" के निर्माण की एक बहुत बड़ी प्रवृत्ति चालू है। कुछ कार्य हुआ भी है।

मिस्टर वाल्टर ने कहा—हाँ हमे इसकी सूचना मिली है। जर्मन विद्वान डा० रोथ आपके वहाँ गये थे। तब उन्होने जर्मन दूतावास तथा जर्मनी वासियो के अन्य स्थानों मे यह सूचना प्रसारित की थी कि—"आप लोग कभी अवश्य समय निकालकर आचार्य-श्री तुलसी से मिलें। वे एक स्वस्थ धार्मिक संस्था के नेता हैं। इसके अनुशासन में अत्यंत व्यवस्थित रूप मे आत्म साधना तथा अन्य सफल साधनायें चलती हैं। यहाँ जो जैनागमो का एक शब्दकोष तैयार हो रहा है, उसे देखकर आश्चर्यान्वित रह गया। इसके निर्माण में अनेक साधु लगे हैं।" इस सूचना के फलस्वरूप हम आपके दर्शनार्थ आये है।

मन्थन (१२)

प्रधानमन्त्री श्री नेहरू के साथ

अणुव्रत आन्दोलन में नेहरू जी की आस्था

८ दिसम्बर १९५६ की प्रातःकाल अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रसंग उपस्थित हुआ, जब दो महान् नेताओ का एक दूसरे के साथ चिरप्रतीक्षित सम्मिलन हुआ। आचार्य-श्री ने मानव के आध्यात्मिक और सास्कृतिक निर्माण का जो दायित्व अपने कन्धो पर ओढा है, उसके कारण उनका व्यक्तित्व वैसे ही एक आकर्षण का विषय बन गया है जैसे कि हमारे नेता श्री नेहरू के व्यक्तित्व के प्रति गूढतम अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ के कारण एक आकर्षण उत्पन्न हो गया है। एक राजनैतिक क्षेत्र मे महान्

हैं तो दूसरे आध्यात्मिक क्षेत्र मे वैसी ही महानता सम्पादन किये हुए हैं। आज वास्तव मे ही गंगा-जमना की दो विशाल धाराओं का संगम हुआ।

प्रधान मंत्री श्री नेहरू की कोठी पर

८॥ बजे आचार्य-श्री पंडित नेहरू की कोठी पर पधारे। पंडित जी की सेक्रेटरी श्रीमती विमला ने आचार्य-श्री का स्वागत किया। २८ साधु और साध्विया तथा सैकडों गृहस्थ साथ थे। कोठी के पिछले बरामदे में साधुओं ने पट्टा बिछाया। नेहरू जी २० मिनट बाद आये। आचार्य प्रवर ने साधु-साध्वियो का परिचय कराया। फिर साधु साध्वियाँ एक ओर बैठ गये। पडित जी आचार्य-श्री के पट्टे के पास बिछे हुए आसन पर बैठ गये और बातचीत आरम्भ हुई।

आचार्य-श्री ने कहा—आप २० मिनट लेट हैं।

नेहरू जी—हाँ, आवश्यक तार आया था और मेरी बेटी बीमार है, इसलिये विलम्ब हो गया।

आचार्य-श्री—ठीक ५ वर्ष बाद मिलन हो रहा है। इस वर्ष हमारा चातुर्मास सरदार शहर था। हमारे साधु आपसे मिले थे। शान्दोलन के बारे में आपको जानकारी दी थी। उसकी प्रगति से अवगत कराया था। विद्यार्थियों के कार्यक्रम मे आपने भाग लेने को कहा था। और "आचार्य श्री को यहाँ बुलाइये" यह भी कहा था। मैंने इस पर यहाँ आने का निर्णय किया। इसके साथ दूसरा कारण यूनेस्को सम्मेलन भी है। इन दोनों कारणों से मै अभी अभी यहाँ आया हूँ। १८ नवम्बर तक तो चातुर्मास था, इसलिये उससे पहले हम वहाँ से चल नहीं सकते थे। ता० २६ नवम्बर को चले, ३० को यहाँ पहुँच गये।

पंडित जी ने आश्चर्य भरे शब्दो मे कहा—बहुत कठिन कार्य है। आपने शरीर के साथ ज्यादती की।

आचार्य-श्री—मै चाहता हूँ आज हम स्पष्टरूप से विचार विमर्श करें। हमारा यह मिलन औपचारिक न होकर वास्तविक हो।

हम जानते हैं कि गांधीजी व आप लोगो के प्रयत्नो से भारत को आजादी मिली। पर आज देश की क्या स्थिति है, चरित्र गिरता जा रहा है। कुछेक व्यक्तियो को छोड़कर देश का चित्र खींचा जाये तो वह स्वस्थ नहीं होगा। यही स्थिति रही तो भविष्य कैसा होगा ? बात ठीक है, पर किया क्या जाय ? कोरी बातो से चरित्र उन्नत नहीं होगा। लोगो को कुछ काम दिया जाय तब वह होगा। काम से मेरा मतलब बेकारी मिटाने का नहीं है। काम से मेरा मतलब है चरित्र सम्बन्धी कोई काम दिया जाय। यही मै चाहता हूँ। अणुव्रत आन्दोलन ऐसी ही स्थिति पैदा करना चाहता है। हम छोटे छोटे व्रतो के द्वारा जीवन स्तर को ऊंचा उठाना चाहते हैं। पाँच वर्ष पूर्व मैने आपको इसकी गतिविधि बताई थी। आपने सुना अधिक, कहा कम। आपने आज तक कुछ भी सहयोग नहीं दिया। सहयोग से मतलब हमे पैसा नही लेना है। यह आर्थिक आन्दोलन नहीं है।

नेहरू—मै जानता हूँ आपको पैसा नहीं चाहिये।

आ०—इस आन्दोलन को मैं राजनीति से जोड़ना नहीं चाहता।

ने०—मै तो राजनीतिक व्यक्ति हूँ, राजनीति से ओतप्रोत हूँ, फिर मेरा सहयोग क्या होगा ?

आ०—जैसे आप राजनीतिक हैं, वैसे स्वतंत्र व्यक्ति भी हैं। हम आपके स्वतंत्र व्यक्तित्व का उपयोग चाहते हैं—राजनीतिक जवाहर लाल नेहरू का नहीं। पहली मुलाकात मे आपने कहा था—"मैं उसे पढ़ूंगा" पता नहीं आपने पढ़ा या नहीं।

ने०—मैने यह पुस्तक (अणुव्रत आन्दोलन की) पढ़ी है, पर मै बहुत व्यस्त हूँ। आन्दोलन के बारे मे मै कह सकता हूँ।

आ०—आपने कभी कहा तो नहीं, दूसरा कोई कारण है ? या तो यह हो सकता है कि आप इस आन्दोलन को उपयोगी नहीं समझते। बीच मे नेहरू जी ने कहा यह कैसे हो सकता है ? या यह हो सकता है कि आपको इसमें साम्प्रदायिकता जैसी कोई बात लगती है। वेषभूषा को देख

आपको यह लगता हो कि ये हमारे द्वारा कोई स्वार्थ साधना चाहते हो, पर मै स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि मैं जैन हूँ। जैन धर्म मे विश्वास करता हूँ। जैन श्वेताम्बर तेरापंथ संप्रदाय का संचालक हूँ। पर इस आन्दोलन के द्वारा कोई स्वार्थ साधन नहीं चाहता। यह आन्दोलन व्यापक है। जाति सम्प्रदाय आदि भेदो से परे है। इस पर भी किसी को सांप्रदायिक लगे तो दूसरी बात है—यूँ तो आप भी हिन्दू हैं। किन्तु राजनैतिक नेतृत्व हिन्दूपन से नहीं है।

ने०—मैं जानता हूँ आपका आन्दोलन सांप्रदायिकता से परे है। ठीक चल रहा है।

आ०—हमारे सैकड़ो साधु-साध्वियाँ चरित्र-विकास के कार्य मे संलग्न हैं। उनका आध्यात्मिक क्षेत्र मे यथेष्ट उपयोग किया जा सकता है।

ने०—क्या 'भारत साधु समाज' से आप परिचित है ?

आ०—जिस भारत सेवक समाज के आप अध्यक्ष हैं, उससे जो सम्बन्धित है, वही तो ?

ने०—हाँ, भारत सेवक समाज का मै अध्यक्ष हूँ। यह राजनैतिक संस्था नहीं हैं। उसी से सम्बन्धित वह 'भारत साधु समाज' है।

ने०—आप श्री गुलजारीलाल नन्दा से मिले हैं ?

आ०—पाँच वर्ष पहले मिलना हुआ था। भारत साधु समाज से मेरा सम्बन्ध नहीं है। जब तक साधु लोग मठो और पैसो का मोह नहीं छोड़ते तब तक वे सफल नहीं हो सकते।

ने०—साधुओ ने धन का मोह तो नहीं छोडा है। मैंने नन्दा जी से कहा भी था तुम यह बना तो रहे हो पर इसमे खतरा है।

आ०—जो मै सोच रहा हूँ, वही आप सोच रहे है। आज आप ही कहिये, उनसे हमारा सम्बन्ध कैसे हो ?

ने०—उनसे आपको सम्बन्ध जोड़ने की आवश्यकता भी नहीं है। साधु समाज अगर काम करे तो अच्छा हो सकता है, ऐसी मेरी धारणा

है। पर काम होना कठिन हो रहा है।

आ०—आपको पता है, अभी तीन दिनो तक 'अणुव्रत गोष्ठी' चली थी।

ने०—हाँ, मैंने पत्रो में पढ़ा है।

आ०—उसमे लोग आपका उपयोग लेना चाहते थे, पर स्थितिवश वैसा नही हो सका। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और श्री अनन्तशयनम् अय्यगार भी अस्वस्थ्य व पारिवारिक उलझनो के कारण 'अणुव्रत गोष्ठी' का उद्घाटन नही कर सके। यह कार्य यूनेस्को के डाइरेक्टर जनरल डा० लूथर इवेन्स द्वारा हुआ। उन्हें अणुव्रत आन्दोलन बहुत भाया। [पं० नेहरू ने यह बहुत आश्चर्य से सुना।] मैंने उन्हें (लूथर इवेन्स को) यूनेस्को द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर "मैत्री दिवस' मनाने का सुझाव दिया। वे सोचेंगे—ऐसा उन्होने कहा। मै आपसे सुझाव लेना चाहता हूँ। क्या विचार है ?

ने०—कैसे ?

आचार्य-श्री ने उसका स्पष्टरूप समझाया और कहा, यह दिवस विश्व मैत्री की दृष्टि से आपके पंचशील की आधार शिला बन सकता है।

ने०—पंचशील ! मैंने चलाया तो नहीं, काम मे जरूर लिया है। (पूर्व प्रसग को छूते हुए कहा) यह (मैत्री दिवस मनाने का) काम तो अच्छा है, पर चलने से ही। यह चले तो इसके सम्बन्ध मे मै कह सकता हूँ, कुछ कर सकता हूँ।

आ०—पचशील के बारे मे आप विश्वस्त हैं कि सब लोग ठीक पाल रहे हैं।

ने०—नही, ऐसा तो नहीं है।

आ०—इस विषय मे आपको सोचना चाहिये।

ने०—सोचने का समय नहीं है। बहुत व्यस्त हूँ। सोचने का अवकाश मिल नहीं रहा है।

आ०—डा० लूथर इवेन्स ने चाहा था कि मैत्री दिवस के बारे मे

विज्ञान भवन में मैं कुछ बोलूं। उन्होंने सरकार को पत्र भी लिखा होगा किन्तु उन्हें अनुमति नहीं मिली।

ने०—यह अस्वीकृत क्यों किया गया, मुझे पता नहीं है।

आ०– यह तो मुझे भी मालूम नहीं है।

इसके पश्चात् कुछ अतरग बाते भी हुई। तेरापन्थ और उसकी स्थिति के बारे मे वार्तालाप हुआ। लगभग ४८ मिनट तक विचार विनिमय होता रहा। पांच वर्ष पहले हुई मुलाकात मे पडित जी ने सुना अधिक और बोले कम। इस बार चर्चा मे बहुत अधिक रस लिया।

वार्तालाप की समाप्ति पर पडित जी ने कहा—"आन्दोलन की गतिविधि को मैं जानता रहूं, ऐसा हो तो बहुत अच्छा रहे। आप नंदा जी से चर्चा करते रहिये। मुझे उनके द्वारा जानकारी मिलती रहेगी। मेरी उसमे पूरी दिलचस्पी है।"

वार्तालाप की समाप्ति के बाद नेहरू जी आचार्य श्री को कोठी से नीचे तक पहुँचाने आये।

मन्थन (१३)

श्री अशोक मेहता के साथ

चुनाव शुद्धि पर चर्चा

प्रवचन के बाद ६ दिसंबर १९५६ को समाजवादी नेता श्री अशोक मेहता आचार्य-श्री के साथ विचार-विनिमय करने आये। श्री मेहता ने पूछा—आजकल आपका कार्यक्रम कहां चलता है?

आचार्य-श्री—हमारे साधु-साध्वियां देश के विभिन्न भागो मे,

जहाँ जहाँ वे पर्यटन करते हैं, वहाँ हमारा जन जन मे नैतिक निर्माण-कारी काम चल ही रहा है । दिल्ली में अच्छा कार्यक्रम चल रहा है।

श्री मेहता—अणुव्रती व्रत लेते हैं, वे उनका पालन करते हैं या नहीं, इसका आपको क्या पता रहता है ?

आचार्य-श्री—प्रतिवर्ष होने वाले अणुव्रत अधिवेशनों में जब अणु-व्रती परिषद् के बीच अपनी छोटी छोटी गलतियो का भी प्रायश्चित्त करते हैं, इससे पता चलता है, वे व्रत पालन की दिशा में सावधान हैं। कई लोग वापस हट भी जाते है। इससे भी ऐसा लगता है कि जो प्रतिवर्ष व्रत लेते हैं, वे उन्हें दृढ़ता से पालते हैं। अणुव्रतियो मे अधिकांश जो हमारे सम्पर्क मे आते रहते हैं, उनकी सार सम्हाल तो मै और सौ-सवासौ जगह अलग-अलग घूमने वाले हमारे साधु-साध्वियां लेते रहते हैं। कठिनाई के कारण अगर कोई व्रत नहीं पाल सकता तो उसे अलग कर दिया जाता है और ऐसा हुआ भी है। इस पर से खरे उतरने वाले अणुव्रतियो का भाग नब्बे प्रतिशत रहता है।

हम नैतिक सुधार का जो काम कर रहे हैं, उसमे हमें सभी लोगों के सहयोग की अपेक्षा है। रुपये पैसे के सहयोग की हमे अपेक्षा नहीं है। हम चाहते हैं अच्छे लोग यदि समय समय पर अपने आयोजनों में इसकी चर्चा करते रहें तो इससे आंदोलन गति पकड़ सकता है। अतः हम आपसे भी चाहेंगे कि आप हमे इस प्रकार का सहयोग दें।

श्री मेहता—उपदेश करने का तो हमारा अधिकार है नहीं, क्योंकि हम लोग राजनैतिक व्यक्ति हैं। राजनीति मे जिस प्रकार हमने निर्लोभ सेवा की है, उस पर से हमे उसके संबंध मे कहने का अधिकार है। पर धर्म का हम उपदेश नहीं कर सकते और करना भी नहीं चाहिये। वैसे मै तो कभी कभी इसकी चर्चा करता हूँ और आगे भी करता रहूँगा।

चुनाव के संबंध मे किये जाने वाले कार्यक्रम को लेकर जब उन्हें उनकी पार्टी का सहयोग देने के लिये कहा गया तो उन्होंने कहा— मै

तो अभी यहाँ रहने वाला हूँ नहीं। हमारी पार्टी के दूसरे सदस्य इस कार्यक्रम मे जरूर भाग लेंगे। पर काम केवल घोषणा से नहीं होने वाला है। इसके लिये तो खड़े होने वाले उम्मीदवारों और विशेषतः जनता को जागरूक बनाने की आवश्यकता है। अतः आप जनता मे भी कार्य करें।

आचार्य श्री—हाँ, यह तो हम कर ही रहे हैं। अभी जब हम गाँवो मे से गुजर रहे थे तो एक जगह देहाती लोग मेरे पास आये और बोले—महाराज ! हम भले बुरे को जानते नहीं, हमारे पास अनेक लोग वोट लेने आयेंगे, आप ही बता दीजिये कि हमे वोट किसको देना चाहिये ? औरो को तो हम जानते हैं नहीं, आप कहेंगे उन्हें वोट देंगे।

मैंने कहा—भाई ! यह तो तुम स्वय जानो पर एक बात मैं तुम लोगो से जरूर कहूँगा कि वोट लेने के लिये कम से कम अपने आपको तो मत बेचो। इस प्रकार जनता मे हमारा प्रयास चालू है। इसको हम उम्मीदवारो में भी शुरू करना चाहते हैं।

कुछ विशिष्ट व्यक्तियों का आगमन

व्याख्यान के बाद दिन मे श्री एन० उपाध्याय आचार्य के दर्शनार्थ आये। काफी समय तक विभिन्न विषयो पर वार्तालाप हुआ।

आहार के बाद संसत्सदस्य सेठ गजाधरजी सौमाणी से दान-दया आदि के बारे मे कुछ देर तक बात चली।

तदनंतर कांग्रेस के महामंत्री श्री श्रीमन्नारायण और उनकी पत्नी श्रीमती मदालसा जी आईं। उनसे "राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण अणुव्रत सप्ताह" के बारे मे विचार विनिमय हुआ। उन्होंने उसमे बड़ी अभिरुचि दिखाई और अपने सुझाव भी रखे। सायंकाल प्रार्थना के बाद आज "सामूहिक ध्यान" का कार्यक्रम हुआ।

श्री गुलज़ारी लाल नन्दा के साथ

नैतिक सुधार के आन्दोलन

ता० ६ दिसंबर १९५६ को प्रार्थना के बाद केन्द्रीय योजना मंत्री श्री गुलजारीलाल नन्दा ने आचार्य-श्री के दर्शन किये। बातचीत के सिलसिले मे उन्होने कहा—मैं आज सुबह आपके दर्शनार्थ आने वाला था। मैने पता भी लगाया पर आप सुबह कहीं प्रवचन करने गये हुये थे। मेरा तो आप से पुराना सम्पर्क है। नेहरू जी ने मुझे कहा था कि आचार्य-श्री तुलसी जो काम कर रहे हैं, उससे मुझे अवगत रहना चाहिये।

आचार्य-श्री— हाँ, पाँच वर्ष पहले आप मिले थे, उसके बाद मिलना नही हुआ। आपने जो "भारत साधु समाज" नामक संगठन किया है, उसके विकास आदि के लिये काफी समय देना पड़ता होगा ?

नंदा—हाँ, जो काम प्रारम्भ किया है, उसके लिये समय तो देना ही पड़ता है, अन्यथा वह चीज पनप नही सकती।

आचार्य-श्री—देश मे नैतिक सुधार के जो काम चालू है, उनसे भी आपको परिचित रहना चाहिये। क्योकि वे भी देश के लिये ही है।

नंदा—यह तो ठीक है, नैतिक उत्थान का कार्य किधर से भी हो, वह प्रशंसनीय है। मै आपके आन्दोलन से परिचित हूँ। लेकिन अपने अपने क्षेत्रो के अनुसार सुधार का काम अपने अपने तरीकों से हो रहा है। उसमें एक रूपता नही आती और संगठन का महत्व भी उसमें नही आता। अतः मिलकर काम किया जाये तो अधिक व्यवस्थित और अधिक सुन्दर काम होने की सम्भावना रहती है। आप भी इस विषय मे हमारा सहयोग कर सके तो अच्छा रहे।

श्री महेन्द्र मोहन चौधरी के साथ

अणुव्रत आन्दोलन की भावना

१० दिसवर १९५६ को सायं प्रतिक्रमण करने के बाद कांग्रेस कमेटी के जनरल सेक्रेटरी श्री महेन्द्रमोहन चौधरी आचार्य-श्री के दर्शन करने आये। आचार्य-श्री ने उनको अणुव्रत-आंदोलन की जानकारी दी। विभिन्न वर्गो मे चलते हुये नैतिक काम से अवगत कराकर आचार्य-श्री ने कहा—जनता को तो हमने इसकी काफी भावना दी, पर अब हम चाहते हैं कि ऊँची श्रेणी के लोग इसमे आयें। जब तक चोटी के लोग इसमे नहीं आयेंगे, तब तक जन साधारण इसका मूल्याकन नही कर सकते। पानी ऊपर से नीचे जाता है और सारी धरती को आप्लावित कर देता है। यही बात प्रत्येक कार्यक्रम पर लागू होती है।

श्री महेन्द्रमोहन चौधरी ने कहा—हाँ, यह बात तो ठीक है और आपके बारे में तो यह बात हो भी गई है। जबकि राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मोरारजी भाई, ढेबर भाई, नन्दा आदि से आपकी बात हो चुकी है। आप अपनी विचारधारा दे चुके हैं तथा उन्हें प्रभावित कर लिया है तो ऊँची श्रेणी के लोग तो सम्मिलित हो गये। पर मै यह मानता हूँ कि इस प्रकार चार पाँच सुधरे हुये व्यक्तियो से जगत् का सुधार नहीं होता। उसके लिये तो आम जनता के साथ सम्बन्ध जोड़ना आवश्यक है। उनमें नैतिक भावनाओ के बल पर परिवर्तन करना चाहिये।

आचार्य-श्री ने कहा—हम लोग तो इस ओर भी पूर्ण सचेष्ट हैं। हमारे साधु-साध्वियों के १२० ग्रुप विभिन्न प्रान्तो मे जन-मानस को जगाने का काम करते है। हम पैदल चलते है, इसीलिये गाँव निवासियों से भी अच्छा सम्पर्क रहता है। कोटि कोटि जनता में अपने विचार

बताने का यह सुगम रास्ता है। ग्रामीण जनता में श्रद्धा है, विश्वास है। साधुओ के सम्पर्क से वे अपनेको कृत-कृत्य समझते हैं और उनकी बाते बिना किसी ननु नच के स्वीकार करते हैं।

मन्थन (१६)

यू. पी. आई के डायरक्टर के साथ

आत्मवाद बनाम भोगवाद

१२ दिसंबर १९५६ को युनाइटेड प्रेस आफ इंडिया के डाइरेक्टर श्री सी० सरकार आचार्य-श्री से भेंट करने आये।

आचार्य-श्री ने कहा—आज विश्व में दो दृष्टियाँ प्रमुख हैं—एक आत्मवाद को देखती है तो दूसरी भोगवाद की ओर दौड़ती है।

आत्मवाद सत्य है, मौलिक है, उसमे दिखावा नहीं। किनारों पर चलने वालो के लिये वह कुछ नहीं। उसका मूल्य तो गहराई मे जाने वाले पाते हैं। साधारण व्यक्ति गहरे उतरने वाले नहीं होते। यही कारण है कि विश्व के अधिकाश लोग आत्मवाद से पराङ्मुख हैं। वे भोग की ओर झुके जा रहे है, क्योकि भोग मे चमक है। उसमे परवाने पड़ ही जाते हैं। वे यह नहीं सोचते कि उन्हें अन्त मे तिल तिल जलना पड़ेगा।

आज लोगों की यही दशा है। बाहर का दिखावा ही बड़प्पन का मापदंड है। जिसके पास करोड़ो की सम्पत्ति है, मोटरो की कतार है, गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ हैं, ठाटबाटपूर्ण सामग्री है—वही बड़ा माना जाता है। उसे ही सर्वत्र प्रमुख स्थान मिलता है। इस बड़प्पन के चंगुल मे फँसकर मनुष्य अपनी मर्यादा से च्युत होने में भी नहीं सकुचाता।

आज हमे इस मूल्याकन की दृष्टि को वदलना है। नैतिक मूल्यो का प्रतिष्ठापन करना है। इसके लिये हमे भगीरथ प्रयत्न करने होगे। मैं समझता हूँ कि जननायक, जन सेवक, व्यापारी, वक्ता, साहित्यकार और पत्रकार का यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि वे चरित्र-विकास की योजनाओ मे यथाशक्ति सात्विक सहयोग दें। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं तो वे अपने कर्त्तव्य से च्युत होते हैं। साधु-सन्तों का तो लोगो को सन्मार्ग पर लाना, चारित्रिक वनाना आदि काम सदा से रहा है और इस जिम्मेदारी को निभाते भी हैं। अभी अभी हम २०० मील की लम्बी यात्रा करके राजस्थान से यहाँ आये हैं। हम किसी वाहन का उपयोग नहीं करते, पैदल ही चलते हैं। हमारे उपकरण सीमित होते है।

सरकार—तो क्या आप इतने वस्त्रो से ही काम चला लेते है ?

आचार्य श्री—हाँ, हम शीतकाल भी इन्हीं वस्त्रों से गुजार देते हैं। हम रूई का वना भी कोई वस्त्र काम मे नहीं लाते।

सरकार—ठीक है, आप मे साधना और ब्रह्मचर्य की इतनी गर्मी रहती है कि वाह्य सर्दी पास भी नहीं आती।

आचार्य श्री—क्या आप अणुव्रत-आदोलन से परिचित है ?

सरकार—हाँ, मैंने उसके नियम पढे हैं और उसके कार्यक्रमो से भी पूर्ण परिचित हूँ। प्राय पत्रो मे इसकी चर्चा मिलती रहती है। यह आन्दोलन राष्ट्र के लिये हितकर है। मैं अपने आपको इसके सहयोग मे प्रस्तुत करता हूँ।

तत्पश्चात् आचार्य श्री ने उन्हे "तेरापथ" की विस्तृत जानकारी दी। संघ संगठन व विधान की बाते बताई। वे इससे बहुत ही प्रभावित हुए।

'टाइम्ज़ आफ़ इंडिया' के डिपुटी चीफ़रिपोर्टर के साथ

अणुव्रत आन्दोलन का उद्गम और विस्तार

१२ दिसंबर १९५६ को तीसरे पहर मे अंग्रेजी के प्रमुख दैनिक 'टाइम्ज आफ इंडिया' के डिप्टी चीफ रिपोर्टर श्री रामेश्वरन आचार्य श्री की सेवा मे उपस्थित हुए। उन्होने कहा—मैने आप के अणुव्रत-आन्दोलन की बहुत चर्चा सुनी है तथा आप के साधुओ से मिलने का सुअवसर भी प्राप्त होता रहा है पर आन्दोलन के प्रवर्तक से साक्षात्कार तो आज ही हुआ है। मै चाहता हूँ कि मेरी जिज्ञासाओ का समाधान आप से पाऊँ।

कृपया बतलाइये—अणुव्रत-आन्दोलन का प्रारम्भ किस आधार पर हुआ ?

आचार्य-श्री—देश के नवयुवक मुझ से बार-बार कहा करते थे कि रूढ़ियो से आच्छन्न कार्यक्रमों मे हमारी कोई श्रद्धा नहीं। हम चाहते हैं कि आपके हाथो ऐसा कोई रचनात्मक कार्य हो, जिससे देश की सुषुप्त चेतना जाग सके और हमे, विशेषतः नवयुवको को जीवन-निर्माण की सही दिशा मिल सके। मैं देश की दयनीय दशा को देखकर सोचा करता था कि राष्ट्र का चरित्र दिनो-दिन पतनोन्मुख होता जा रहा है। उसके लिये कोई उपक्रम किया जाय। बस नौजवानो की प्रेरणा और मेरे चिन्तन का परिणाम अणुव्रत-आन्दोलन का सूत्रपात है।

रामेश्वरन्—इसे प्रारम्भ हुए कितने वर्ष हुए हैं ?

आचार्य-श्री—लगभग ८ वर्षो से यह चल रहा है। सरदार शहर

(राजस्थान) मे इसका उद्घाटन हुआ था और इसका प्रथम वार्षिक अधिवेशन देहली के चाँदनी चौक मे हुआ था, जिसमें लगभग ६५० व्यक्तियों ने अणुव्रत की प्रतिज्ञाएँ ली थीं। आज तो यह संख्या लाखों मे है।

रामेश्वरन्—आप कैसे जानते हैं कि वे अपने व्रत निभाते हैं ?

आचार्य-श्री—हम घूमते रहते हैं। अतः हमारा अणुव्रतियो से सहज मिलना हो जाता है। तब उनके आचरण, इधर उधर के व्यवहार तथा अन्य व्यक्तियों से सारी जानकारी मिल जाती है। साधु-साध्वियों के दलों द्वारा भी जाँच होती रहती है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष एक अधिवेशन होता है, उसमे प्रायः अणुव्रती भाई-बहिन सम्मिलित होते हैं तथा अपनी छोटी से छोटी भूल का भी प्रायश्चित्त करते हैं। यही उनके व्रत-पालन का प्रमाण है।

रामेश्वरन्—भारत के कौन-कौन से भागों मे अणुव्रती बने हैं ?

आचार्य-श्री—राजस्थान, दक्षिण भारत, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, पजाब आदि प्रान्तो मे काफी संख्या मे अणुव्रती हैं। वैसे तो प्रायः भारत के सभी प्रान्तो मे अणुव्रती हैं।

रामेश्वरन्—क्या किसी ने अपना नाम वापस भी लिया है ?

आचार्य-श्री—हाँ, लगभग दस प्रतिशत ने अपना नाम वापस लिया है।

रामेश्वरन् —कौन-कौन लोग इसमे सम्मिलित हुए हैं ?

आचार्य-श्री—सभी धर्म, जाति और वर्ग के लोग इसमे आये हैं। धर्म की दृष्टि से हिन्दू, जैन, मुसलमान और ईसाई अणुव्रती बने हैं। जाति की अपेक्षा राजपूत, ब्राह्मण, वणिक, हरिजन आदि सम्मिलित हैं और वर्ग की अपेक्षा मत्री, उद्योगपति, मजदूर, संसत् सदस्य, विधान सभाई, वकील, व्यापारी, न्यायाधीश, विद्यार्थी, अध्यापक आदि सभी वर्गों के लोग अणुव्रती हैं,

तत्पश्चात् "तेरापंथ" के बारे मे भी कुछ चर्चा हुई।

दो बहनों की भेंट

मध्यान्ह मे अखिल भारतीय महिला काग्रेस कमेटी की मंत्रिणी

सुश्री सुकुल मुखर्जी तथा सुश्री कृष्णा दवे आचार्य-श्री के दर्शनार्थ आयीं।

आचार्य-श्री—क्या आप ने अणुव्रत-आन्दोलन का साहित्य पढ़ा है ?

मु०—साहित्य देखा जरूर है किन्तु पढने का अवसर नहीं मिला। पर मुनिजी (महेन्द्र मुनि) से इस विषय मे काफी चर्चा हुई है। उनसे इसके पहलुओ पर अनेक बार विचार-विमर्श हुआ है।

आचार्य-श्री—अच्छा तो आप इसकी गतिविधि से परिचित हैं ही। कहिये आपने इसमे सहयोग देने के बारे मे क्या सोचा है ? क्योकि कोई भी काम बल तभी पकडता है, जब उसमे अनेक व्यक्ति लग जाते हैं और अपने-अपने क्षेत्र मे उसकी भावना का प्रसार करते है। प्रचार का यह एक सुगम तरीका है कि जो लोग जहाँ काम करते है, वहाँ उसकी चर्चा करते रहें और उसके अनुकूल वातावरण बनाते रहें।

मु०—इसमे सहयोग की बात ही क्या है। यह तो हम सबका क म है कि ऐसे चारित्रिक आन्दोलनो को सब काम छोडकर, हम गति दें। मै अपने सम्पर्क मे आने वाले भाई-बहिनो से इसकी चर्चाएँ करूंगी। हमारी कमेटी की २६ प्रान्तीय शाखाएँ है और ४०० समितियाँ हैं। हमें अगर अणुव्रत-आन्दोलन का साहित्य मिले तो हम उसे सारी जगह भिजवा दें तथा इसके अध्ययन की हिदायत भी देदें।

तत्पश्चात् आचार्य श्री ने साधु-साध्वियो के अध्ययन के बारे मे विस्तृत जानकारी दी। आचार्य श्री ने कहा—हमारे यहाँ प्राकृत, सस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी तथा अनेक प्रान्तीय भाषाओ का सुचारु अध्ययन चलता रहता है। किन्तु अध्ययन किन्हीं वेतन भोगी पंडितो द्वारा नहीं होता। साधु ही एक दूसरे को पढ़ाते है। यही परम्परा आज भी चालू है। तत्पश्चात् साधु-साध्वियो द्वारा नव निर्मित कलात्मक वस्तुएँ तथा सूक्ष्म लेखन के पन्ने दिखाये। हाथ से बनी इन कलात्मक वस्तुओं को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ और उन्होंने यह जाना कि तेरापंथी साधुओं का जीवन श्रममय है। वे अपनी आवश्यकता की बहुत-सी चीजें खुद ही बना लेते है।

श्री गुलजारीलाल नंदा के साथ दूसरी बार

साधु दीक्षा और क़ानून

१३ दिसम्बर १९५६ को प्रथम प्रहर मे योजना मन्त्री श्री, नन्दा ने पुनः आचार्य श्री से भेंट की। साधारण बातचीत के बाद आचार्य श्री ने कहा—धर्म करने का अधिकार सब स्थानो मे, सब वर्गों में और सब कालो मे खुला रहा है। इस पर किसी की भी जबरदस्ती नही चल सकती और होनी भी नही चाहिये। लेकिन हम सुनते हैं कि सरकार एक ऐसा कानून बनाना चाहती है कि कोई भी बिना लाइसेन्स के साधु नहीं बन सकेगा। मै समझता हूँ कि ऐसा करना सीधा अध्यात्मवाद पर प्रहार करना है। व्रत ग्रहण करने मे उसकी योग्यता और वैराग्य वृत्ति ही प्रामाणिक मानी जाती है। वय से उसका सम्बन्ध जोड़ना ठीक नहीं और कानून से रोकना तो आत्मा-साधना का अधिकार छीनना है।

नंदा—मै भी ऐसा समझता हूँ कि वैराग्य पर आयु का कोई प्रतिबन्ध नही। पर आजकल साधु वेश मे अनेक ढोगी, चोर और जघन्यवृत्ति के आदमी बढते जा रहे हैं, इसीलिये ऐसी चर्चा चलती है।

आचार्य-श्री—पर इससे मतलब नही सधेगा, जो अनैतिकता से काम करने वाले हैं, वे तो फिर भी अपना धधा इसी प्रकार चलाते रहेंगे। दुविधा केवल उनको होगी जो अपने नियमो से चलते है। देखिये—बाल-विवाह कानून निषिद्ध है फिर भी वे होते ही रहते हैं। कानून से हृदय नहीं बदलता इसीलिये हम इसे उपयोगी नहीं मानते।

दीक्षा के विषय मे हम तो व्यक्ति के ज्ञान और व्यवहार को ही कसौटी मानते हैं। हमारे यहाँ दीक्षा देने का अधिकार एक मात्र आचार्य को ही है, अन्य किसी को नहीं। आचार्य भी काफी समय तक उसके आचार-विचार और स्वभाव की परख करते हैं। तदनन्तर प्रव्रजित करते हैं। ऐसी दीक्षा को कानून से बन्द करना कहाँ तक उचित है ?

नंदा—मै इस विषय पर विचार करूँगा। अब तक तो इस प्रकार का कोई बिल संसद् में नहीं आया है। कुछ लोगो का उसे लाने का विचार तथा प्रयत्न अवश्य है। अच्छा, आपने "भारत साधु समाज" के साथ मिलकर कार्य करने के विषय मे क्या सोचा है ?

आचार्य श्री—नैतिक और चारित्रिक विशुद्धि का जहाँ तक सवाल है, हम उसके साथ है और अन्य विषयो से सम्बन्ध कम सम्भव लगता है। क्योकि उसमे कुछ उद्योग भी सम्मिलित हैं, जो हमारी मर्यादा के अनुकूल नहीं बैठते।

नंदा—नही, ऐसा कोई औद्योगिक धन्धा तो उसके जिम्मे नही है। उसका लक्ष्य तो अध्यात्मवाद को फैलाना तथा साधु समाज को सुधारना है।

आचार्य-श्री—फिर भी हम लोग कोई भी चिट्ठी नहीं देते तथा अपने शास्त्रीय नियमो के अनुसार किसी सभा या समिति के अध्यक्ष, मन्त्री और सदस्य नहीं बन सकते। और वैसे हम यही सुधार का काम कर रहे है। यह आवश्यक नही कि सब लोग एक ही प्रकार से काम करें।

इस प्रकार आधा घटे तक विचार-विमर्श हुआ।

दो जर्मन सज्जनों के साथ

जीवन शुद्धि

१३ दिसम्बर १९५६ को मध्याह्न मे जर्मन दूतावास के श्री वाल्टर लाइफर और श्री वार्नहार्ट हाइवेच ने आचार्य श्री से भेंट की। शिष्टाचार के बाद निम्न प्रश्नोत्तर हुए :—

लाइफर—आज दुनियाँ व्यथित है, बडे राष्ट्र छोटे राष्ट्रो को दबोच रहे हैं। परस्पर आक्रमण होते हैं। उनसे कैसे बचा जा सकता है और यहाँ अहिंसा कैसे काम कर सकती है ?

आचार्य-श्री—अहिंसा मे आत्म-शक्ति होती है। उसमे शुद्ध प्रेम होता है। हम जब निश्छल प्यार करेंगे, अपनी तरफ से भय मुक्त कर देंगे और किसी भी प्रकार से बाधक न बनेंगे तो आक्रमण स्वतः बन्द हो जायेगा।

लाइफर—अणुव्रत-आन्दोलन का एक नियम है—"४५ वर्ष के बाद विवाह न करना" ऐसा क्यो ? भारत मे १८–२० वर्ष की अवस्था मे विवाह हो जाते हैं, पर पाश्चात्य देशो में तो कही कहीं ४०–५० वर्ष के बाद प्रथम-विवाह होता है।

आचार्य-श्री—ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध संयम से है। वह यदि यौवन मे न हो सका तो ढलती आयु मे तो अवश्य हो, यह इस नियम का उद्देश्य है। यहाँ (भारत मे) कुछ ऐसा चलता है कि ६०–७० वर्ष के बूढ़े दूसरा तीसरा विवाह करने के लिये तैयार होजाते हैं। अपने मन पर काबू नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति मे यह नियम उपयोगी है।

लाइफर—अणुव्रतों का प्रचार क्या सब धर्मो मे और सब देशो में किया जा सकता है ?

आचार्य-श्री—हाँ, इसके नियमो का चयन ही कुछ इस प्रकार से किया गया है कि ये देश-विदेश सब जगह चल सकते हैं और सब धर्म वाले ग्रहण कर सकते है। क्योकि ये नियम आत्मा है या नहीं, ईश्वर कर्ता है या अकर्ता ऐसे सैद्धान्तिक भेद डालने वाले नही, लेकिन नैतिक नियम हैं। जीवन मे उतारने की चीजें हैं। इनमे कोई दो मत नहीं हो सकते।

लाइफर—आन्दोलन ऐहिक सुख-सुविधा के लिये है या अदृष्ट जीवन के लिये ?

आचार्य-श्री—यह जीवन विशुद्धि के लिये है। जीवन शुद्ध होगा तो यहाँ भी शान्ति मिलेगी और इतर लोक मे भी।

लाइफर—आत्मा ही सुख-दुख का कर्ता है या कोई अन्य ?

आचार्य श्री—आत्मा ही सुख-दुख का कर्ता है। कोई अन्य शक्ति नही।

लाइफर—हम जो अच्छा काम करते है, क्या उसके लिये ईश्वर का आशीर्वाद आता है ?

आचार्य-श्री—अच्छा अनुष्ठान स्वयं ही आशीर्वाद है। ईश्वर कोई आशीर्वाद नही भेजता ?

लाइफर—हमारे यहाँ ऐसा माना जाता है कि ईश्वर अनुग्रह करता है पर ऐसा नही कि वह अनुग्रह धार्मिक पर ही करे, वह एक पापी पर भी कर सकता है। वह उसकी व्यक्तिगत चीज है। किन्तु वह प्रायः करता धार्मिक पर ही है, क्योकि उसके लिये वही उत्तम भाजन होता है। फिर भी कभी-कभी देखा जाता है कि जो आजीवन पापो में लिप्त रहा, वह भी अन्तिम समय में धर्म-प्राण बन जाता है। यह प्रभु का अनुग्रह ही कहा जा सकता है। यहाँ तर्क नहीं चलता, केवल श्रद्धा काम देती है।

आचार्य-श्री—पूर्व अवस्था में जो व्यक्ति पापी रहा और अन्तिम अवस्था मे धार्मिक बनता है, वह उसके आत्म-सुधार का ही परिणाम

है। ईश्वर का उसमे कुछ सहयोग हो, ऐसा जँचता नही। आप लोग अणुव्रत-आन्दोलन मे क्या सहयोग कर सकते हैं ?

लाइफर—हमारे यहाँ भी ऐसे नैतिक नियमों की आवश्यकता है। पर वहाँ धार्मिको को टेलीविजन, ब्राडकास्ट आदि पर मौका नही दिया जाता। अतः आप लोग सशक्त धार्मिक वहाँ आयें तो कुछ हो सकता है। मैं विश्वास पूर्वक कहता हूँ कि इसका अच्छा असर पड़ेगा।

आचार्य-श्री—हम लोग पैदल चलते हैं। वहाँ जाना सम्भव प्रतीत नहीं होता। हम आपको ही अपना दूत बनाते है। आप अपने देश मे यथा-सम्भव इसको फैलाने का यत्न करें।

लाइफर—हाँ, हमारा दूतावास इसके लिये यथा-शक्ति तैयार है। हम पत्रों द्वारा इसका प्रचार करेंगे, रिपोर्ट भेजेंगे और लोगो को इसकी जानकारी देंगे। आज हमने आपसे जीवन विशुद्धि का मार्ग प्राप्त किया है। हम आपके आभारी हैं। आपने जो अपना अमूल्य समय दिया है, हम वह कभी भूलेगे नहीं। धन्यवाद।

मन्थन (२०)

अमरीकी महिला जिज्ञासुओं के साथ

जैन मुनि जीवन की मर्यादा

१४ दिसम्बर १९५६ को तीन अमेरिकन महिलायें आचार्य-श्री से भेंट करने आयीं। आचार्य-श्री ने जैन साधु जीवन का परिचय देते हुए उन्हें बताया—हम लोग आजीवन अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पांच महाव्रतों की साधना करते हैं। अहिंसा के लिए ही

हम पैदल चलते हैं। रात मे नहीं चलते। अभी इन तीन वर्षो में हमने ५ हजार मील की यात्रा की है। हम बीच बीच मे गावो में ठहरते हैं। वहाँ उपदेश करते है। हम चातुर्मास के सिवाय एक मास से अधिक कहीं भी नही ठहरते। बीमारी का अपवाद है। हम रात्रि-भोजन नहीं करते। हरी घास पर नहीं चलते। मास भी जैन साधुओ के लिये वर्ज्य है।

प्र०—भारत मे जैन कितने है ?

उ०—जन गणना मे जैनो की सख्या १५ लाख आई है, पर मेरा खयाल है जैन ४० लाख से कम नही होने चाहिये।

प्र०—आपके भोजन की विधि क्या है ?

उ०—हम भोजन नहीं पकाते और न हमारे लिये पकाया हुआ लेते हैं। गृहस्थ लोग अपने लिये जो बनाते हैं, उसका ही कुछ अंश ग्रहण कर हम अपना काम चला लेते हैं।

प्र०—दूसरे पकाते हैं, उसमे भी तो हिंसा होती होगी ?

उ०—हाँ, पर वे तो स्वयं अपने लिए पकाते ही है। क्योकि सारे तो साधु होते नहीं।

प्र०—साधु बनने मे न्यूनतम अवस्था कितनी है ?

उ०—अवस्था की दृष्टि से शास्त्रो में ९ वर्ष का विधान आया है पर साथ साथ मे योग्य होना भी आवश्यक है। अयोग्य भले ही ६० वर्ष का क्यो न हो, दीक्षा नहीं हो सकती।

प्र०—कोई मनुष्य जानवर पर अत्याचार करे तो आप उस समय क्या करेंगे।

उ०—हम मारने वाले को उपदेश देंगे। हिंसात्मक तरीको से बचाना हमारा काम नहीं है। क्योकि हम हृदय परिवर्तन को ही धर्म मानते हैं।

प्र०—क्या आप पशुओ पर अत्याचार नही करने का उपदेश करते हैं ?

उ०—अवश्य, इसीलिए तो हम किसी भी प्रकार की सवारी नही करते।

प्र०—पर मोटर, प्लेन आदि मे तो किसी जानवर को कष्ट नहीं होता तो फिर आप उनमे क्यो नहीं बैठते ?

उ०—उनमे वैसे तो किसी जानवर को कष्ट होता नहीं दीखता, पर उनके नीचे आकर या उनके प्रयोग से छोटे छोटे जीव तो बहुत मरते ही हैं और बड़े जीव भी तो उनसे मर सकते हैं।

प्र०—कृषक खेती करते है। वे तो अहिंसक नहीं हो सकते ?

उ०—हाँ, वे पूर्ण अहिंसक नहीं हो सकते।

प्र०—स्त्रियो के लिये क्या आपके धर्म मे समानता है ?

उ०—हाँ, जितने अधिकार पुरुष को हैं, उतने ही स्त्रियो को भी हैं। आत्म-विकास का सबको समान अधिकार है।

प्र०—क्या वे भी पैदल चलती हैं ?

उ०—हाँ। साध्वियाँ हजारो मील पैदल घूमती है।

प्र०—क्या वे उपदेश भी करती हैं ?

उ०—हाँ, बड़ी-बडी सभाओ मे भी उनका उपदेश होता है और बहुत से लोग उनसे प्रभावित होकर अनेक बुराइयो का त्याग करते हैं।

हमारा दूसरा महाव्रत है सत्य। हम जीवन भर असत्य नहीं बोलते और वैसा सत्य भी नहीं बोलते, जिससे किसी का नुकसान होता हो। इसलिये हम न्यायालयो मे कभी गवाही नहीं देते।

तीसरा महाव्रत अचौर्य है। हम कोई भी चीज बिना पूछे नहीं लेते। मकान भी पूछ कर ही लेते हैं और जब हमे मकान मालिक मना ही कर देता है तो हम उसी वक्त उसे खाली कर देते हैं।

प्र०—क्या आप पैसा नहीं रखते ?

उ०—नहीं, हमने तो अपना स्वय का धन भी छोड़ दिया है।

प्र०—क्या आप जातिवाद को मानते हैं ?

उ०—नहीं, भगवान् महावीर ने जातिवाद को अतात्विक माना है।

प्र०—क्या आप पुनर्जन्म को मानते है ?

उ०—हाँ, क्योकि आत्मा शाश्वत है। जब तक वह मुक्त नही बन जाती तब तक एक शरीर से दूसरे शरीर मे आती रहती है। अतः पूर्व जन्म और पुनर्जन्म दोनों ही है।

प्र०—क्या विदेशो मे भी जैन धर्म का प्रचार है ?

उ०—हाँ, डा० हर्मन जैकोवी जैनधर्म के अच्छे ज्ञाता थे और भी बहुत से जैन श्रावक हैं। जर्मन भाषा में तो जैन दर्शन का बड़ा साहित्य है। रात मे हम रजोहरण से आगे की जगह को पूजकर चलते है। हम लोग धातु मात्र नही रख सकते। अतः काँटा निकालने के लिये भी हम काठ की बनी हुई चींपड़ी और शूल रखते हैं।

प्र०—आप धातु क्यो नही रखते ?

उ०—वह परिग्रह माना गया है। जीवनयापन के लिये वह आवश्यक भी नहीं है।

प्र०—क्या जैन साधु श्रम भी करते हैं ?

उ०—हाँ, पात्र-निर्माण, लेखन-चित्र, रजोहरण आदि चीजें वे अपने हाथ से ही तैयार करते हैं।

जब उन्हें पात्र, पत्र आदि दिखाये गये तो वे बड़ी प्रसन्न और आश्चर्यान्वित हुईं और कहने लगीं —

प्र०—क्या आप इन्हें बेचते भी है ? आप हमे दे सकेंगे क्या ?

उ०—नही, ऐसे तो दे नहीं सकते। तुम भी अगर साध्वी बन जाओ तो तुम्हें भी दे सकते हैं। वह हसने लगी और कहने लगीं—वह तो हमसे नहीं होगा।

आचार्य-श्री ने कहा - एक दूसरी बात और है, हम जिस प्रकार सवारी पर नहीं चढते, उसी प्रकार हमारी चीजें भी किसी सवारी मे नही चढती।

वह हँसती हुई कहने लगी—पैदल तो हम से अमेरिका नही जाया जा सकता।

प्र०—क्या आपकी साध्विया दूसरो की सेवा कर सकती हैं ?

उ०—हाँ, वे आध्यात्मिक सेवा कर सकती हैं। हम गृहस्थो से न तो शारीरिक श्रम लेते है और न देते हैं।

प्र०—क्या आप भूखे को भोजन दे सकते हैं ?

उ०—हाँ, पर उसी अवस्था मे जब वह हमारे जैसा ही हो। हम जैसे शरीर पोषण के लिए नहीं खाकर, संयम निभाने के लिए खाते है, उसी प्रकार अगर कोई पूर्ण संयत व्यक्ति सयम पोषण के लिये खाये तो हम उसे भी भोजन दे सकते हैं। लेकिन सेवा को हम आध्यात्मिक धर्म नहीं मानते। वह तो सामाजिक कर्तव्य है। कर्तव्य और धर्म मे अन्तर है। धर्म कर्तव्य अवश्य है किन्तु सारे कर्तव्य धर्म नहीं। हम केवल धार्मिक काम ही कर सकते है।

प्र०—जैन श्रावक तो करते होगें ?

उ०—वे साधु नहीं, अत यथावश्यक करते ही है।

प्र०—कलकत्ते मे मैंने जैन मंदिर देखा था। क्या आप मूर्ति-पूजा करते हैं ?

उ०—नहीं, हम न तो मूर्ति-पूजा ही करते है और न फोटो को ही नमस्कार करते हैं। यहाँ तक कि गुरू के फोटो को भी वन्दना नहीं करते। जैनो मे कई सम्प्रदाय हैं। उनमें हम तेरापंथी हैं। हम लोग मूर्ति-पूजा नहीं करते। हमारे संघ मे ६५० साधु-साध्वियाँ है। संघ मे एक ही आचार्य होता है। सारे साधु देश के कोने कोने मे घूमते रहते हैं। धर्म का प्रवचन करना उनका मुख्य काम है।

तत्पश्चात् आचार्य-श्री ने उन्हें अणुव्रत-आन्दोलन की जानकारी दी। आचार्य-श्री ने पूछा—क्या तुम भी अमेरिका मे इस सर्व-धर्म-सम्मत आन्दोलन का प्रचार करोगी ? मैत्री दिवस के बारे मे भी आचार्य-श्री ने उन्हें समझाया और कहा—क्या तुम स्वय इस पर चल कर अमेरिका के लोगो को भी यह बताओगी ?

उ न्होने स्वीकार किया।

साथ मे आयी हुई एक पत्रकार महिला ने अणुव्रतो का अध्ययन कर इस पर कुछ साहित्य लिखने का वादा किया और प्रसन्न होकर फिर दुबारा आने का वादा कर तीनो चली गयीं।

मन्थन (२१)

उपराष्ट्रपति के साथ

सक्रिय जीवन का प्रभाव

१५ दिसंबर १९५६ को प्रातः आचार्य श्री उपराष्ट्रपति डा० सर्वेपल्ली राधाकृष्णन् की कोठी पर पधारे। उन्होंने श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़ कर अभिनन्दन किया। आचार्य श्री ने कहा—हम लोग अभी सरदार शहर (राजस्थान) से आ रहे है। क्योकि आजकल दिल्ली सांस्कृतिक और धार्मिक वातावरण की क्रीडा स्थली बनी हुई है। हम भी अपनी भावना उसमे देने आये हैं। आपको पता होगा। जैनगोष्ठी का आयोजन हुआ, तीन दिन "अणुव्रत गोष्ठी" का कार्यक्रम चला और परसो भारत से अमेरिका विदा होने से पूर्व नेहरूजी ने "अणुव्रत-सप्ताह" का उद्घाटन किया।

उ० रा०—लेकिन मैं इनमे से किसी मे भी सम्मिलित नहीं हो सका।

आ०—हाँ, हमने सुना था कि आपकी पत्नी का देहावसान हो गया था। संसार का यही स्वरूप है। जन्म-मृत्यु का अविच्छिन्न ताँता लगा रहता है। आचार्य-श्री ने प्रसंगोपात्त "शान्त सुधारस" की "विनय

चिन्तय वस्तु तत्त्वं" गीतिका भी फरमायी, जो कि उपराष्ट्रपति ने बड़े ध्यान से सुनी।

उ० रा०—आप यहाँ अभी कितने दिन और रहेंगे ?

आ०—अभी कुछ दिन तो ठहरना होगा क्योंकि "अणुव्रत-सप्ताह" चल रहा है। उसके आगे के भी अलग-अलग वर्गों के कार्यक्रम बन चुके हैं।

उ० रा०—जैन-मंदिर मे हरिजन-प्रवेश के विषय मे आपका क्या अभिमत है ?

आ०—जहाँ धर्माभिलाषी व्यक्ति प्रवेश न पा सके, वह क्या मंदिर है ? किसी को अपनी अच्छी भावना को फलित करने से रोकना, मैं धर्म में बाधा डालना मानता हूँ। वैसे हम तो अमूर्तिपूजक है। जैनो मे मुख्य दो परम्पराएँ हैं—श्वेताम्बर और दिगम्बर। दोनो ही परम्पराओं के दो प्रकार के सम्प्रदाय हैं—एक अमूर्तिपूजक और दूसरा मूर्तिपूजक। जैन सम्प्रदायों मे मूर्तिपूजा के विषय मे मौलिक-दृष्टि से प्राय. सभी एक मत हैं। कुछ एक चीज को लेकर थोड़ा पार्थक्य है, जो अधिकाश बाह्य व्यवहारों का है, जो क्रमश. कम होता जा रहा है। अभी जैन सेमिनार मे श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो सम्प्रदायों के साधुओ ने भाग लिया। वहाँ मुझे भी प्रमुख वक्ता के रूप मे निमंत्रित किया गया था और अच्छा सहिष्णुता का वातावरण वहाँ था।

उ० रा०—समन्वय का प्रयत्न तो होना ही चाहिये। आज के समय की सब से बड़ी यह माँग है और इसी के सहारे बड़े-बड़े काम किये जा सकते हैं।

आ०—आपका पहले राजदूत के रूप मे और अब उपराष्ट्रपति के रूप मे राजनीति मे प्रवेश हमे कुछ अटपटा सा लगा था कि एक दार्शनिक किधर जा रहे हैं पर अब आपकी सास्कृतिक रुचियों और अन्य कामो को देखकर लगा कि यह तो एक प्राचीन प्रणाली का निर्वाह हो रहा है। वर्तमान की जो राजनीति है, उसमे कोई विचारक ही सुधार

कर सकता है और उसे एक नई मोड़ दे सकता है, क्योंकि उसके पास सोचने का नया तरीका होता है और नया चिन्तन होता है। वह जहाँ भी जाता है, सुधार का काम शुरू कर देता है।

उ० रा०—आज द्रव्य हिंसा का तो फिर भी कुछ अंशो मे निषेध हो रहा है पर भाव-हिंसा का प्रभाव तो और भी जोरों से चल रहा है, इसके निषेध के लिये कुछ अवश्य होना चाहिये।

आ०—हाँ, अणुव्रत-आन्दोलन इस दिशा मे सक्रिय है।

उ० रा०—मैं ऐसा मानता हूँ कि जीवन-उदाहरण का जो असर होता है, वह उपदेश या बोध से नहीं होता। इसीलिये आप जो काम करते हैं, उसका जनता पर स्वतः सुन्दर असर होता है। क्योंकि आपका जीवन उसके अनुरूप है।

आ०—आज सद्भावना की बड़ी कमी है। यही कारण है कि आज लोग परस्पर तने रहते है और द्वन्द्वो के शिकार होते है। हमने सोचा है कि सद्भावना की वृत्ति लाने के लिए एक "मैत्री-दिवस" मनाना चाहिए जिससे सब परस्पर क्षमायाचना करें। दूसरों द्वारा हुए सब कटु-व्यवहारो को भूलकर निःशल्य बनें। वार्तालाप के दौरान मे नेहरू जी से भी मैंने यही कहा था और उन्होंने इसका समर्थन भी किया।

उ० रा०—यह चीज तो अच्छी है पर लोग इसे भावनापूर्वक पकड़ें तभी ऐसे दिन मनाने का महत्त्व है। अन्यथा तो जैसे अन्य निर्दिष्ट दिन रूढ़ि मात्र होते हैं, वैसे ही यह हो जायगा। यदि इसकी भावना को जागृत रखा जा सके तो यह एक बहुत ही उपादेय सूझ है।

'स्टेट्समैन' के दिल्ली संस्करण के सम्पादक के साथ

अनैतिकता का निवारण और पत्रकार

१५ दिसंबर १९५६ को स्टेट्समैन के दिल्ली संस्करण के सम्पादक श्री क्रोश लैन ने आचार्य-श्री के दर्शन किये। आचार्य-श्री ने उन्हें अणुव्रत आन्दोलन का परिचय देते हुए कहा—आज भारत मे ही नहीं, सारे संसार मे अनैतिकता का दौर है, उसे दूर करना प्रत्येक समझदार मनुष्य का कर्तव्य है। अतः पत्रकारो पर भी यह उत्तरादायित्व है कि वे आज के अनैतिक वातावरण को शुद्ध करने मे अपना सहयोग दें। पर अक्सर देखा जाता है, वे इस ओर कम ध्यान देते हैं, वे अपने अखबारो मे लूट-खसोट और लड़ाई की बातो को जितना स्थान देते हैं, उतना नैतिक प्रवृत्तियो को नही देते, उनकी दृष्टि में राजनीति का जितना प्राधान्य है, उतना संयम का नही है। आज की ही बात है, मै डा० राधा कृष्णन के यहाँ गया तो फोटोग्राफर भी वहाँ पहुँच गया और वह इसलिये कि डा० राधा कृष्णन भारत के उपराष्ट्रपति हैं, और उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति को पत्रकार महत्व देते है। मै यह नहीं कहता कि मेरा फोटो लेना चाहिये। मै तो उसका निषेध करता हूँ। पर कहने का तात्पर्य यह है कि पत्रकार नैतिक दृष्टि से कहाँ क्या हो रहा है, इसका ध्यान कम रखते हैं।

क्रोशलैन ने आपकी बात स्वीकार करते हुए कहा—हाँ, यह तथ्य वास्तव में सही है।

आचार्य-श्री ने फिर उनसे कहा—आज संसार की जो तनावपूर्ण

स्थिति है, उसे मिटाना जरूरी है। इसके लिये हमने एक योजना रखी है कि सारे राष्ट्र कम से कम एक दिन एक दूसरे से क्षमा माँगें, एक राष्ट्रपति दूसरे राष्ट्रपतियो से, एक सेनापति दूसरे सेनापतियो से और इसी प्रकार एक पत्रकार दूसरे पत्रकारो से अपने गलत व्यवहार की क्षमा मांगें तो इससे मैत्री भाव बढ़ेगा और आपसी तनाव कम होगे। आपको यह बात पसन्द आई ? उसके 'हाँ, यह तो अच्छा है' कहने पर आचार्य श्री ने कहा—तो आप इसमे क्या सहयोग दे सकते हैं ? उसने कहा—इस विषय पर अपने अधिकारियो से बातचीत करूँगा। वही व्यक्ति जो पहले आने मे संकोच करता था, फिर आने का वायदा कर वापस चला गया।

मन्थन (२३)

लोकसभा के अध्यक्ष के साथ

साधुदीक्षा और कानून

१६ दिसम्बर १९५६ को प्रातःकालीन प्रवचन के बाद लोक सभा के अध्यक्ष श्री अनन्त शयनम् अय्यंगार ने आचार्य-श्री के दर्शन किये। वे साथ मे नारंगी, अमरूद आदि फल लाये थे और वंदना के साथ ही उन्हें भेंट करना चाहा। पर आचार्य-श्री ने कहा—हम वनस्पति को सचित्त (सजीव) मानते हैं, अतः उसे छूते भी नहीं। हम तो केवल त्याग ही की भेंट चाहते हैं।

अय्यगार—तो हमारा आत्म-समर्पण लीजिये। भारत मे अंग्रेज लोग तराजू लेकर आये थे पर उन्होंने भारतीय संस्कृति के विरुद्ध तोला। उन्होने पैसे वालो को भौतिक सामग्री सम्पन्नो को बड़ा माना। जो

इम्पीरियल होटल में ठहरता है, वही उनकी दृष्टि मे महान् है। पर भारत उसे महान् मानता है जो वैराग्य सम्पन्न है, सेवा भावी है और त्यागी है। त्यागियो के आगे यहाँ के सम्राट् झुके और उनको अपना आदर्श माना। मै समझता हूँ, आप उसी के प्रतीक हैं।

आचार्य-श्री—आपका "हिन्दू कोड बिल" के विषय में क्या खयाल है ?

अय्यंगार—दुनिया परिवर्तनशील है। उसमें परिवर्तन होते ही रहते है। सुधार के लिये आवश्यक है कि आज की समाज व्यवस्था मे भी परिवर्तन आये। मनु के सिद्धान्त आज काम नहीं करते। अतः जरूरी है है कि कोई उचित व्यवस्था हो। सुधार संसार मे होता ही रहता है। मैं अभी चीन गया था, वहाँ मैंने अच्छी बातें देखीं। वहाँ वेश्या वृत्ति नहीं है, घुड़दौड नहीं होती, डान्स बन्द है और कोई भिखारी नही है। चीन की सरकार ने व्यापार भी अपने हाथों मे ले रखा है। यह इसलिये कि अधिक शोषण न हो और कोई अधिक मुनाफा न ले सके। मेरी आपसे विनती है कि आप उपदेश के अधिकारी है, अतः आपको भी उपदेश करना चाहिये कि लोग ज्यादा ब्याज न लें, सग्रह की अति-भावना न रखें।

आचार्य-श्री—हम तो अपना कर्तव्य निभा रहे हैं। ऐसी भावनाएँ देने मे सचेष्ट हैं पर आप लोगो का भी कुछ कर्तव्य है। आप लोगो का भी उचित सहयोग अपेक्षित रहता है।

आयंगार—मेरी इन विषयों में इच्छा तो रहती है पर क्या करूँ, संसद के कामो मे व्यस्त रहना पड़ता है।

आचार्य-श्री—पर यह चरित्र-सुधार का काम संसद के कामो से भी बडा है।

अय्यंगार—हाँ, यह बुनियादी काम है, इसलिये सहज बड़ा हो जाता है।

आचार्य-श्री—आज भारत में विचित्र विचार फैल रहे हैं। पाश्चात्य लोग तो बड़ी आस्था और श्रद्धा से यहाँ आते हैं कि भारतीय संस्कृति

महान् है, उदार है, उसमें से हमे कुछ जीवन निर्माण के सूत्र पकड़ने हैं। पर यहाँ के लोग सोचते हैं कि पश्चिम से जो धारा बह रही है. वह जीवनदायिनी है। आश्चर्य है कि लोग अपने घर को न देखकर केवल बाहर की ओर ताकते हैं।

आचार्य-श्री—इस बार बौद्ध धर्म को इतना महत्व दिया गया, उसका क्या आधार है ?

अय्यंगार—बौद्ध धर्म एक भारतीय धर्म है। उसमे भारत की रुचि रहनी स्वाभाविक है। दूसरे बौद्ध धर्म एक सशक्त धर्म है। बहुत सारे देशो द्वारा वह स्वीकृत है और तीसरी बात यह कि यह सरकार की एक नीति भी थी।

आचार्य-श्री—दीक्षा बिल के बारे मे आप क्या सोचते हैं ?

अय्यंगार—लाइसेंस प्राप्त ही दीक्षित हो सकता है, इसका मैं समर्थक नहीं पर साथ मे ऐसा भी समझता हूँ कि छोटे-छोटे बच्चो की दीक्षा नही होनी चाहिये। क्योकि उनके विचार अपरिपक्व रहते हैं। भुक्त भोगी होकर जो दीक्षित होता है, वह अधिक सुस्थिर रह सकता है, इसलिये कि वह तथ्य को अच्छी तरह परख लेता है। पर कानून के द्वारा इस पर कोई पाबन्दी नहीं लगनी चाहिये।

राष्ट्रपति के निजी सचिव के साथ
जैन आगमों के शब्द कोष का निर्माण

ता० १७ दिसम्बर १९५६ को राष्ट्रपति के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री विश्वनाथ वर्मा जी ने आचार्य-श्री के दर्शन किये। औपचारिक बातो के बाद आचार्य-श्री ने कहा—इस बार अणुव्रत आन्दोलन को यहाँ अच्छी गति मिली है। अणुव्रत सप्ताह का कार्यक्रम अच्छे ढंग से चल रहा है। विभिन्न वर्गों के लोगों को इसके द्वारा नैतिक जागृति की सजीव प्रेरणा मिली है। राष्ट्रपति जी से भी उस दिन (२-१२-५६ को) इस विषय पर महत्वपूर्ण वार्तालाप हुआ था। उन्होंने यह कहा था—मैं तो ऐसा चाहता हूँ कि ऐसी नैतिक धाराएँ यहाँ भारत में निरन्तर बहती रहें और जन जीवन मे जो मैल आगया है, उसे धोकर बहा दें। आप जो निष्काम रूप में यह कार्यक्रम चला रहे हैं, उससे देश की एक बहुत बड़ी जरूरत को आप पूरा कर रहे हैं। लोगों में इसके प्रति आस्था बढ़ेगी। वे इसका मूल्यांकन स्वयं करेंगे और अपना सहयोग भी देंगे। राष्ट्रपति जी की इसमे अच्छी आस्था है, उस दिन उनसे अनेक विषयों पर बातचीत हुई। पर एक विषय छुआ भी न गया, जो कि उनकी दिलचस्पी का विषय था। "प्राकृत सोसाइटी" से उनका विशेष लगाव है। वे उसके कार्य-कलापों मे विशेष रुचि रखते हैं। हमारे यहाँ प्राकृत का एक बहुत बड़ा काम हो रहा है। समस्त जैन आगमों का शब्द कोष तैयार किया जा रहा है। संस्कृत में भी प्रत्येक शब्द दिया जायेगा। सूक्ष्म अन्वेषण के साथ यह काम किया जा रहा है। विशेष बात यह है कि इसमे किसी वेतन भोगी पंडित का सहयोग नहीं है, केवल संघ के साधु साध्वियाँ सारा कार्य कर रहे हैं। हमारे अध्ययन-अध्यापन के लिये कोई वेतन भोगी नहीं रहते।

वर्मा—मैं आपके कार्यक्रमो से परिचित रहा हूँ। अणुव्रत आन्दोलन मे मेरी बड़ी दिलचस्पी है। राष्ट्रपति जी चरित्रात्मक कामो मे बड़ी दिलचस्पी रखते हैं। उनका खुद का जीवन नैतिक है। वे सरल व सादगी का जीवन पसन्द करते हैं। इसीलिये जैसे आन्दोलन मे उनकी गहरी निष्ठा है वे ऐसी चीजो के सहारे देश की भलाई देखते हैं। साहित्यिक कामो में भी वे अच्छी रुचि रखते है। वे आपके कार्यो से परिचित हैं।

आचार्य प्रवर ने तेरापन्थ का परिचय दिया और सूक्ष्म लेखन तथा अनेको कलात्मक वस्तुयें दिखाई। उन्होने कहा—आप तो सजीव कला के निर्माता हैं तथा भारतीय संस्कृति के संरक्षक हैं। आज ऐसा सूक्ष्म लेखन कहीं नही मिलता। मैने यही देखा है। ये कृतियाँ अमूल्य हैं।

मन्थन (२५)

हिन्दू महासभा के अध्यक्ष तथा मन्त्री के साथ

चुनाव शुद्धि

१८ दिसम्बर को रात के समय हिन्दू महासभा के अध्यक्ष श्री एन० सी० चटर्जी और महामंत्री श्री वी० जी० देशपाडे आचार्य श्री से वार्तालाप करने आये। आचार्य-श्री ने उनको अणुव्रत आन्दोलन की गतिविधियो से अवगत कराया। 'अणुव्रत सप्ताह' का विवरण बताते हुये आचार्य-श्री ने कहा—"इस सप्ताह के अन्तर्गत हम एक दिन "चुनाव-शुद्धि" का रखना चाहते हैं। हमारे मुनि तथा अन्य कार्यकर्त्ता भारत की सभी पार्टियों के प्रमुखो से सम्पर्क कर रहे हैं और ऐसा समझा जाता है कि सभी

उस आयोजन मे भाग लेगे और यह सोचेंगे कि चुनावो मे बरती जाने वाली अनैतिकता को कैसे मिटाया जा सके। आम चुनाव सामने आ रहे हैं इसलिए इस दिशा मे कुछ कार्य करना आवश्यक है। कई पार्टियो के नेताओ ने इस विचार का हार्दिक स्वागत किया और यह कहा है कि वे इसमे अपना पूरा सहयोग देंगे। हमने भी इस विषय में कुछ सोचा है और कुछ व्रत भी बनाये हैं। आपका इसमे क्या विचार है ?

श्री चटर्जी ने कहा—आप जो सुधार का काम कर रहे है, वह महत्वपूर्ण है और मैं समझता हूँ कि उसे आप अन्य क्रातिकारी नेताओं से भी अच्छे ढंग से सम्पादित कर सकेंगे क्योकि आपके पास एक संगठित शक्ति है। आपको लोगो का पूरा सहयोग भी मिलेगा, क्योकि लोग ऐसा चाहते हैं। चुनाव के सम्बन्ध मे आपने जो सोचा है वह उचित है और ऐसा करना भी चाहिये।

श्री देश पाडे ने कहा—महाराज ! आपको मंत्रियो से भी कुछ कहना चाहिये। क्योकि वे भी आज राष्ट्र का बहुत धन खर्च कर रहे हैं। ऐशो आराम मे अपना समय बिताते हैं। राष्ट्र के निर्माण में बहुत कम ध्यान देते हैं। जो मोटरें उन्हे सरकारी काम के लिए दी जाती हैं उनका वे निजी कामों मे उपयोग करते हैं। यह वैधानिक दृष्टि से गलत है। अतः आप यदि सुधार का काम करना चाहते है तो आपको यह सब बातें उन से स्पष्ट कहनी होगी। उसमे भय नहीं रहना चाहिए। चाहे कोई सत्ताधारी हो या सामान्य व्यक्ति हो। उसके दोषो की आपको निर्दयतापूर्वक आलोचना करनी चाहिये। हो सकता है इस कारण आप को संघर्ष मोल लेना पडे। परन्तु ऐसी बातो से आपको संघर्ष करना ही चाहिए।

आचार्य श्री ने कहा—देखिये ! हम काम अवश्य करना चाहते हैं पर कोई संघर्ष खड़ा करके नही। क्योकि संघर्ष से सुधार नही होगा, बल्कि दुविधा खड़ी होती है। सुधार तो शांति से किया जाना चाहिए। आपको यह विश्वास रखना चाहिये कि हमारा लगाव किसी भी पार्टी

से नहीं । जो बाते जिसे कहनी होती हैं, वे हम निःसंकोच कहते है। हमें भय किस बात का सही कहने पर भी यदि कोई नाराज हो जाता है तो हमे क्या और छिछली बातो मे हम जाना नहीं चाहते ।

श्री देशपांडे ने कहा—फिर आप काम कैसे कर सकेंगे ? देश की सम्पत्ति यों ही बर्बाद होती रहे और मंत्री लोग ऐसे ही मौज उड़ाते रहें, सब अनैतिकताएँ चलती रहे तब सुधार क्या हुआ ? चुनावो में नीति बरती जाय यह आवश्यक है पर ऐसा करना असम्भव है ।

आचार्य-प्रवर ने कहा—देशपांडेजी ! आपका रुख मुझे विचित्र-सा लगा । आप बात ठीक ढंग से नहीं कर रहे हैं । मैने पहले ही कह दिया था कि हम किसी पार्टी विशेष पर आक्षेप करना नही चाहते । हम बुराई को मिटाना चाहते हैं—बुरे को नही । एक दूसरे पर केवल छींटाकशी करना हिंसा है । ऐसा हम नहीं करते । हमें ऐसी आलोचना इष्ट नहीं है । क्योंकि व्यक्तिगत आलोचना से तो हम दूसरो को भड़का सकते है, उसका परिष्कार नहीं कर सकते ।

यह स्पष्टोक्ति सुनकर देशपांडे ने कहा—जैसा आप उचित समझे वैसा करे । चुनाव सम्बन्धी जो विचार आपने कहे, वे अच्छे हैं परन्तु यदि सभी पार्टियाँ इसको महत्व दें तो कुछ कार्य हो सकता है ।

तत्पश्चात उम्मीदवारो के लिए और मतदाताओ के लिये, बनाये गये व्रत उन्हे सुनाये । दोनों ने व्रतो की सराहना की । और पास में बैठे श्री शुभकरण जी दस्साणी से पूछा कि क्या वे इन व्रतो को अन्तिम रूप देकर हमे इनकी नई प्रतियाँ दे सकेंगे ।

चटर्जी ने प्रसन्नता पूर्वक कहा—मै भी इस आन्दोलन मे आने का प्रयास करूँगा । यदि न आ सका तो श्री देशपांडे जी को अवश्य भेजूँगा" इतना कह दोनों वन्दना करके चले गये ।

परराष्ट्र मन्त्री के साथ

जीवन में नैतिकता की कमी

१६ दिसम्बर १६५६ को परराष्ट्र मन्त्री डा० सैयद महमूद आचार्य श्री से भेंट करने आये। औपचारिक बातों के पश्चात् आचार्य प्रवर ने कहा—लोग मेरे पास आते हैं और अलग-अलग कमियों की बातें करते हैं। कोई कहता है—देश की आर्थिक दशा गिर गई है, कुछ कहते हैं—हमारी शिक्षा प्रणाली दूषित है, कई कहते हैं—हम बहुत काल तक परतन्त्र रहे हैं, इसलिये अब तक स्वतन्त्रता का दिमाग में उभार नहीं आया और इसीलिये हमारे कार्यकलाप विकसित नहीं होते।

पर मैं तो मानता हूँ कि सबसे बड़ी कमी नैतिकता की है। इसकी कमी जब तक दूर नहीं होगी, तब तक अन्य वस्तुओं की पूर्णता भी अपूर्ण ही रहेगी। हमने इसी कमी को पूरा करने के लिये एक आन्दोलन चलाया है। उसमें हमने वे व्रत रखे हैं, जो हर एक वर्ग के दूषणों को खदेड़ निकालें। क्या आपने उसका साहित्य पढ़ा है?

मन्त्री—हाँ, उसका विशेष साहित्य तो नहीं, पर नियम अवश्य सरसरी दृष्टि से पढ़े हैं और एक दिन में अणुव्रत-सेमिनार में भी सम्मिलित हुआ था। आपने यह काम शुरू करके अच्छा काम किया है। मैं समझता हूँ गाँधी जी के बाद में आपने ही इस प्रकार नैतिक काम की ओर तवज्जह दी है। अन्य आन्दोलन तो बहुत से दलों द्वारा चल रहे हैं पर आचार-विशोधन के क्षेत्र में किसी और तरफ से कोई कदम नहीं था। जो कदम आपने उठाया है, वह देश के लिये अत्यन्त जरूरी है।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सम्पादक श्री दुर्गादास के साथ

चरित्र निर्माण और पत्रकार

२१ दिसम्बर १९५६ को प्रातःकाल सब्जीमण्डी मे दिल्ली के प्रमुख पत्र हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्पादक श्री दुर्गादास जी ने आचार्य-श्री के दर्शन किये।

उन्होंने कहा—मुझे आपके दर्शन करने का पहले भी अवसर मिला था। मुझे पचवर्षीय योजना के सम्बन्ध मे भोपाल के मुख्यमन्त्री ने आमन्त्रित किया था। वे जब उज्जैन मे आपके सम्पर्क में आये थे, तब मै भी उनके साथ था। वैसे मुझे नैतिक विषयों मे रस है। अतः जब कभी मुझे ऐसे अवसर मिलते हैं, मै लाभ उठा ही लेता हूँ आपके अणुव्रत आन्दोलन के नियम गाँधी जी के "रामराज्य" के नियम है। उसमे भी तो यही है कि "सबके प्रति समवृत्ति रहे, उदारता का प्रसार हो, लोग अनैतिक न रहे" और यही आपका कहना है।

आचार्य-श्री ने कहा—आप लोगो को भी केवल राजनीति मे ही नहीं, नैतिक और चरित्रनिर्माण मूलक अन्य विषयो मे भी भाग लेना चाहिये। मे देखता हूँ कि पत्रकार राजनीतिक विषय मे जितना रस लेते है उसके अनुरूप अन्य विषयों को उनका यथाविधि सहयोग नहीं मिलता। उनको चाहिये कि वे विशुद्ध चरित्रात्मक विषयो को भी बल दे।

दुर्गा०—मुझे क्षमा करें, इस विषय मे कुछ भेद है। सामान्यतया तो पत्रकार अपने इस कर्तव्य को निभा रहे है। पर पूर्ण रूप से इसमे जुट

जाना, इसमे ही अपना दिमाग लगाना और इसका ही अपने इर्द-गिर्द वातावरण रखना और इस भार को बद्धलक्ष्य अपने कंधो पर ले लेना मुश्किल है, क्योकि यह ५० मन का पत्थर है। कोई भी इसे उठाने के लिये तैयार नही। इसे उठाने वाला नीचे दब जाता है। आज जो नेता इसके विषय में बोलते हैं, वह भी एक नीति है। उन्हीं नेताओ और अधिकारियो के आचरणो की जब चर्चा की जाती है और उनकी ओर अंगुली उठाई जाती है तब उनकी जबान बन्द कर दी जाती है और अँगुलियाँ काटने का प्रयत्न किया जाता है। ऐसी परिस्थिति में आन्दोलन को कोई भी पत्र अपनी नीति नहीं बना सकता।

मै समझता हूँ, यह काम तब तक जोर नहीं पकड़ेगा, जब तक आप ऊपर के व्यक्तियो को सम्मिलित न कर लें। हमारे मन्त्री, संसदसदस्य, विधान सभाओ के सदस्य और अधिकारी लोग इसे अपना लेते हैं तो समझना चाहिये कि एक विशिष्ट लौ जल पड़ेगी और वह आगे बढ़ती जायेगी। हमारी भारतीय संस्कृति विषम मार्ग से गुजर रही है। यदि उसको बचा न लिया गया, तो आगामी दस वर्षो में उसका अवसान हो जायगा। इन वर्षो में उसे उभार मिल गया तो उसमें ताजा खून समा जायगा और नया जीवन मिल जायगा। अब यह आप लोगों पर निर्भर है कि आप उसकी रक्षा कर पाते हैं या नहीं।

आ०—मैं तो ऐसा नही मानता। इन दिनो में जिन व्यक्तियों से भेट हुई, उन सबने इसकी सफलता की कामना की है। राष्ट्रपति भवन में जो आयोजन हुआ था, उसमे राष्ट्रपति ने स्वयं कहा था—मै चाहता हूँ कि अणुव्रत-आन्दोलन देश मे फले-फूले और जनता के चरित्र का विकास करे। प्रधानमन्त्री नेहरू जी से भी मेरी ५० मिनट तक बहुत खुलकर बातचीत हुई है। बात चीत पहले भी हुई थी। पर इस बार जिस नि.सकोच और स्पष्ट भाव से बातचीत हुई वैसे पहले नहीं हुई थी। बातचीत अनेक विषयो पर हुई। मुझसे उन्होने यह भी पूछा कि आप भारत साधु समाज में सम्मिलित नहीं हुए ? मैंने कहा—नही, हमारा

और उनका मेल कैसे सम्भव हो ? उन्होने अभी तक मठो का मोह नहीं छोड़ा है, पैसो से उनका गठबंधन उसी तरह है। फिर हम अकिंचनों का उससे क्या लगाव ? पंडित जी ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया और कहा—आपको उसमे सम्मिलित होने की कोई आवश्यकता नहीं। मैने उनसे कहा—देखिये पंडित जी, विदेशों में भारत का कितना सम्मान है, कितनी ख्याति बढ़ रही है ? विदेशी लोग भारत को एक आदर्श राष्ट्र मानते हैं परन्तु आन्तरिक स्थिति कितनी बिगड़ी हुई है, कुछ व्यक्तियों को छोड़ दे तो भारत का मानचित्र खोखला नजर आता है। आपकी सरकार पर भी जो श्रद्धा है, वह भी उन व्यक्तियों के व्यक्तित्व और नैतिक जीवन के कारण है। अन्यथा आपकी सरकार का जो धरातल है, वह आपके सामने है। क्या आप आशा करते हैं कि राष्ट्र की नींव इस धरातल पर मजबूत रह सकेगी ? आप इस विषय में क्यो नहीं सोचते और चरित्र-निर्माण के कामो को प्रोत्साहन क्यों नहीं देते ?

मैंने उनसे यह भी कहा कि—आज जो राष्ट्रों में आपसी सम्बन्ध बनाने की दौड़ लग रही है, वह भी एक नीति के अतिरिक्त कुछ नहीं और उसका स्पष्ट पता तब चलता है, जब किसी बात के कारण आपस में तनाव बढ़ता है। इसलिये हमने यह सोचा है कि वर्ष में एक दिन ऐसा मनाया जाय, जिस दिन अपनी भूलो के लिये शुद्ध व पवित्र हृदय से व्यक्ति-व्यक्ति परस्पर क्षमा माँगें और दूसरों को क्षमा करें। वह रिवाज के तौर पर नहीं, हृदय से होना चाहिये। यदि कुछ ऐसा हो तो आप का क्या विचार है ?

नेहरू जी ने कहा—यह काम तो बहुत सुन्दर है, पर मै इसे नहीं कर सकता। अगर इसको शुरू किया जाय तो मै इसके बारे मे कुछ कह सकता हूँ और कुछ कर भी सकता हूँ। इसी प्रकार इस बारे में उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्, राजर्षि टंडन, ढेबर भाई, मोरार जी भाई आदि से भी बातचीत हुई। सभी ने इस कार्यक्रम को पसन्द किया

और कुछ सुझाव भी दिये।

इस प्रकार सरकार की टक्कर का खतरा तो स्वतः दूर हो जाता है और वैसे हमारा यह दृष्टिकोण भी नहीं है कि कोई पत्र इसे अपनी नीति बनाये। कोई उचित और उपयोगी चीज होगी तो पत्र उसे स्वतः अपनी नीति बना लेगे। मै आपको तो इसलिए कहता हूँ, कि आप चिन्तक हैं और चिन्तक के दिमाग को मैं काम मे लेना चाहता हूँ। मन्त्रियो और अधिकारियों को मै उतना महत्त्व नहीं देता, क्योकि वे चुनाव के माध्यम से अपने पदो पर आते हैं। आज हैं और कल नहीं। पर विचारक सदा विचारक रहता है। अतः मै उनको विशेष महत्त्व देता हूँ।

दुर्गा०—ठीक है, मै तो आपकी सेवा मे प्रस्तुत हूँ और मै मध्यस्थ भावना वाला हूँ। मुझे कुछ कड़ा लिख देने मे भी भय नही है।

लगभग आधे घंटे तक बातचीत हुई। प्रवचन का समय हो गया था। आचार्य प्रवर प्रवचन करने के लिये पधार गये।

मन्थन (२८)

राष्ट्रकवि के साथ

२१ दिसंबर १९५६ को रात्रि मे राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपने सहोदर सियारामशरण गुप्त व अपने परिवार के अन्य सदस्यो सहित आचार्य-श्री के दर्शन किये।

औपचारिक वार्तालाप के बाद जैन तत्वो पर चर्चा हुई। उन्होंने जिज्ञासु भाव से अनेक आशंकायें प्रकट की। आचार्य श्री ने उनका उचित समाधान किया। स्याद्वाद तथा नय-वाद आदि पर भी लम्बी देर तक

बातचीत होती रही। उन्होने कहा—जैसा कि मैने पहले भी आपके समक्ष निवेदन किया था—मेरी यह हार्दिक भावना है कि भगवान् महावीर पर कुछ कविताये लिखूँ। यह मेरे जीवन की अन्तिम साध है। किन्तु मेरे सामने एक समस्या है कि उनके जीवन सम्बन्धी विविध विचार भिन्न भिन्न तरीको से माने जाते हैं। उनमे एकरूपता नहीं है। कौन सही है और कौन गलत, यह मै कैसे निर्णय करूँ। यदि आप मेरा पथ-प्रदर्शन करें तो मैं अपनी कामना पूर्ण कर सकूँगा। इस विषय मे विस्तृत वार्तालाप फिर कभी करूँगा।

वार्तालाप कवि-गोष्ठी के रूप मे परिणत हो गया। कई सन्तो ने अपनी अपनी रचनायें सुनाईं। राष्ट्रकवि ने भी अपनी कविताये सुनाईं। रचना सरल व सुगम थी। श्री सियारामशरण गुप्त ने भी "खामेमि सव्वे जीवे" का हिन्दी पद्यानुवाद सुनाया। उन्होंने सम्पूर्ण गीता का हिन्दी में पद्यानुवाद किया है और कहा कि जैनागमों के कई स्थलो को वे हिन्दी के पद्यो मे रखना चाहते है। राष्ट्रकवि ने यह भी कहा कि वे अणुव्रतो के बारे मे कविताये लिखेगे।

भारत सेवक समाज के मंत्री का आगमन

भारत सेवक समाज के मंत्री श्री चांदीवाला जी "कठौतिया भवन में" आचार्य-श्री के दर्शन करने आये। आचार्य श्री ने उनको अणुव्रत-आदोलन की गतिविधि से परिचित कराया तथा अभी अभी चले अणुव्रत-सप्ताह की सफलता से भी अवगत कराया। मैत्री-दिवस के बारे मे विस्तृत जानकारी दी और कहा—मैंने यह विचार और भी कई जगह रखा है। सभी जगह इसका सत्कार हुआ है। इस बार हम इसको प्रयोग के रूप मे ३० दिसंबर को मना रहे हैं।

चादीवाला ने कहा—हाँ, यह योजना सुन्दर है और इस प्रकार की बन्धुत्व-भावना संसार मे फैले तो युद्ध और अशाति का वातावरण दूर हो सकता है। मेरा इसमे एक सुझाव भी है कि यह दिन महात्मा गांधी

का निधन दिवस रखा जाय तो और भी महत्व की भावना से जुड जायेगा और विशाल पैमाने पर देश-विदेश मे मनाया जायेगा।

चाँदीवाला ने भारत सेवक समाज के कार्यकर्ताओ की सभा में आचार्य श्री को प्रवचन करने का निमंत्रण दिया।

मन्थन (२६)

नैतिकता के एक प्रचारक के साथ क्रमिक विकास का महत्व

२८ दिसंवर १९५६ को प्रात.कालीन प्रवचन के वाद कई व्यक्ति आचार्य-श्री से वातचीत करने आये। तेरापंथ व अणुव्रतो के वारे में विस्तृत वातचीत हुई। एक व्यक्ति श्री मोहन शकलानी आचार्य श्री के पास आया और उसने कहा—महाराज ! प्रारम्भ से ही नैतिक विषयों में मेरी रुचि रही है। मैं पहले थियोसॉफिकल सोसाइटी मे प्रचारक था। अव मैं चाहता हूँ कि अणुव्रतो के प्रचार में अपना समय लगाऊँ। आदोलन के प्रति मेरा आकर्षण इसलिये हुआ कि यह क्रमिक विकास को महत्व देता है। व्यक्ति एक साथ ऊँचा नहीं चढ़ सकता। वह धीरे-धीरे प्रगति कर सकता है। देखिये. अंग्रेजी में मैंने अणुव्रत-आंदोलन के नियम-उपनियमो को रखने का प्रयास किया है (कई पत्र दिखाये)। आचार्य प्रवर ने उन्हें विशेष जानकारी देते हुये कहा—आपके विचार अच्छे हैं। नैतिकता का प्रचार वास्तविक प्रचार है। निष्काम सेवा करने का यह अच्छा मौका है।

वे कई दिन तक आचार्य-श्री के पास आते रहे और जानकारी प्राप्त करते रहे।

केन्द्रीय श्रम उपमंत्री के साथ

काफ़िर (नास्तिक) कौन

२९ दिसंबर १९५६ को सायंकाल प्रतिक्रम के समय श्री आबिद अली दर्शनार्थ आये। आचार्य प्रवर ने कहा—आप ठीक समय पर पहुँचे है। हम लोग अभी प्रतिक्रमण करके निवृत्त हुये हैं।

श्री आबिद अली—प्रतिक्रमण कैसे करते है ?

आ०—प्रतिक्रमण के छः अंग हैं—(१) सबसे पहले पापों से निवृत्ति करना, (२) वीतराग की स्तुति करना, (३) मुक्त-आत्माओं को वंदन करना, (४) प्रतिक्रमण करना, (५) शारीरिक स्थूल स्पन्दनों को रोक कर समाधि पूर्वक चिन्तन करना, (६) उसके बाद प्रत्याख्यान किया जाता है। आपके जैसे नमाज पढ़ी जाती है, वैसे ही हमारे यहाँ प्रातःकाल और सायंकाल दोनो वक्त किया जाता है। आपके नमाज की क्या विधि है ?

श्री आबिद अली—हमारा नमाज एक प्रकार का व्यायाम है, जिसमे शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों प्रक्रियाये समाविष्ट हैं। पहले हम सैनिक की तरह तनकर खड़े हो जाते हैं। फिर दोनो कानो में अंगुली डालकर इस प्रकार झुकते हैं और ऐसे बैठते हैं (सारी प्रक्रिया करके बताई) उसके बाद इस प्रकार उठते हैं। इसमे पैर से लेकर शिर तक का सुन्दर व्यायाम थोड़े ही समय मे हो जाता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक पहलू भी इससे सुन्दर ढंग से सधता है। दोनों कानों को बंद करने का अर्थ है कि हमे कोई बाहरी आवाज न सुनाई दे। अल्लाह की स्मृति मे ही अपने को केन्द्रित करना चाहते हैं। घुटनो के बल पर बैठकर इस प्रकार सिर धरती पर लगाने का भी यही मतलब है कि हम

उस सर्व शक्तिमान अल्लाह के आगे सर्वथा नतमस्तक हैं—नमाज की प्रार्थना मे संकीर्णता नहीं, अत्यन्त उदारता का परिचय है। उसमें ऐसा नहीं कहा गया है कि "हे मुसलमानों के पालक" प्रत्युत कहा गया है—"हे सबको पालने वाले अल्लाह मुझे सन्मार्ग बता, खराब रास्ते से बचा।"

आ०—देश में हमने एक रचनात्मक काम चालू कर रखा है। उसका सम्बन्ध सभी वर्गों से है : उसको हमने किसी जाति या धर्म विशेष से सम्बद्ध नहीं किया है। मानवता के सामान्य नियम उसमे दिये गये हैं जो सभी धर्मों के मूल हैं। आज परस्पर एक दूसरे के प्रति कटुता बढती जा रही है। हिन्दू-मुस्लिम के बीच दरारे पड़ गई हैं। क्या ये दरारें हिंसा को प्रोत्साहन नहीं देतीं ? इन्हे पाटने के विषय में आप क्या सोचते हैं ? हम एक "मैत्री-दिवस" (अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर) मनाने की सोच रहे है। आपका उसमें क्या सहयोग रहेगा ?

श्री आबिद अली—जितना मैं इस विषय मे कर सकूंगा, उतना करने का प्रयास करूंगा। आपकी सेवा मे प्रस्तुत हूँ।

आ०—क्या आपके कुरान मे कहीं ऐसा उल्लेख है कि हिन्दू को काफिर समझना चाहिये ?

श्री आबिद अली—हिन्दुओ को तो नहीं, पर नास्तिक को अवश्य काफिर कहा है। हमारे यहां कयामत का होना माना जाता है। जिसका अर्थ है कि जितने भी लोग मरते है, वे जी उठेंगे। खुदा उनको उनकी करनी के मुताबिक दंड देगा। उस समय लोग अपने अपने अपराधों की क्षमा के लिये खुदा से मुहम्मद से सिफारिश करायेगे। मुहम्मद ने कहा है कि मैं उन दो व्यक्तियो की सिफारिश खुदा के आगे नहीं करूंगा—(१) जो व्यक्ति यह कहा करता है कि ये धर्मस्थान मुसलमानों के नहीं है, दूसरो के धर्मस्थानों की बेइज्जती करता है और दखल देता है, और (२) जो व्यक्ति दूसरों को "मुसलमान नहीं" कह कर तकलीफ देता है।

ये दोनों बातें हमारे सिद्धान्तों की प्रतीक है। धर्मों मे उदारता ही विशेष है। उसी के सहारे सब धर्म जीते है।

हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्पादक श्री दुर्गादास जी के साथ दूसरी बार

अणुव्रत आन्दोलन की आधार भूमि

३० दिसम्बर १९५६ को रात्रि मे हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्पादक श्री दुर्गादास जी दुबारा आचार्य श्री के दर्शनार्थ आये। उन्होने कहा—मैने अणुव्रत आन्दोलन के विषय मे विविध बातें सुनी थी। बहुत सी जिज्ञासाएँ इस विषय मे हुआ करती थीं। इस बार अच्छा हुआ कि यथेष्ट समाधान आपसे पा लिया। मैं चाहता हूँ, आपके इस संगठन के इतिहास की झलक भी आपसे प्राप्त कर लूं तथा उसके विस्तार की आधार भूमिका को भी जानकारी ले लूं।

आचार्य श्री ने तेरापंथ का इतिहास बताते हुये कहा—"तेरापंथ का उद्भव आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व हुआ था। उद्भव का कारण था—तात्कालिक साधु समाज का आचार शैथिल्य। तेरापंथ के प्रवर्तक श्री भिक्षु स्वामी ने जिस अभिलाषा से दीक्षा ली थी, वह भावना पूरी होती दिखाई न दी।

उन्होने जैन आगमो का विशेष मंथन करने के बाद गुरुवर से निवेदन किया कि हम शास्त्रोक्त पथ से विपरीत चल रहे हैं।

गुरु ने कहा—अभी पंचम काल है। जितनी साधना हो, उतनी ही अच्छी।

भिक्षु स्वामी ने कहा—जब हम घर, कुटुम्ब, धन, धान्य सबको त्याग कर आये हैं, फिर भी अपना लक्ष्य नही साध सकते, यह कैसे हो सकता है? पंचम काल का सहारा लेना तो हमारी कमजोरी है।

लम्बी चर्चा के बाद उन्होंने कहा—मै इस से सहमत नहीं। इस प्रकार कोई सही मार्ग न निकलता देख आपने संघ से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। आचार्य श्री को यह बात अखरी और उन्होने उनका डटकर विरोध करने की मन में ठान ली।

उन्होने कहा—भिक्षु ! तुम कहाँ जाओगे ? मै तुम्हारे पीछे श्रावकों को लगा दूँगा।

भिक्षु स्वामी ने सस्मित स्वर में कहा—यदि आप गाँव-गाँव में मेरे पीछे श्रावको को लगा देते हैं तो मुझे कम परिश्रम करना पड़ेगा और लोगो में मैं अपनी विचार धारा शीघ्र फैला सकूँगा।

आचार्य भिक्षु ने पहला प्रहार उन चीजो पर किया, जो कि आचार शिथिलता के कारण पनप रही थी। उन्होने कहा—

१—साधुओ को स्थानक में नहीं रहना चाहिये।

२—साधु संघ के एक ही आचार्य हों।

३—आचार्य के अतिरिक्त कोई भी अपना शिष्य न बनाये।

४—मंडनात्मक नीति रहे, खंडनात्मक नहीं।

आचार्य भिक्षु का दृष्टिकोण था कि साधुओ के निवास के लिये साधुओं की प्रेरणा से कोई मकान नही बनना चाहिये। साधुओं को तो उसमे ठहरना भी नहीं चाहिये। क्योकि साधु बनने वाला व्यक्ति अपने एक घर को छोडकर आता है और उसके लिये जगह-जगह स्थानक बनने लगें, तो उसकी माया ममता घटी कहाँ, प्रत्युत बढी है। वह गृहस्थों से भी कहीं अधिक वजनदार ममतावान् बन गया क्योकि उसके एक घर के बदले अनेक घर हो जाते हैं। इसीलिये आपने कहा—साधुओ के लिये कहीं कोई स्थानक न हो। जहाँ कहीं भी साधु जायें, वहाँ गृहस्थों से अपने आचारानुकूल स्थान माँग कर विश्राम करे।

दूसरी बात थी—संघ मे एक ही आचार्य हो। अनेक आचार्य होने से संघ मे एक परंपरा नहीं रह सकती और मनुष्य स्वभाव की सहज कमजोरी के कारण शिष्य, पुस्तक, श्रावक आदि को लेकर प्रतिद्वन्द्विता भी

हो सकती है। पर जहाँ एक आचार्य होता है, वहाँ इन दोनों की संभावना नहीं रहती।

तीसरी बात थी—आचार्य ही शिष्य बनायें, इससे एक बहुत बड़ा खतरा टल गया, क्योंकि जब प्रत्येक साधु शिष्य बनाने के फेर में पड़ जाते हैं तो फिर कोई मर्यादा नहीं रहती और न कोई योग्य-अयोग्य का विवेक ही रहता है। फिर तो यही ध्यान रहता है कि मेरे अधिक से अधिक शिष्य कैसे हों ? और मैं अमुक साधु को इस विषय मे कैसे पछाड़ सकूँ। माता पिता की आज्ञा विना मूंड लेना, फुसलाकर या प्रलोभन देकर बहला लेना आदि अनेक दोष केवल शिष्य वृद्धि के ख्याल से आ जाते हैं। उनका निराकरण करने के लिये यह बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ।

चौथी बात है—मंडनात्मक नीति रखना और खंडन नहीं करना। अपने जो सिद्धान्त हैं, उनकी प्ररूपणा करना, उनके उपयोग के बारे में बताना तथा उनके प्रचार के लिये भूमिका तैयार करना। यह तो ठीक, पर दूसरों का खंडन करना और व्यक्तिगत आक्षेप करना, इससे वे सहमत नहीं थे क्योंकि किसी की आलोचना करके या निंदा करके उसको सुधारा नहीं जा सकता प्रत्युत उसे वैरी ही बनाया जा सकता है और न कोई दूसरे की कटु आलोचना करके बड़ा ही बन सकता है। इससे तो उसकी मनोवृत्ति दूषित ही होती है।

यही कारण है कि आज तक तेरापंथ की तरफ से किसी की व्यक्तिगत कटु आलोचना नहीं की गई, जबकि तेरापंथ के विषय में अनेकों पुस्तकें और पेम्फलेट आदि मिलेंगे, जो केवल विरोध मे ही लिखे गये हैं।

आचार्य भिक्षु ने इन नियमो के आधार पर संघ को अत्यन्त व्यवस्थित तथा आचारनिष्ठ बनाया।

यद्यपि तेरापंथ का विरोध अब तक होता रहा है, आचार्य भिक्षु के समय में तो भोजन-पानी-स्थान आदि मिलने में भी कठिनाई होती थी। आज भी विरोध की समाप्ति नहीं हुई है। किन्तु हमारी तरफ से सदा यही रहा कि "जो हमारा हो विरोध, हम उसे समझें विनोद"।

यही कारण है कि आज तक तेरापंथ संघ सबसे समन्वय करता हुआ दिनों दिन प्रगति पर है।

तेरापंथ के अतिरिक्त और भी अनेको विषयों पर वार्तालाप हुआ।

मन्थन (३०)

राष्ट्रपति के साथ तीसरी बार
जैन आगम कोष का महत्वपूर्ण निर्माण

४ दिसम्बर १९५६ को प्रातः आचार्य जी राष्ट्रपति भवन पधारे, जहाँ राष्ट्रपति जी के साथ लगभग सवा घंटे तक तेरापंथ संघ मे चल रही साहित्य साधना, ग्रन्थ निर्माण, विद्या प्रसार तथा अणुव्रत आन्दोलन के बहुमुखी कार्यक्रमो पर अत्यन्त आत्मीय रूप मे विचार विमर्श चला।

वार्तालाप के बीच आचार्य श्री ने बताया कि जैन आगमो पर तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं समीक्षात्मक अनुशीलन के लिये पर्याप्त तथा व्यवस्थित सामग्री उपलब्ध हो सके, इस दृष्टि से आगम कोष का विशाल साहित्यिक कार्य हमारे यहाँ चल रहा है।

राष्ट्रपति जी ने कोष के कार्य को ब्योरेवार समझने में बडी दिलचस्पी ली। आचार्य श्री ने कोष का प्रकार, प्रणाली, संचयन विधि आदि से उन्हें अवगत कराया। साथ ही कहा—

जैन वाङ्मय विभिन्न विषयो के अलभ्य शब्दो का विशाल आगार है। खेद इसी बात का है कि जितना अपेक्षित था, उसमें मन्थन और अन्वेषण नहीं हो पाया, अन्यथा सस्कृत एवं हिन्दी जगत को उसके शब्द कोष की श्रीवृद्धि करने वाले उपयुक्त शब्द मिल पाते। उदाहरणार्थ—

जैसे मैटर (Matter) के लिये पुद्गल जितना तादर्थ्य बोधकता के लिहाज से उपयुक्त है, उतना 'भूत' या कोई दूसरा शब्द नहीं है, पर इस ओर उपेक्षा रहने से यह प्रचलित नहीं हो पाया।

राष्ट्रपति जी ने आचार्य श्री के नेतृत्व मे निर्मित हो रहे आगम कोष के कार्य के लिये हर्ष प्रगट करते हुए कहा—यह साहित्य का बहुत बड़ा काम हो रहा है जिसकी आज आवश्यकता है।

जैन वाङ्मय मे विभिन्न विषयो के उपयुक्त अर्थबोधक ऐसे-ऐसे शब्द मिल सकते है, यह जानकर राष्ट्रपति जी को बहुत प्रसन्नता हुई।

तत्त्वज्ञान, दर्शन, काव्य, गद्य आदि विविध साहित्यक प्रवृत्तियो का विहंगावलोकन कराते हुए आचार्य प्रवर ने जैन सिद्धान्त दीपिका तथा विजय यात्रा आदि की भी चर्चा की।

राष्ट्रपति जी की उत्सुकता एवं जिज्ञासा देख आचार्य श्री ने उन्हें जैन सिद्धान्त दीपिका के एक प्रकरण का कुछ हिस्सा सुनाया। मुनि श्री नथमल जी ने विजय यात्रा के दो गद्य-गीत उन्हें बताये।

राष्ट्रपति जी ने बड़ी अभिरुचि से यह सब सुना और इन साहित्यिक कृतियो के लिए बधाई दी।

आचार्य श्री ने बातचीत के बीच उन्हें यह भी बताया कि दर्शन और विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन कई साधु कर रहे हैं। जैन दर्शन के स्याद्वाद और आइन्स्टीन की थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी (Theory of Relativity), परमाणु और एटम आदि तुलनात्मक खोजपूर्ण सामग्री भी तैयार की गई है। आचार्य श्री ने मुनि श्री नगराज जी की ओर संकेत किया। मुनि श्री नगराज जी ने अन्य विषयों पर अपने द्वारा किये गये शोध कार्यो से राष्ट्रपति जी को विशदतया अवगत कराया।

राष्ट्रपति जी बोले—आज विकास का बहुत अच्छा कार्य हो रहा है। इसमे एक बात और मै कहना चाहूँगा—परमाणु आदि विषयों में विज्ञान जहाँ तक पहुँचा है, वहाँ तक तो प्राचीन वाङ्मय के आधार पर सिद्ध करते ही हैं। उसके साथ-साथ परमाणु आदि विवेचनीय विषयों में

विज्ञान द्वारा प्राप्त विवरण के अतिरिक्त और जो अधिक तथा विस्तृत बातें प्राचीन वाङ्मय मे प्राप्त हो उन्हें भी प्रकट किया जाये तो आगे चल कर विज्ञान जब उन तथ्यों तक पहुँचेगा, तब प्राचीन वाङ्मय का और अधिक महत्त्व वैज्ञानिकों और विद्वानों की दृष्टि मे आयेगा।

मुनि श्री नगराज जी ने कहा—इस दृष्टि से भी गवेषणा कार्य किया जा रहा है। जैसे विज्ञान की दृष्टि से अन्तिम अविभाज्य अणु इलेक्ट्रन (Electron) माना गया है, जैन आगमो की दृष्टि से वह अन्तिम अणु नही है, वह अनन्त अणुओ के सघात से बना स्कंध है। इस दृष्टि पर विशेष ध्यान दिया जायगा।

राष्ट्रपति जी जिज्ञासापूर्ण उत्सुकता से आचार्य श्री से पूछने लगे—जो रिसर्च स्कॉलर साहित्य शोध का इस प्रकार का कार्य करते हैं, वे दिन रात लाइब्रेरियों मे बैठे रहते है, वहाँ इस काम में लगे रहते हैं, पुस्तकों की सुविधा उन्हें वहाँ रहती है, पर आप लोग जो पर्यटन करते रहते हैं, यह काम किस प्रकार करते हैं ?

आचार्य श्री ने राष्ट्रपति जी को एक पोथी खोल कर दिखाई, जिसमें विभिन्न विषयो के पचासो हस्तलिखित ग्रन्थ थे। आचार्य श्री ने कहा—साधु चर्या के नियमानुसार हम अपनी कोई भी वस्तु गृहस्थो के पास नहीं छोड़ सकते, क्योंकि प्रत्येक चीज का प्रतिलेखन जो करना होता है। इसलिये अपनी प्रत्येक वस्तु अपने साथ अपने कंधो पर लिये चलते हैं। प्रत्येक साधु ऐसी दो पोथियाँ लिये चलता है।

राष्ट्रपति जी कहने लगे—यह तो आपकी चलती फिरती लाइब्रेरी है। वास्तव मे बहुत बड़ा काम आप कर रहे हैं। पर्यटन प्रचार, आदि और सब काम करते हुए साहित्य का इतना बड़ा काम आपके यहाँ हो रहा है, यह बहुत खुशी की बात है।

सूक्ष्माक्षरों के पत्र को राष्ट्रपति जी ने बड़ी अभिरुचि के साथ देखा। यों स्पष्ट नहीं दिखाई देता था, इसलिए उन्होने अपने यहाँ का एक एक आधा फुट लम्बा आई ग्लास मंगाया और उससे पत्र को देखा। बड़ा

आश्चर्य और हर्ष उन्होंने प्रगट किया। अणुव्रत आन्दोलन के विषय में भी वार्तालाप हुआ। राष्ट्रपति जी ने कहा—मैंने तो उस दिन सभा में भी कहा था कि मै समर्थक का पद लेना चाहूँगा।

इस प्रकार अनेक विषयो पर बड़ा महत्त्वपूर्ण वार्तालाप हुआ।

मन्थन (३३)

फ्रांस के राजदूत के साथ

'भुला दो और क्षमा करो' की महत्वपूर्ण भावना

ता० ५ जनवरी १९५७ को सायंकाल फ्रांस के राजदूत ल-कोम्त स्तानिस्लास ओस्त्रोराग अपने सहोदर सहित आचार्य श्री के पास आये। उन्होने अपनी स्मृति को ताजा करते हुये कहा—पाँच वर्ष पूर्व मै आपसे मिला था। आचार्य श्री ने उन्हें अणुव्रत आन्दोलन का परिचय देते हुये कहा—यद्यपि हम जैन है पर आन्दोलन के नियम पूर्णतः असाम्प्रदायिक हैं। नियम सर्वजनोपयोगी हैं। आन्दोलन ने जन जीवन को काफी झकझोरा है। विचारों की दृष्टि से तो वह लगभग भारत व्यापी हो चुका है पर मै चाहता हूँ कि विदेशो में भी इससे लाभ लिया जाय। ये नियम वहाँ के लिये भी लाभप्रद हैं, ऐसा मै सोचता हूँ। हम चाहते हैं कि भारत की तरह अन्य देश भी इसमे सम्मिलित हों, और यह काम आप लोगो के द्वारा संभव हो सकता है।

दूसरी बात है—संसार में सहिष्णुता और सद्भावना अधिकाधिक बढ़े, इसलिये हमने एक 'मैत्री दिवस' का भी आयोजन किया, जिसका

उद्घाटन राष्ट्रपति जी ने किया था। हम सोचते हैं कि यह दिन अन्तर्राष्ट्रीय रूप से मनाया जाए ताकि आपस के संबंधों मे पवित्रता पैदा हो सके।

राजदूत—मैत्री की भावना को उत्तेजित करने के क्या उपाय हैं?

आचार्य श्री—इसका एक मात्र उपाय है 'फ़ारगेट ऐंड फारगिव' (भुला दो और क्षमा करो)—के सिद्धान्त को जीवन मे उतारना। हम औरो की भूलों को भुला दें तथा अपनी भूलो के लिये औरो से क्षमा मांगें। यदि यह भावना बलवती बन जाय तो काफी तनाव मिट सकते हैं। एक दिन की भावना का प्रसार भी काफी काम करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। हम इसको अन्तर्राष्ट्रीय रूप देना चाहते हैं। आप बताइये कि एक दिन कौनसा रखा जाए, जो सभी देशो के लिये अनुकूल हो सके।

राजदूत—कोई भी एक दिन निर्धारित किया जा सकता है पर मेरे विचार से दूसरो के मतों का विशिष्ट दिन नहीं होना चाहिये। क्योंकि ऐसा करने से उसमे साम्प्रदायिकता की बू आजाती है। स्मृति की दृष्टि से एक जनवरी सर्व श्रेष्ठ है।

आचार्य श्री—अभी यूनेस्को के डायरेक्टर जनरल डा० लूथर इवेन्स ने भी इस विषय में अपनी अभिरुचि दिखाई और उन्होने कहा था कि वे इस पर विचार करेंगे। हम चाहते थे कि समस्त विदेशी राजदूतों व अन्य अधिकारियो के बीच हम इस भावना को रखें और इसकी महत्ता से उन्हें परिचित करायें। आप अपने इष्टमित्रो को इसकी पूर्ण जानकारी देने का प्रयत्न करें।

राजदूत—हाँ, जो लोग इसमे रुचि रखते हैं तथा जिन पर मेरा विश्वास है, उनसे मैं अवश्य कहूँगा अपनी निजी हैसियत से अपने देश में इसका प्रसार करने का प्रयत्न करूँगा।

समय थोड़ा था। उन्हें जल्दी जाना था। उन्हें कलात्मक चीजें तथा सूक्ष्म लेखन-पत्र दिखाया गया, जिन्हें उन्होने काफी गौर से देखा और कला की बारीकियों से युक्त इन चीजो को देख वे बड़े प्रसन्न हुए।

परिशिष्ट १

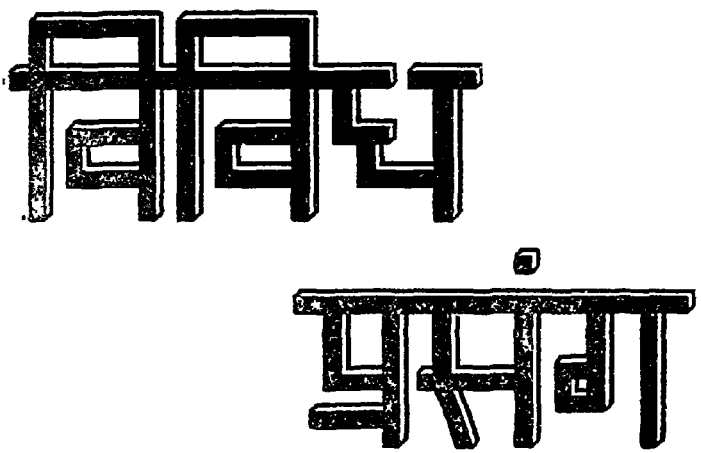

१

बिड़लाजी से वार्तालाप

सेठ जुगलकिशोर जी आचार्य श्री से बातचीत करने आये। अनेक धार्मिक, दार्शनिक और अनुभूत विषयो पर बात हुई।

उन्होने आचार्य श्री से पूछा—क्या आपको लगता है कि भारत का उज्ज्वल भविष्य आने वाला है ?

आचार्य श्री ने दृढ़ता के साथ कहा—हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि आने वाले भारत के दिन उजले होगे। अपने दिल्ली प्रवास के समय राष्ट्रपति और पडित नेहरू से लेकर अनेक मामूली मजदूरो से मिलकर मैं अपने मन मे ऐसा अनुभव करता हूँ कि जैसे सभी नैतिकता के प्रति निष्ठा की भावना व्यक्त करते हैं। अगर यह भावना कुछ स्थायी हो सकी और

हम भी लोगों को अपना सहयोग देते रहे तो ताज्जुब नहीं है कि भारत एक नई करवट ले ले। पंडित जी में भी इधर दो तीन बार मिलने से मुझे अन्तर लगता है। वे उत्तरोत्तर गम्भीर बनते जा रहे हैं। जैन साधुओं के आचार-व्यवहार को जानकर बिड़ला जी कहने लगे—मुझे विश्वास है कि जैनी साधुओ मे ९० प्रतिशत साधक है। पर हमारे साधुओं की स्थिति इससे उल्टी है, हालाँकि हिन्दुओं मे भी कोई साधक नहीं है, ऐसी बात नहीं है। पर उनमे कम मिलेगे। उनकी संख्या १० प्रतिशत से अधिक नही होगी, ९० प्रतिशत ढोगी हैं।

मैं चाहता हूँ, दिल्ली को आप अपना कार्य केन्द्र बनायें। वहाँ से सारे भारतवर्ष मे आध्यात्मिकता की चेतना फूंके।

पंडित जी से आप दो-तीन बार मिले, यह बड़े हर्ष की बात है। वे तो ऐसे आदमी हैं, जो धर्म की बात सुनते ही चिढ़ जाते है। आप संभव हो तो उनसे और मिलिये। अगर आपने एक जवाहरलाल जी को आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर कर दिया तो बहुत बड़ा काम कर लेगे। इस प्रकार यह वार्ता-प्रसंग बहुत सुन्दर रहा।

२

आटोग्राफ़ का रूप

आचार्य श्री विद्यार्थियो मे प्रवचन कर बाहर आ रहे थे। कई विद्यार्थी आचार्य श्री का आटोग्राफ लेने को उत्सुक खड़े थे। पेन्सिल और किताब देते हुये विद्यार्थियो ने कहा—आप इसमें अपना हस्ताक्षर कर दीजिये।

आचार्य श्री ने मुस्कराते हुये कहा—देखो बच्चो! मैंने जो बाते आज कही हैं, उन्हें जीवन मे उतारने का प्रयास करो। वही हमारा सच्चा आटोग्राफ होगा। ऐसे हस्ताक्षरो से क्या होगा। बच्चो ने देखा इस छोटी सी बात के पीछे आचार्य जी का कैसा गूढ़ उपदेश है।

३

अध्यापक बनाम विद्यार्थी

पिलानी बालिका विद्यापीठ मे प्रवचन कर आचार्य श्री आ ही रहे थे कि एक परिचित विद्यार्थी आचार्य श्री से पूछने लगा—अब आप का आगे का क्या कार्यक्रम है ?

आचार्य श्री ने कहा—अब तो ४-१५ बजे प्रोफेसरों की एक सभा में प्रवचन है।

उसने हँसते हुये कहा—तब तो हम भी उसमें सम्मिलित हो सकेंगे ? क्यों कि आज प्रातःकाल प्रवचन में आपने हम विद्यार्थियो को वास्तविक प्रोफेसर कहा था, क्यो सही है न ?

आचार्य श्री ने सस्मित उत्तर दिया—पर तब तो वह प्रोफेसरो की सभा नहीं रहेगी। फिर तो प्रोफेसर ही विद्यार्थी बन जायेंगे। तब वहाँ तुम्हारे आने का प्रश्न नहीं रहता। वह हँस कर प्रणाम करके चला दिया।

४

पैरों में पीड़ा है क्या ?

सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला गांव के बाहर तक आचार्य श्री को विदा करने आये। रास्तेभ्मे वे बाते करते जा रहे थे। आचार्य श्री को बार-बार रुकना पड़ता था। ८–१० बार ऐसा हुआ।

बिड़लाजी ने सोचा—आचार्य श्री के पैरों मे पीड़ा है, अतः वे ठहर ठहर कर चल रहे हैं। उन्होंने पूछा—आपके पैरो मे पीड़ा है क्या ?

आचार्य श्री ने कहा—नहीं, पीड़ा नहीं हैं। हमारा यह नियम है कि हम चलते समय बात नहीं करते। अतः मुझे ठहरना पड़ता है। वे कहने लगे—तब तो आपको बहुत कष्ट होता है। मुझे भी आपसे चलते समय बात नहीं करनी चाहिये।

५

मैं उपवास करूंगा

उस दिन उषाकाल में ही कुछ ऐसा आत्म-प्रेरक प्रसंग आया, जिसकी कोई कल्पना भी नहीं थी। सदा की भांति आचार्य श्री छोटे साधुओं को अध्ययन करा रहे थे। अपने व्यस्त कार्यक्रम में शिष्यो के अध्यापन को आप कितना महत्व देते हैं, यह इससे स्पष्ट हो जाता है। अध्ययन में "शान्त सुधारस" नामक ग्रन्थ के पहले ही श्लोक में एक शब्द आया—"अम्भोधर"

आचार्य श्री शब्द की व्युत्पत्ति, समास, अर्थ आदि की पूरी छानबीन करने लगे। उन साधुओं से वह न हो सका तो उनसे बड़े साधुओं को बुलाया गया। उनमे से किसी ने कुछ बताया किसी ने कुछ। उन्होने अर्थ बता दिया। समास बताया—अम्भ.धरतीति अम्भोधरः, द्वितीया तत् पुरुष। "श्रीतादिभिः" सूत्र से सिद्ध किया। पर उनका यह प्रयास गलत था।

आचार्य श्री ने कहा—मुझे आश नहीं थी कि तुम लोगों मे इतनी पोल है।

अब उन से भी बड़े साधुओं की बारी आई। आचार्य श्री कहने लगे—उन्हें क्या बुलायें। वे तो शायद बता देंगे। उन्हें भी बुलाया गया। वे भी ठीक-ठीक नहीं बता सके।

आचार्य श्री ने कहा—सभी एक सा बताते हैं, कहीं मैं ही तो गलती पर नहीं हूं।

आन्तरिक वेदना अनुभव करते हुये आचार्य श्री कहने लगे—क्या "सप्तम्युक्तं कृता" सूत्र से यह नहीं साधा जा सकता? तुम में से किसी ने भी इस सूत्र पर ध्यान नहीं दिया। मैं यह तो कभी कल्पना ही नहीं करता था कि इस प्रकार तुम सब लोग ही गलत बताओगे। क्या हमारा संस्कृत का अध्ययन यही है? एक छोटा सा भी शब्द तुम

नहीं बता सके । मुझे यह देखकर चिन्ता होती है कि संस्कृत के क्षेत्र मे विकास के स्थान पर ह्रास होता जारहा है । यदि यही क्रम चलता रहा तो भविष्य की स्थिति और भी अधिक चिन्ताजनक होगी । मुझे इस पर दुःख है । इसके लिए तुम को दोषी कैसे ठहराऊँ ? मैं समझता हूँ इसमे मेरी ही गलती है । अतः मुझे अपना आत्म-शोधन करना चाहिये । और इसके लिये मुझे एक उपवास करना पडेगा । सब अवाक् रह गये । सबने निवेदन भी किया कि यह तो हमारी ही गलती है । आप उपवास क्यो करें ? हम अपनी कमजोरी सुधारने की कोशिश करेंगे । पर आचार्य श्री ने उसे स्वीकार नहीं किया ।

६

एक घटना

नारायण गाँव की बात है । एक सर्वथा अपरिचित व्यक्ति आचार्य श्री के पास आया और अपनी बात सुनाने लगा—आचार्य जी ! आज से सात दिन पहले मेरे मन में बहुत बेचैनी थी । रास्ता नहीं मिल रहा था । रात को कुछ भारी मन से सो गया । मुझे योग की तरफ बचपन से ही रुचि रही है और उसकी खोज मे मै बहुत से योगियो से भी मिला था । पर मुझे पूरा सन्तोष नहीं हुआ । यहाँ मै सिन्ध से शरणार्थी होकर आया हूँ । घर पर मै और मेरी माताजी के सिवाय और कोई नहीं है । माताजी को छोडकर जगल मे जाना मुझे उचित नहीं लगा, और यहाँ घर में मेरा मन नहीं लगता था । मेरे मन मे यह द्वन्द्व चल रहा था । स्वप्न मे मुझे मेरे गुरु दिखाई दिये । उन्होने मुझसे कहा—तुम चिन्ता क्यों करते हो । आज से सात दिन बाद यहाँ पर एक आचार्य आयेंगे, वे तुम्हें रास्ता दिखायेगे । उन्होने मुझे जो आकार-प्रकार बताया वह सारा आप में मिलता है । मेरे भाग्य से आप पधार गये । आपके दर्शन से मुझे इतनी आत्म-शक्ति मिली कि उसे मैं शब्दो मे नहीं बता सकता । फिर वह आचार्य श्री को अपने घर ले गया ।

आखिर आचार्य श्री ने जब वहाँ से विहार किया तो वह इतना रोया कि वह एक शब्द भी नहीं कह सका।

कुछ दिन बाद उसने आचार्य श्री को एक पत्र लिखा। उसमे अपने हृदय के भावो को उँडेल दिया।

७

पानी झर रहा था

आचार्य श्री जैगणियाँ गाँव मे पधारे। दोपहर का समय था। पाँच-चार झोपड़ियों मे साधु अलग-अलग ठहरे हुये थे। लू चल रही थी। पानी भी थोड़ा ही मिला था। आचार्य श्री के पास मटकी (घड़े) में पानी पड़ा था। पास मे बैठे हुये एक साधु से कहा—पानी को व्यर्थ क्यों जाने देते हो? उसने कोशिश की। पर टपक-टपक कर चूने वाले पानी को कैसे बचाया जा सकता था। मटकी एक पट्टे पर छोटे-छोटे पत्थरो पर रखी हुई थी। उसके नीचे कल्प की टोक्सी रखने की चेष्टा की, पर वह भी नहीं हो सका, तो आचार्य श्री ने सुझाया—जहाँ पानी टपकता है, वहाँ एक कपड़ा रख दो। पानी कपड़े मे से होकर नीचे पात्र मे आ जायेगा। ऐसा ही किया गया।

शाम तक पात्र में लगभग आधा सेर पानी भर गया। वह पानी काम में ले लिया गया।

पर पानी को काम में लेने से भी अधिक सन्तोष इस बात का था कि इस सूक्ष्म दृष्टि से कितना पानी बचाया जा सकता है।

८

धर्म या पाप

एक ६-७ वर्ष का बच्चा दौड़ा-दौड़ा आया और आचार्य श्री से पूछने लगा—महाराज, माता-पिता की सेवा में पाप होता है या धर्म? इतने में एक और व्यक्ति भी कुछ बातचीत करने आये। पर एक ओर बैठ गये। आचार्य श्री ने पहले बच्चे के प्रश्न को प्रमुखता दी। कहने

लगे—माता-पिता की धार्मिक सेवा मे धर्म और सांसारिक सेवा में सांसारिक धर्म। उसे जैसे समाधान मिल गया।

आचार्य श्री ने कहा—तो बताओ, यह प्रश्न तुमको किसने सुझाया? उसने सारा भेद खोलते हुये कहा कि अमुक व्यक्ति ने मुझे आप से यह प्रश्न पूछने को कहा था। आचार्य श्री कहने लगे—देखो, लोग बच्चों के दिलो मे साम्प्रदायिकता का कैसा विष भर देते हैं? नहीं तो भला इन्हें ऐसे प्रश्नों से क्या सरोकार?

९

इलायची की भेंट

आचार्य श्री "अस्थल भोर" (रोहतक के पास) पधारे। वहाँ के महन्तजी इलायची लिये वहाँ आये। उन्होंने कहा—मैंने आपका नाम तथा आपके कार्यों की बहुत प्रशंसा सुनी थी। इच्छा थी आप से मिलूं। आज मिलना हुआ है। यह मेरी भेंट (इलायची को चरणों मे रखते हुये) स्वीकार करें।

आचार्य श्री ने कहा—ये सजीव हैं। इनको छूना हमारी मर्यादा के विपरीत है। दूसरी बात यह है कि हम भेंट नही लेते।

१०

एक प्रश्न

एक भाई ने पूछा—आप अणुव्रतों के प्रवर्तक कैसे हैं?

आचार्य श्री ने कहा—नहीं भाई, मैं अणुव्रतों का प्रवर्तक तो नहीं हूँ। अणुव्रत अनादि काल से चले आ रहे हैं। पर मैं वर्तमान अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवर्तक अवश्य हूँ। सब लोग हँसने लगे।

११

एक बालक

अणुव्रत-नियमावली मे अहिंसा अणुव्रत का एक नियम यह है कि—रेशम आदि कृमि हिंसाजन्य वस्त्र नहीं पहनूंगा। इस विषय को आचार्य श्री ने खूब स्पष्ट किया। प्रवचन की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप बहुत से लोग आगे आये और इन प्राणि संहारक विधियों का प्रत्याख्यान करने लगे। शाम को एक छोटा सा बच्चा आया और कहने लगा—मुझे जीवित जानवर के चमड़े के उपयोग का प्रत्याख्यान करा दीजिये। आचार्य श्री ने पूछा—क्यों? वह कहने लगा—आज मैंने प्रवचन सुना था। मुझे घृणा हो गई कि हमारे लिये ये जीवित जानवर कैसे मारे जायँ।

आचार्य श्री ने पूछा—कितने दिनो तक? उसने कहा—जीवन भर।

आचार्य श्री ने कहा—यह बहुत होता है। उसने उसी दृढ़ता से कहा—नहीं महाराज! मैं पूरी दृढ़ता से निभाऊँगा। इस घटना से पता चलता है कि बालकों मे ये संस्कार सहज ही भरे जा सकते हैं।

१२

तर्क समाप्त हो गया

अन्तरंग अधिवेशन में विशिष्ट अणुव्रती के छठे नियम—"एक लाख से अधिक पूंजी नही रखूंगा" पर बहस चल रही थी। कई लोग कहते थे—यह नियम रहना चाहिये और कई कहते थे, नहीं रहना चाहिये। अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री पारस जैन ने कहा—अणुव्रत तो भावनामूलक है, फिर इसमे इस नियम की क्या आवश्यकता है? और इसका मतलब तो यह हुआ कि एक लाख से अधिक पूंजी वाला तो अणुव्रती बन ही नहीं सकता।

आचार्य श्री ने मुस्कराते हुये कहा—तुम अभी इतनी चिन्ता क्यों करते हो ? पहले दो-चार करोडपतियो को विशिष्ट अणुव्रती बनने के लिये प्रेरित तो करो। फिर मै देखूंगा कि वे अणुव्रती बन सकते हैं या नहीं ?

हंसते हँसते उनका तर्क समाप्त हो गया।

१३

दो कबूतर

तीसरे प्रहर वाचन के समय आचार्य श्री की दृष्टि सहसा ऊपर बैठे हुये दो कबूतरों पर पड़ी। इधर से उधर उड़ते पक्षियों को देखकर आचार्य श्री ने कहा—इनका भी कोई जीवन है ? न कोई काम और न कोई प्रयोजन। आगे उनका निर्देश था—वे मनुष्य जो बिना प्रयोजन इधर उधर दौड़ धूप करते हैं और न जिनका कोई अध्ययन और चिंतन है—उनका जीवन कैसे बीतता होगा ?

मनुष्य जीता है प्रकृति से। खाने पीने की चीजें गौण है। हम खाते हैं तो बस प्रकृति की सहायता के लिये। अतः मनुष्य का भोजन ज्यादा घी, दूध, और गरिष्ठ व स्वादिष्ट चीजों वाला हो, यह आवश्यक नही है। साधारण भोजन से हमारा काम चल सकता है। मनुष्य मनुष्य की प्रकृति भिन्न होती है। अतः उसे ऐसी चीजों से जरूर बचना पड़ता है, जो उसके प्रतिकूल हो। प्रतिकूल का निराकरण हो जाने पर अनुकूल स्वय शेष रह जाता है। भोजन यदि ज्यादा भारी और बहुमूल्य न हो, तो भी जीवन-शक्ति में कमी नहीं आने वाली है।

१४

केवल फोटो चाहिये

आज सायं पंचमी समिति पधारते वक्त सड़क पर एक यूरोपियन आया और फोटो लेने लगा। आचार्य श्री अपने ध्यान मे थे, आगे निकल गये। वह फोटो नही ले सका।

आगे झाड़ी में जाकर सारे साधु अलग अलग चले गये। पीछे से आचार्य श्री अकेले थे और जगह की एषणा कर रहे थे कि अचानक वह यूरोपियन केमरा लिये सीधा आचार्य श्री के पास पहुँच गया। आचार्य श्री ने उससे पूछा—भाई कौन हो तुम ? पास में ही श्री ढूलीचन्दजी स्वामी थे। उन्होंने देखा—कोई नया सा आदमी आचार्य श्री के पास खड़ा है। वे झट से दौड़कर आये। उन्हें देखते ही वह यूरोपियन कुछ डरा। उसने देखा कि ये मुझे पीटेंगे। अतः डरकर बोला—मैंने और कुछ नहीं किया है। केवल फोटो लिया है। मैं बेल्जियम का रहने वाला हूँ। मैंने आप जैसे साधु पहले कभी नहीं देखे थे। अतः फोटो लेने की इच्छा हुई, क्षमा करें। धन्यवाद कह वह वहाँ से चला गया।

१५

बालक की जिज्ञासा

पास के एक छज्जे पर कुछ कबूतर बैठे थे। उन्हें देखकर एक बच्चे ने झट से प्रश्न किया—क्या ये कबूतर आपके पाले हुये हैं ?

आचार्य श्री ने कहा—नहीं, साधु कबूतरों को कभी नहीं पालते।

तो ये यहाँ क्यो बैठे हैं ?—बच्चे ने पूछा।

आचार्य श्री—अगर कोई जानवर आजाये तो हम उसे वापस उड़ा तो सकते नहीं। अतः ये यहाँ बैठे हैं।

इतने में कबूतर उड़ गये।

बच्चे ने हाथ ऊपर कर कहा—वे उड़ गये, वे उड़ गये।

आचार्य श्री ने कहा—हमने तो नहीं उड़ाये थे न। हम न तो किसी को पालते हैं और न किसी को उड़ाते हैं।

बालक—हाँ, हाँ कहता हुआ वहीं बैठ गया।

एक छोटे से बच्चे और आचार्य प्रवर का वार्तालाप दर्शन के कितने गहन तत्व को स्पर्श करता है।

जो आनन्द स्वयं आचार्य श्री और निश्छल बच्चे में बह रहा था, उससे आस पास बैठे हुये लोग भी प्रवाहित हुये बिना नहीं रहे।

१६

अल्लाह ने भी अनुमति दे दी

वह मुसलमान था। अवस्था लगभग ६५ वर्ष की होगी। सफेद दाढ़ी, गोरा चेहरा, बड़ी बडी आँखो से उसका व्यक्तित्व बाहर झाँक रहा था।

वह आचार्य श्री के पास आया। अणुव्रतों की बात चल पड़ी। नियम सुनाये गये। आचार्य श्री ने पूछा—अणुव्रती बनोगे?

उसने कहा—मै खुदा से पूछूंगा। उसकी आज्ञा हुई तो अवश्य अणुव्रती बनूंगा।

यह कह वह मकान की ऊँची छत पर गया और लगा खुदा को पुकारने। जोर जोर से चिल्लाया। मन ही मन कुछ गुनगुनाने लगा। कुछ ही क्षणों बाद वह अतीव प्रसन्न हो, आचार्य श्री के पास आया और कहने लगा—आचार्य जी! खुदा ने भी अनुमति दे दी है। मैं अणुव्रती बनूंगा। क्या आपका इसमें सहयोग मिलेगा?

आचार्य—हाँ, आध्यात्मिक कार्यों मे हमारा सहयोग रहता ही है।

मुसलमान—आपका यहाँ नुमाइन्दा कौन है?

मुनि महेन्द्रजी की ओर इशारा करते हुये आचार्य श्री ने कहा—ये हमारे नुमाइन्दा हैं। इनसे आप समय समय पर बातचीत कर सकते है।

वह बुड्ढा मुसलमान कहने लगा—मेरे लिये कोई कार्य हो तो फरमाइये।

आचार्य श्री ने कहा—तुमको कम से कम १० मुसलमान अणुव्रती बनाने होगे।

दृढ़तापूर्वक उसने यह संकल्प किया कि वह ऐसा करेगा।

१७

अन्तिम दर्शन की प्रतीक्षा

एक बहिन अपने जीवन की अंतिम घड़ियों में प्रतीक्षा कर रही थी कि कब आचार्य श्री के दर्शन हों और वह अपने इस शरीर से मुक्त हो। नहीं तो भला यह क्षीण-सा अस्थिपंजर क्या ३६ दिनों तक बिना खाये-पीये रह सकता था ? आचार्य श्री पधारे। प्रवचन हुआ। प्रवचन समाप्त होते ही आचार्य श्री ने कहा—चलो सथारे वाली बहिन को दर्शन दे आयें। धूप काफी चढ़ चुकी थी। बालू में पैर भी जलते थे। अतः पास में खड़े भाई ने कहा—अभी गरमी बहुत है, फिर शाम के समय पंचमी से आते वक्त दर्शन दीजियेगा। आचार्य श्री ने कहा—नहीं, अभी ही जाना है। आयु का क्या भरोसा। उसका घर काफी दूर था। दर्शन देकर स्थान पर आये। और थोड़ी देर में सुना—बहिन ने सदा के लिये आँखें मूँद ली। आचार्य श्री अभी उसे दर्शन देने नहीं जाते, तो क्या बहिन अपनी अज्ञात आशा के भार से अपने देह को शान्तिपूर्वक छोड़ सकती ?

१८

अनुशासन की कठोरता

दिल्ली से सरदारशहर लौटते हुए वर्षा के कारण बहादुरगढ़ में सारा संघ रुक गया था। आगे जाना संभव न हो सका। अष्टमी का दिन था। पर कुछ साधु भूल से बिगय ले आये। आचार्य श्री ने उन्हें कड़ा उलाहना देते हुये कहा—"आज अष्टमी है, यह तुम लोगों को ध्यान क्यों नहीं रहा? माना तुम रास्ते चलते हो, वर्षा के कारण आहार थोड़ा आने की संभावना हो सकती है, पर नियम नियम है। उसे ऐसे तोड़ा नहीं जा सकता। अलग विचरने वाले साधु-साध्वी भी तो इसे निभाते हैं। तुम्हारी असुविधायें उन्हें भी हो सकती हैं।

इस बात मे छिपी हुई अनुशासन की कर्त्तव्यता और नियम की अटलता को सहज ही आंका जा सकता है।

१६

कार्यनिष्ठा का एक उदाहरण

आचार्य प्रवर सब्जी मण्डी कठौतिया भवन में विराज रहे थे। एक दिन प्रातःकाल मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी से कहा—नई दिल्ली दूर तो बहुत है पर कुछ आवश्यक कार्य है चले जाओ। प्रातःकालीन आहार वहीं कर लेना व सायंकालीन यहाँ आकर कर लेना। मुनि श्री महेन्द्र-कुमार जी चले गये। सायंकालीन आहार के समय तक वापस नहीं पहुँचे। आचार्य श्री को चिंता हुई। वह सायंकालीन आहार न कर सकेगा। सूर्यास्त के साथ साथ मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी सदर, पहाड़गंज, नई दिल्ली, दरियागंज, चाँदनी चौक आदि में २० मील का दौरा कर सब्जी मण्डी पहुँचे। आचार्य श्री ने पूछा सवेरे तो आहार कर लिया होगा? मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी ने कहा—केवल एक कवल। आचार्य श्री ने कहा यह कैसे? उन्होंने कहा—आहार के प्रयत्न करता, इतना समय नहीं था। सहज रूप से किसी भक्त के यहाँ इतना ही प्रसाद मुझे मिला। आचार्य श्री ने उपस्थित अन्य साधुओ व कार्यकर्ताओं से कहा—कार्यनिष्ठा इसी को कहते हैं। काम की धुन मे २० मील का विहार व कवलाहारी व्रत मनुष्य को पीड़ाकारक नहीं होता। युवक साधुओं के लिये यह एक अनुकरणीय उदाहरण है। देहली के कार्यक्रम में महेन्द्र का परिश्रम मौलिक रहा है। केवल आज के अनूठे उदाहरण के लिए मैं इसे ५१ "परिष्ठापन" पारितोषिक रूप मे देता हूँ। आचार्य श्री का वात्सल्य ऐसे प्रसंगो पर बहुत बार निखर जाया करता है और युवक साधुओ को कार्यनिष्ठा की एक अद्भुत प्रेरणा दिया करता है।

परिशिष्ट २

यात्रा विवरण

एक दृष्टि में

संत प्रवर आचार्य श्री तुलसी गणी की सरदार शहर से दिल्ली आने और दिल्ली से पिलानी होते हुए सरदार शहर लौटने की चार सौ मील की धर्म यात्रा ऐतिहासिक महत्व रखती है। उसका कुछ विवरण प्राक्कथन मे दिया गया है। यहाँ एक दृष्टि मे उसकी जानकारी दी जा रही है।

१६ नवम्बर ५६— सरदार शहर से उड़सर, मेलूसर
२० ,, — टोगास, बूचास
२१ ,, — तारानगर, जिक्साणा
२२ ,, — नाँगली, शार्दूलपुर, राजगढ
२३ ,, — रामठई, बहेल
२४ ,, — जोवरा, देवराला, केरू

२५ ,, — कसुंबी, भिवानी
२६ ,, — सरक, लाली
२७ ,, — जाट कॉलिज, (रोहतक) कलाउड
२८ ,, — रोहध, बहादुरगढ़
२९ ,, — नांगलोई, करौल बाग दिल्ली

सरदार शहर से करौल बाग (दिल्ली) तक १९१ मील का मार्ग ११ दिन में २५ विहार करके तय किया गया।

दिल्ली में

३० नवम्बर — बौद्ध गोष्ठी मे भाषण

१ दिसम्बर ५६— संसद् क्लब में प्रवचन, राष्ट्र कवि गुप्त जी, श्रीमती सावित्री निगम, युनेस्को के श्री एल-विरा आदि से मुलाकात, प्रेस सम्मेलन, जैन गोष्ठी में प्रवचन

२ ,, — अणुव्रत गोष्ठी, राष्ट्रपति भवन मे समारोह, दलाईलामा से भेंट

३ ,, — अणुव्रत गोष्ठी

४ ,, — अणुव्रत गोष्ठी

५ ,, — माडर्न स्कूल में; बौद्ध भिक्षुओं, मॉरल रिआर्मा-मैण्ट के प्रतिनिधियो, 'इंडियन एक्सप्रेस' के श्री चमनलाल सूरी के साथ भेंट

६ ,, — श्री मोरार जी देसाई और राजर्षि टंडन जी के साथ मुलाकात

७ ,, — प्रवचन, श्रीमती दिनेशनंदनी, श्रीमती मदालसा, जर्मन सज्जनो और एक अमेरिकन महिला से मुलाकात

८ ,, — प्रधान मंत्री श्री नेहरू की मुलाकात

९ ,, — पहाड़गंज मे प्रवचन, श्री अशोक मेहता, श्री उपाध्याय और श्री गुलजारीलाल नन्दा के साथ भेंट

१० ,, — प्रवचन, श्री महेन्द्रमोहन चौधरीके साथ भेंट

११ ,, —मॉडर्न हायर सेकेण्डरी स्कूल मे प्रवचन

१२ ,, — प्रवचन, श्री सरकार, श्रीमती मुकुल मुखर्जी, श्री कृष्णा दवे और श्री रामेश्वरन से भेंट

१३ ,, — प्रवचन, राष्ट्रीय चरित्र मूलक अणुव्रत सप्ताह का उद्घाटन, श्री गुलजारीलाल नन्दा और जर्मन जिज्ञासुओ के साथ चर्चा

१४ ,, — अणुव्रत सप्ताह का दूसरा दिन, अमेरिकन महिलाओ की भेंट

१५ ,, — अणुव्रत सप्ताह का तीसरा दिन, उपराष्ट्रपति और स्टेट्समैन के न्यूज एडीटर को भेंट

१६ ,, — सप्ताह का चौथा दिन, हरिजन बस्ती मे, लोकसभा के अध्यक्ष के साथ चर्चा वार्ता

१७ ,, —सप्ताह का पाँचवाँ दिन—जेल मे, राष्ट्रपति के निजी सचिव श्री विश्वनाथ शर्मा से भेंट

१८ ,, — प्रवचन, सप्ताह का छठा दिन—महिलाओ मे भाषण, श्री एन० सी० चैटर्जी और श्री देश पाडे से भेंट

१९ ,, — मिनर्वा मे प्रवचन, सप्ताह का सातवाँ दिन,— विक्रीकर कार्यालय और वार ऐसोसिएशन मे, राजस्थान के राज्यपाल श्री गुरमुख निहालसिंह और परराष्ट्रमंत्री डा० सैयद महमूद के साथ चर्चा

२० ,, — व्यापारियो मे भाषण

२१ ,, — प्रवचन, "हिन्दुस्तान टाइम्स" के संपादक श्री

दुर्गादास, भारत-सेवक समाज के श्री चांदीवाला और राष्ट्रकवि तथा उनके भाई श्री सियाराम-शरण के साथ चर्चा

२२ ,, — कास्टिट्यूशन क्लब मे चुनावशुद्धि सम्बन्धी आयोजन

२३-२७ ,, — विविध आयोजन और अनेक मुलाकातें

२८ ,, — प्रवचन, संस्कृति के रूप के सम्बन्धमे चर्चा

२९ ,, — श्री राम इंडस्ट्रियल रिसर्च इंस्टिट्यूट और भारत सेवक समाज कार्यालय मे भाषण, केन्द्रीय उपश्रम मंत्री श्री आबिदअली से भेंट

३० ,, — राजघाट पर मैत्री दिवस का विराट आयोजन 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सम्पादक श्री दुर्गादास की दूसरी मुलाकात

१ जनवरी ५७ काठोतिया भवन मे संस्कृत गोष्ठी

४ ,, — साहित्यगोष्ठी, राष्ट्रपति के साथ तीसरी बार चर्चा

५ ,, — सदर बाजार मे प्रवचन, फ्रांस के राजदूत से भेंट

७ ,, — काठोतिया भवन मे विदाई समारोह,

दिल्ली से सरदार शहर

७ ,, — सब्जी मंडी (दिल्ली) से फूलचन्द बाग, नागलोई

८ ,, — बहादुरगढ, सांपला

१० ,, — अस्थलमोर, रोहतक

११ ,, — लार्ला, खरक

१२ ,, — भिवानी, लोहाणा

१३ ,, — बेरी, डायनमा

१४ ,, — लोहारू

१६ ,, — मोखा, विलाणी
१७ ,, — विड़ला मांटसेरी स्कूल मे प्रवचन
१८ ,, — सस्कृत साहित्य गोष्ठी
१६ ,, — बालिका विद्यापीठ, इंजीनियरिंग कालेज और शिवगगा कोठी में प्रवचन व भाषण
२० ,, — नागरिको की सभा मे चुनाव एवं चरित्र शुद्धि सम्बन्धी सार्वजनिक भाषण
२१ ,, — पिलानी से मंटेला, कखड़ेऊ
२२ ,, — मलसीसर, टमकोर
२३ ,, — मोतीबाग, ढाढर
२४ ,, — चुरू
२५ ,, — दूधवा, बालरासर
२६ ,, — खीवसर, पूलासर
२७ ,, — सरदार शहर

लौटते हुए २०६ मील का मार्ग १७ दिन मे २७ विहार करके पूरा किया गया।